आत्म सरिता

(जीवन चरित्र महंत आत्मा सिंह जी महाराज)

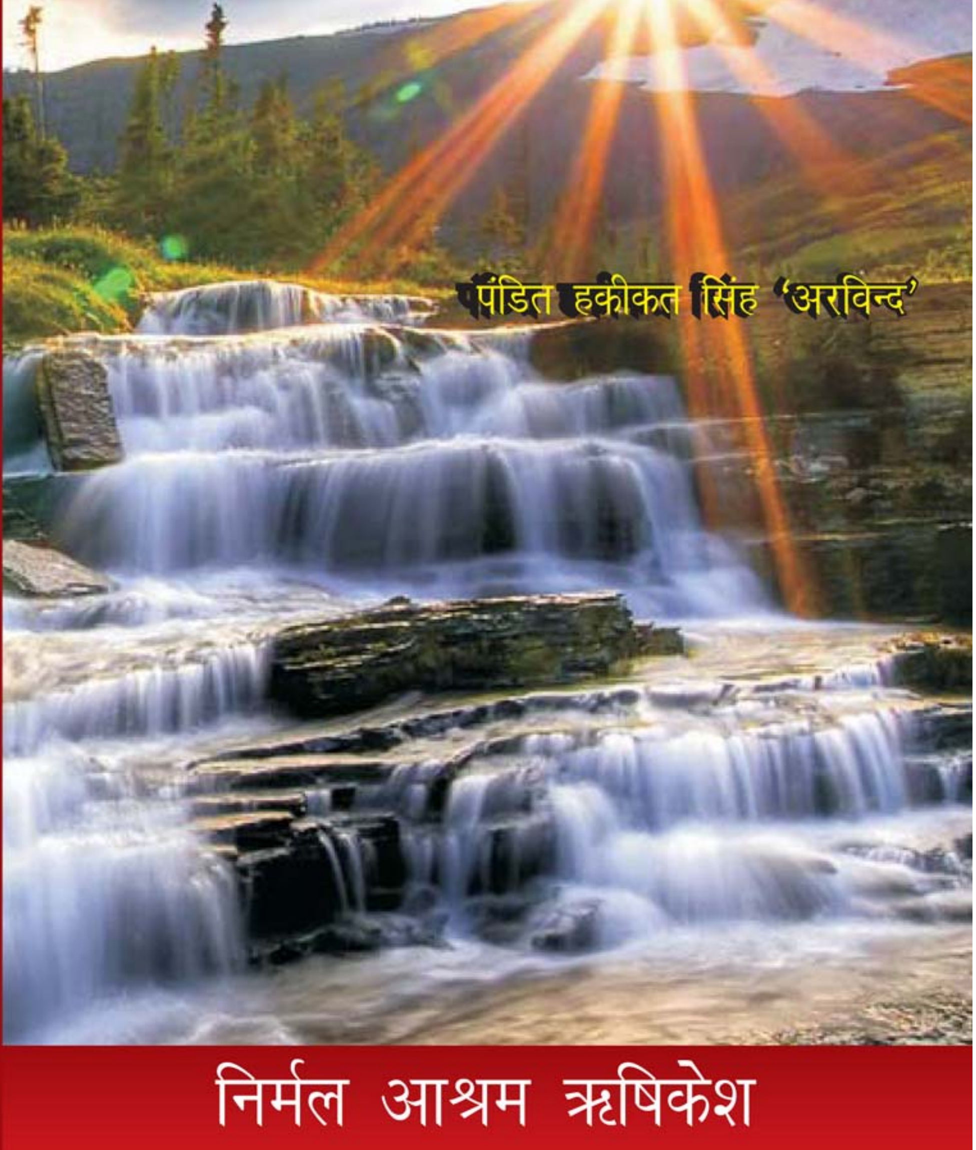

पंडित हकीकत सिंह 'अरविन्द'

निर्मल आश्रम ऋषिकेश

आत्म सरिता
पंडित हकीकत सिंह 'अरविन्द'

आत्म सरिता

अनंत श्री विभूषित महंत आत्मा सिंह जी का
पावन जीवन चरित्र

पं० हकीकत सिंह 'अरविन्द'

ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ॥
LOVE ALL SERVE ALL
NIRMAL ASHRAM
RISHIKESH

निर्मल आश्रम ऋषिकेश

- प्रकाशक-
  महंत राम सिंह
  निर्मल आश्रम (प्रकाशन विभाग)
  निर्मल मार्ग, ऋषिकेश - 249201

- लेखक-
  पं० हकीकत सिंह 'अरविन्द' भूतपूर्व प्रधान
  प्राचीन सर्व भारत निर्मल महामण्डल

- संशोधक-
  महंत गुरुदीप सिंह शास्त्री वेदान्त केसरी भूतपूर्व अध्यक्ष
  निर्मल संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी
  पंडित राममूर्ति 'कौशिक' शास्त्री खटकर कलां
  पं० राममूर्ति 'संगर'-ऋषिकेश

- मुद्रक-
  संजय प्रेस
  शाहदरा, दिल्ली

- प्रथम संस्करण (सन् 1978 ई०) 1000 प्रतियां
- द्वितीय संस्करण (सन् 2013 ई०) 1000 प्रतियां

सादर समर्पित

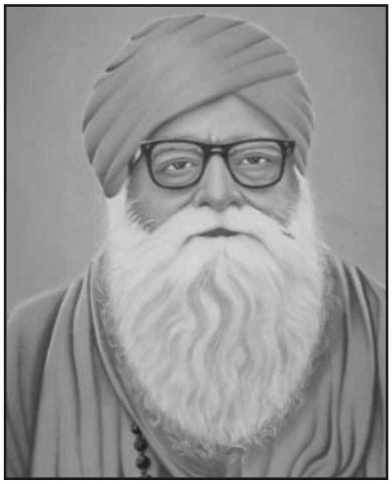

महंत आत्मा सिंह जी महाराज

जिनके जीवन का एक-एक क्षण हरि-स्मरण, समाज एवं अकिंचन जन-समूह की सेवा में व्यतीत हुआ, उन दीन-हीन-हितकारी महात्मा श्री *108* महंत आत्मा सिंह जी की पुण्य स्मृति में उनके उत्तराधिकारी मतिमतां, मुकुटमणि, मनीषी मित्रवर महंत नारायण सिंह जी के कर कमलों में जिनका अभ्युदय उन्हीं आदर्शों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हो रहा है।

पं० हकीकत सिंह 'अरविन्द'

श्री आत्माहरि की हृदयस्थलि

सत्य हरिश्चंद्र, दानवीरता करण जी की,
धर्मानुराग धर्म-पुत्र का विख्यात है।।

गम्भीरता समुद्र की विशालता व्योम की है,
क्षमा शीलता में शिरोमणि क्षिति मात है।।

कही जाती कोमलता कमल कुसुम की है,
शिव जी की करुणा सुकान में सुनात है।।

देखने हों एक ही मनुष्य में सभी ये गुण,
आत्माहरि की हृदयस्थलि में सुहात हैं।।

विषय सूची

अध्याय		पृष्ठ
दो शब्द		(ix)
प्राक्कथन		(xi)
शुभ सम्मति		(xvii)
धन्यवाद		(xxiii)
तरंग **1**	श्री ठाकुर दयाल सिंह जी	1
तरंग **2**	पंडित हरि सिंह जी महाराज	4
तरंग **3**	महंत बाबा मिशरा सिंह जी, महंत रत्न सिंह जी महाराज, महंत रत्न सिंह जी के शिष्य, मंहत हाकम सिंह जी	8
तरंग **4**	श्री पंडित महंत देवा सिंह जी, महंत लाल सिंह जी	15
तरंग **5**	बाबा अनंत सिंह जी मंडली वाले	19
तरंग **6**	महंत बाबा बुड्ढ़ा सिंह जी	21
तरंग **7**	संत आत्मा सिंह	26
तरंग **8**	श्री दमदमा साहिब, मुक्तसर की ओर	32
तरंग **9**	एक निर्वाण आश्रम की ओर	35
तरंग **10**	पुनः उत्तर की ओर	37
तरंग **11**	झालागे उठि नाम जपु, ग्राम और नाम	38
तरंग **12**	स्वकीय सेवा में	44
तरंग **13**	गोदावरी गंगा की ओर	45
तरंग **14**	लाल रंग, भाद्र पद	49
तरंग **15**	श्री हज़ूर साहिब की यात्रा	52
तरंग **16**	सक्खर की ओर, सक्खर से अमृतसर की ओर यदु-चदाचरित श्रेष्ठः	53
तरंग **17**	संत आश्रमों में, बाबा जी महाराज को निमंत्रण, महाराज का संभाषण, जीवन का उद्देश्य	59
तरंग **18**	गुण-ग्रहण	67
तरंग **19**	ऋषिकेश में, शिष्टाचार और अनुशासन, फिर सिंध की ओर	68

तरंग **20**	ऋषिकेश पुनरागमन	76
तरंग **21**	आश्रम के लिए परामर्श, आधारशिला	77
तरंग **22**	शुभारंभ	80
तरंग **23**	पुनः सिंध की ओर	83
तरंग **24**	वाक्सिद्धि, गुरु पुर्णिमा के पुण्य पर्व पर	86
तरंग **25**	शिष्यों को उपदेश	90
तरंग **26**	सत्य का साधन	92
तरंग **27**	चतुर मास की समाप्ति पर	96
तरंग **28**	पुनः सिंध की ओर	97
तरंग **29**	शरद पुर्णिमा पर अखंड पाठ और संत समागम	103
तरंग **30**	निर्माण कार्य की ओर	116
तरंग **31**	अखाड़ा से निमंत्रण, निर्मल अखाड़ा का कनखल में आगमन	118
तरंग **32**	ऋषिभूमि में पुनरागमन, निर्मल जमात (रम्मत अखाड़े) का आगमन	120
तरंग **33**	फिर निर्वाण की ओर	123
तरंग **34**	सिंहावलोकन, ग्वालियर में, ग्वालियर में पुनः बुलावा	125
तरंग **35**	फिर नज़रे तामीर	130
तरंग **36**	प्रस्थान के समय शिष्यों को उपदेश	133
तरंग **37**	हैदराबाद में	134
तरंग **38**	उत्तराखंड की यात्रा	136
तरंग **39**	यमुनोत्री यात्रा	139
तरंग **40**	उत्तरकाशी की ओर, उत्तरकाशी, दिनचर्या	141
तरंग **41**	प्रभु की अचिंत्य लीला, प्रकृति की अद्‌भुत सप्लाई व्यवस्था, अद्‌भुत घटना	153
तरंग **42**		162
तरंग **43**	वापसी का कार्यक्रम, वापस नाकोरी चट्‌टी, गुरु चरणों में, झाड़ी की यात्रा, कार्यभार संभाला, कराची में, पंड़ित को आश्चर्य	166
तरंग **44**	पुनः ऋषिकेश में, शिकारपुर में, काल की विचित्र गति, निर्मलों की अपूरणीय क्षति, कोहेनूर, किशोर नारायण का सहयोग	176

तरंग **45**	वापसी का विचार, दक्षिण पूर्व की ओर	189
तरंग **46**	ऋषिकेश में गौशाला में वृद्धि	192
तरंग **47**	सिंध की ओर प्रस्थान	194
तरंग **48**	श्री गुरु ग्रंथ साहिब की कथा, हरिद्वार के कुंभ पर, निर्मल आश्रम में भीड़, पुनः पठन का ध्यान	199
तरंग **49**	निर्मल बाग की ज़मीन	201
तरंग **50**	मुखी गोविंद राम का अखंड पाठ के लिए आना	202
तरंग **51**	वसीयतनामा	205
तरंग **52**		208
तरंग **53**		210
तरंग **54**	सन् 1936	212
तरंग **55**	मिट गए गवन पाए विश्राम	214
तरंग **56**	सत्रहवीं, ज्योति ज्योत समाने के पश्चात्, सन् 1939 पुनः कराची की ओर, सन् 1942, सन् 1944, नासिक गोदावरी के कुंभ का स्नान, सन् 1945 द्वारिका, सुदामापुरी, प्रभास क्षेत्र की यात्रा	216
तरंग **57**	मसूरी का कारोबार और गुरुदेव की आठवीं वर्षी, सन् 1946, सन् 1947, सन् 1948, दोबारा कोलंबो यात्रा, सन् 1949 लखनऊ की ओर, सन् 1950 हरिद्वार कुंभ का स्नान एंव कलकत्ता यात्रा, सन् 1951, सन् 1952, सन् 1953, सन् 1954 कुंभ स्नान, सन् 1955, सन् 1956 महाशोक, सन् 1957, सन् 1959	223
तरंग **58**	सन् 1960 महंत मान सिंह जी का वैकुंठवास, सन् 1961 लखनऊ में विवाहों में उत्सवों की फुलझड़ियां	241
तरंग **59**	पूर्ण चंद्रोदय, सन् 1962 कुंभ मेला हरिद्वार, कुंभ कब और कहाँ-कहाँ होता है? अध्यात्मिक व्याख्या, कुंभ का आरंभ, उद्घोष, चैत्रवदी 13 तदनुसार 3 अप्रैल सन् 1962, 4-4-62 चैत्रवदी अमावस का शाही जलूस, 13 अप्रैल सन् 1962, बैशाख सुदी 7 संवत 2029 बृहस्पतिवार 10 मई 1962, बंबई आदि की यात्रा, सन् 1963 की वर्षी, 27वीं वर्षी, बंबई की ओर	244

तरंग **60** सन् 1965-विचारों की शिथिलता, सन् 1966 के कुंभ पर्व प्रयाग में,
प्रयाग की प्राचीनता और महिमा, कुंभ कब से? किसने चलाया?
कुंभ में करने योग्य काम, प्रयाग कुंभी पर लोक संग्रही महंत आत्मा सिंह जी का कृत्य,
आश्विन वदी 12 द्वादशी 11 अक्तूबर 1966 को 29वीं वर्षी मनाई,
सन् 1967, 29वीं वर्षी, सन् 1968, सन् 1969, महापुरूषों की दूर दृष्टि,
18 नवंबर सन् 1969 को, सन् 1970 261

तरंग **61** संत हृदय नवनीत समाना, संग्रह की प्रवृत्ति, आसा महला १ 281

तरंग **62** आदर्श वर्षी सन् 1972 ऋषिकेश में क्यों? सन् 1973 प्रस्थान की ओर,
गंगा की गोद में, तारीख 15-8-73 को रस्म दस्तारबंदी, प्रगति के पथ पर,
शहीद भगत सिंह जी के लघु भ्राता स. कुलतार सिंह तत्कालीन खाद्य मंत्री
का शुभागमन, महान सिक्ख नेता सरदारे आज़म संत हरचंद सिंह लौंगोवाल जी
का शुभागमन, उत्तरप्रदेश के वन मंत्री श्री चंद जी का आगमन 297

दो शब्द

अप्रैल 1983 ई. में पूज्य गुरुदेव धन्य-धन्य श्रीमान् संत बाबा निक्का सिंह 'विरक्त' जी महाराज द्वारा मुझ दास को निर्मल भेख द्वारा नवाज़ा गया और आज्ञा की कि निर्मल आश्रम ऋषिकेश जाकर वहाँ की सेवा संभाल, देखभाल और उसकी प्रगति के लिए लग जाओ। गुरु आज्ञानुसार पूज्य परम स्नेही और अति सुहिरद संत श्रीमान् महंत बाबा राम सिंह जी के साथ मिलकर सेवा करने में उनका सहयोग करना शुरु कर दिया। इतने विशाल प्रबंध को संभालने से पहले बहुत कुछ जानना, समझना, पढ़ना और विचारना अति अनिवार्य था। अतः पूज्य महंत जी महाराज ने अति प्रसन्नता और विशाल हृदय के साथ मुझे सब कुछ बताया, समझाया और संचालन का दायित्व सौंप दिया। आश्रम के बारे में पूरी जानकारी हासिल करने के लिए जहाँ पूरे रिकार्ड की जांच करनी थी, वहाँ आश्रम के पुस्तकालय की पुस्तकों की सेवा, संभाल और रख-रखाव करना भी अनिवार्य था। इसी बीच आश्रम द्वारा 1978 ई. में छपवाई गई इस पुस्तक 'आत्मसरिता' (हिन्दी) पर नज़र पड़ी। यह पुस्तक जब महंत जी महाराज को दिखाई तो उन्होंने कहा कि वह इस पुस्तक को देख चुके हैं और आप भी ज़रुर देख लेना। समय मिलने पर मैंने इस पुस्तक को देखकर अनुभव किया कि यह ग्रंथ तो आश्रम की अनमोल साहित्यिक पूंजी है। यह ग्रंथ आश्रम के ऐतिहासिक, अतीत व ठाकुर संप्रदाय के साथ नज़दीकी संबंधित महापुरुषों के बारे में जानकारी देते हुए, विशेष तौर से परम तपस्वी महंत आत्मा सिंह जी के वैराग, त्याग और अनथक कठोर परिश्रम से भरपूर जीवन का उल्लेख है। एक साधक के लिए प्रेरणा का स्त्रोत है और आश्रम के ऐतिहासिक पक्ष से अति लाभदायक है। वर्तमान में (लगभग 25 साल बाद) आश्रम से जुड़े कुछ पढ़े लिखे सेवक प्रेमीओं को यह ग्रंथ पढ़ने का अवसर मिला तो उन्होंने बताया कि 'आत्म सरिता' आश्रम का एक अति उत्तम ग्रंथ है और इसे दोबारा छपवाकर संगत को उपलब्ध करवाना चाहिए। अतः इस सुझाव को सम्मुख रखते हुए इस प्रेरणा से पुस्तक की नए सिरे से टाईप सैटिंग करवाकर सुधार करना शुरु कर दिया। एक दिन परम पूज्य महंत बाबा राम सिंह जी के सामने इस पुस्तक को छपवाने का

विचार रखा तो उन्होंने प्रसन्न होकर आज्ञा दे दी।

मूल ग्रंथ का प्रकाशन पहली बार 1978 ई० में हुआ जिस समय आज की तुलना में मुद्रण प्रणाली (Printing Technology) पूरी तरह से विकसित नहीं हुई थी और न ही उस समय वर्तनी (Spellings) और विराम चिन्ह (Punctuation) की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। परंतु अब कम्प्युटर (Computer) युग में गुणवत्ता (Quality) के साथ-साथ विराम चिन्ह व प्रमाणिक (Authentic) शब्दावली पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। प्रौद्योगिकी (Technology) को ध्यान में रखते हुए वर्तनी (Spellings) में भी परिवर्तन आया है। जैसे महन्त को अब महंत और गद्दी को गद्‌दी लिखा जाता है। अतः हमने मूल ग्रंथ की भाषा को न छूहकर यथा संभव वर्तनी (Spellings) और विराम चिन्ह (Punctuation) में परिवर्तन करने का प्रयास किया है।

समय के अनुसार लेखक ने मूल ग्रंथ में अपने कथनों को बल देने के लिए और परिस्थितियों को देखते हुए कई एक स्थानों पर उर्दू के कठिन शब्दों का प्रयोग किया है। वर्तमान युग के पाठकों की उर्दू के प्रति न्यून जानकारी को ध्यान में रखते हुए कुछ कठिन उर्दू शब्दों के समानार्थक शब्दों को कोष्ठकों (Brackets) में दिया है परंतु कहीं भी लेखक की मूल भाषा को परिवर्तित नहीं किया गया है।

क्योंकि यह ग्रंथ प्रायः पहले छपे ग्रंथ का मूल रूप (Reprint) ही है इसलिए सभी तथ्य वैसे के वैसे ही हैं। जैसे कई एक स्थानों पर लिखा है कि ....महंत .... स्थान पर कार्यरत है परंतु वर्तमान में वह अकाल पुरुख वाहिगुरू के चरणों में लीन हो चुके हैं। अतः पाठकों से अनुरोध है कि वे ग्रंथ का अध्ययन 1978 की परिस्थितियों के आधार पर ही करें।

-संत जोध सिंह

मई, 2013 निर्मल आश्रम, ऋषिकेश

❁ प्राक्कथन ❁

जगत् स्रष्टा भगवान ने जब से इस दृश्यमान विश्व की रचना की है, तभी से परम कारुणिक भगवान उचित समय पर धर्म की मर्यादा कायम करने, असद्विचारों की निवृत्ति तथा सद्विचारों के प्रचार के लिए, दूसरे शब्दों में, आसुरी संपत्ति का विनाश कर दैवी संपत्ति के प्रचार हेतु, किसी न किसी महान् आत्मा को भेजते रहे हैं। जैसे कोई शहंशाह बाग़ लगाकर उसके पालन पोषण व अभिवृद्धि के लिए और रोगादि के आक्रमण से बचाने के लिए किसी अनुभवी माली को तैनात करते हैं वैसे ही न केवल एक स्थान पर बल्कि तमाम दुनिया के हर हिस्से में, ऐसे महापुरुष आते रहे हैं, और उस भू-खंड के वातावरण के अनुसार व लोगों की प्रकृति, प्रवृत्ति के अनुसार नियम बनाकर भूले हुए मानव समाज के कल्याण के लिए यत्न करते आए हैं। इसमें भी संदेह नहीं है कि अपने कार्य में उन्हें सफलता भी मिली। उन्होंने मानव-मन की पशु-प्रवृत्तियों को दबाकर, मनुष्य-मन में निहित दैवीगुणों को उद्बुद्ध किया। भले ही देश-भेद और काल-भेद से उनके उपदेशों व सिद्धांतों में भेद हो, पर यह तो निश्चित है कि गंतव्य स्थान सब का एक ही है। किसी महापुरुष ने ठीक कहा है कि-

रुचीणां वैचि याद् ऋजु कुटिल नाना पथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

वैसे तो वैष्णवों के विभिन्न संप्रदायों में भी मत-भेद हैं, पर वेदांत के आचार्यों के मत-भेद सिद्धांत लेख ग्रंथ में बहुत अधिक लिखे मिलते हैं। शैवों के भी बहुत संप्रदाय हैं, और विभिन्न संप्रदायों में मत-भेद होना अनिवार्य है। पर मूल सिद्धांत सबका एक ही है। महान सिक्ख संप्रदाय में अनेक संप्रदाय हैं पर मुख्य इष्ट उपासना एक ही है। इसी प्रकार सभी अलहदा फिरकों (संप्रदाय) का गंतव्य स्थान एक ही है। अतः सभी आचार्यवर, साधक, गुरु-पीर और ऋषिमुनि हमारे नमस्य हैं। हमारे हृदय में सभी के लिए आदर है क्योंकि सभी ने मानव-समाज का हित साधन किया है। पर इन में कुछ आचार्यों और खास कर पश्चिमी देशों के संप्रदाय प्रवर्तकों के दृष्टिकोण में आखिर में

अंतर आ गया और वे अपनी कौम व केवल अपने अनुयायियों के कल्याण की कामना करने लगे। प्रत्युत यहाँ तक कि उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि हम केवल अपनी ही सुख समृद्धि के लिए आए हैं व मेरे चलाए हुए फिरके (संप्रदाय) से आने वालों के लिये ही बहिश्तों के दरवाज़े खोले जायेंगे, गैरों के लिए नहीं। इस प्रकार उन्होंने एक तंग दायरे के अंदर अपना कार्यक्षेत्र बनाया और सब की उपेक्षा कर दी। जो कुछ भी हो, जिन महापुरुषों ने कम या ज्यादा मानव-समाज का उपकार किया उनकी प्रवृत्तियों को बदला व उनके विचार-प्रवाह को नई दिशा दी, बुराइयों से हटाकर नेकी की राह चलाया। दुष्कर्मों से हटाकर प्रभु-भक्ति में लगाया, नेक ऐमाल का सबक सिखाया, चरित्र-निर्माण की शिक्षा दी। हैवानियत के गहरे गड्ढे से निकालकर इंसानियत के ऊँचे तख्त पर बैठाया। मनुष्यों में देवतापन की खूबियाँ पैदा कीं, वे सभी महापुरुष धन्य हैं, सभी वंदनीय हैं। पर इस सबके बावजूद श्री गुरु नानक देव जी के चरणों में हमारी श्रद्धा असीम है। इसलिए कि उन्होंने बिना किसी भेदभाव के मनुष्य मात्र की सुख-संपत्ति की कामना की और जब तक वह इस धरातल को अपने जीवन- प्रद चरण-स्पर्श से पवित्र बनाते रहे, जब तक वह इस देश की गर्म हवाओं को अपनी जां बख्श, खाक-इ-पा से, मानिंद अर्श को शाद (रंगीला) व खूबसूरत बनाते रहे, तब तक उन्होंने जीवन का एक-एक क्षण समूचे मानव-समाज के उद्धार के लिए खर्च किया। उनके पवित्र हृदय से भेद भाव की भावना काफूर हो गई थी। सारा जहाँ उनका अपना मकां (मकान) और जहाँ में रहने वाले तमाम इंसान, जान के समान अति प्यारे थे। यूं समझो कि सारा संसार उनका शरीर था और समस्त मानव उनके अंग थे। जैसे हर जीव अपने सभी अंगों को स्वस्थ और सुखी देखना चाहता है, उसी प्रकार आप संसार के सभी जीवों को सुख संपन्न देखना चाहते थे। यही वजह थी कि एशिया की धरती के हर हिस्से में उनका स्वागत हुआ, सम्मान हुआ, आदर और अदब हुआ।

यद्यपि श्री गुरु नानक भारत के हर भूखंड में अतिप्रिय एवं सर्वाधिक श्रद्धा-भाजन आचार्य माने जाते थे। जन साधारण से लेकर बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके चरणों में श्रद्धावनत मस्तक रख कर स्वयं को धन्य मानते थे परंतु पूर्व और पश्चिम पंजाब एवं सिंध

प्रांत के निवासी तो शतप्रतिशत गुरु नानक नाम के दीवाने थे। इन दोनों प्रांतों के हर शहर और ग्राम में गुरु नानक की अमर वाणी का पर्याप्त प्रचार हुआ।

प्रत्येक शहर और ग्राम में गुरुद्वारे बने और उनमें पावन गुरुवाणी का कीर्तन और पाठों के प्रवाह चल पड़े और इसके साथ ही गुरु नानक के नाम पर मनुष्य मात्र के लिए लंगर जारी हो गए। बिना किसी जाति व मज़हबो मिल्लत (ज़ात-पाति) के भेद से हर जरूरतमंद को भोजन मिलने लगा। रात्रि-निवास के लिए स्थान मिलने लगा, जिससे सिक्ख संप्रदाय की अत्यधिक अभिवृद्धि हुई। सिंध और पंजाब के हर नगर व ग्राम के मुक्त-आकाश में गुरुवाणी संगीत की ध्वनि गूंज रही थी जिसे सुनकर प्रत्येक पंजाबी तथा सिंधी का पुनीत हृदय आनंद विभोर हो उठता था। ऊपर कहा जा चुका है कि गुरु नानक बिना किसी भेद भाव से प्रत्येक प्राणी के समान रूप से हित के चिंतक थे। सब किसी के लिए सुख-समृद्धि की अभिलाषा रखते थे।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि किसी खानदान के आदि पुरुष के अनेक गुण और अन्य विशेषताएँ उसके वंशज प्राणियों में भी न्यूनाधिक मात्रा में रहती ही हैं। इसी प्रकार महापुरुषों के विशिष्ट गुण एवं पुनीत भावनाएं उनके मतावलंबी संप्रदायों में भी रहती हैं। सो गुरुनानक के श्रद्धालु संप्रदायों उदासीन, निर्मल व सेवापंथी आदि में वे समदर्शिता आदि गुण ओत प्रोत थे। यही कारण था कि जहाँ किसी उदासीन निर्वाण महापुरुष ने धूनी रमाई और समाहित मन से **१** ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि आदि महामंत्र का जाप आरंभ किया व मधुर ध्वनि से सुखमनी साहिब के पाठ की अजस्त्रधारा प्रवाहित की, वहीं श्रद्धालु भक्तगण कमल पर भवरों की तरह मंडराने लगे और वहीं किंचित काल में संत-आश्रम व डेरा स्थापित हो गया। इसी प्रकार सेवा पंथी महात्माओं का प्रभाव विशेषतः पश्चिम पंजाब में फैला। ये लोग सेवा, सिमरन सादगी और सत्य के पुजारी थे। इनके आश्रमों में जनता-जनार्दन की निःस्वार्थ सेवा, ईश्वर चिंतन, गुरुवाणी कीर्तन निरंतर जारी रहता और सर्व साधारण के भोजन हेतु निरंतर अन्न भंडारा सदैव खुला रहता था। इनकी ईश्वर-भक्ति और निर्माण सेवा से जनता बहुत प्रभावित

हुई और इनके श्रद्धालुओं की संख्या दिनानुदिन बढ़ती ही गई।

इसी प्रकार निर्मल संप्रदाय के महात्माओं के जीवन भी बहुत ऊँचे थे। स्वच्छ और अति उच्च विचारों के साथ-साथ ये संस्कृत और गुरुवाणी के विशिष्ट विद्वान् भी होते थे, जिससे इनके भाषण एवं वार्तालाप आदि में भी अति आकर्षण होता था। इनके उच्च और संयत जीवन, शास्त्र और गुरुवाणी का गंभीर-ज्ञान, कोमल स्वभाव, निर्मल विचारधारा और मधुरतर भाषणों से मोहित हुई जनता बरबस खिंची आती थी। इनके आश्रमों में जनता को धार्मिक विचार और प्रभु-भक्ति की प्रेरणा मिलती थी। इस प्रकार निर्मल संप्रदायावलंबी महात्माओं ने नद-नदियों के समान परोपकार में अपनी शक्तियों का सदुपयोग करके श्रेय एवं यश उपार्जन किया। आज भी वे श्री गुरु नानक देव की प्रवाहित की हुई जन सेवा एवं प्रभु-नाम की निर्मल धारा में अवगाहन कर रहे हैं और धार्मिक जनता को नाम-नदी में स्नान कराकर, पावन जीवन बिताने की सत्प्रेरणा देकर श्रेय मार्ग पर आगे बढ़ा रहे हैं।

इसी निर्मल संप्रदाय की प्रमुख शाखा श्री ठाकुर संप्रदाय का दिग्दर्शन कराकर पाठकों को हम आत्म-सरिता के तीर पर ले जाकर शांति व शाश्वत सुखरूपी अमृत पिलाना चाहते हैं। तीर-नीर में तैरते हुए नीर-क्षीर विवेकी हंसों के दर्शन कराना चाहते हैं।

प्रेरणा-स्रोत

किसी भी कार्य के प्रति हमारी प्रवृत्ति का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण के किसी भी ओर प्रवृत्ति संभव नहीं। किसी भी कार्य को करने के लिए हमें कहीं न कहीं से प्रेरणा मिलती है और जहाँ से प्रेरणा मिलती है वही वस्तु या व्यक्ति प्रेरणा का स्रोत माना जाता है।

यही प्रश्न ग्रंथ की रचना के बारे में हमारे सामने आता है कि इसकी रचना के लिए प्रेरणा कहाँ से मिली? इसकी प्रेरणा का स्रोत कौन है ? कहाँ है ?

इस प्रश्न के उत्तर में हम इतना ही कहेंगे कि इसका प्रेरणा स्रोत है एक छोटा सा पंजाबी लेख, जो हमने ब्रह्मलीन महंत आत्मा सिंह जी के जीवन पर लिखा था और

दिन बुधवार 19 सितंबर सन् 1973 को पंजाबी साप्ताहिक पत्र 'निर्मल उद्देश्य' में छपा था।

स्वयं महंत नारायण सिंह जी, महंत आत्मा सिंह जी के अतिश्रद्धालु और महंत नारायण सिंह जी के चिरसाथी विश्वास पात्र मित्र संत करतार सिंह जी, सरदार गुरविंदर सिंह जी बी.एस.सी. आदि मेरे लेखों को विशेष प्रेम से पढ़ते हैं क्योंकि उन्हें ये रुचिकर लगते हैं। मेरा लिखने का यह मनोरथ नहीं कि मेरे लेख बहुत ही अच्छे होते हैं, मेरा लिखने का भाव इतना ही है कि ये मेरे मित्र मेरे लेखों को सर्वाधिक महत्व देते हैं। इस का एक मात्र कारण है रूचियों की विभिन्नता जैसे सूक्ति है-भिन्न रूचिहि लोकः। लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न है, किसी को कोई एक चीज़ पसंद होती है वही वस्तु दूसरों को बिलकुल अच्छी नहीं लगती। किसी को चांद अच्छा लगता है तो किसी को अंधेरा अधिक सुखकर प्रतीत होता है। बस इस रुचि की भिन्नता के कारण इन मित्रों को मेरे लेख ज्यादा पसंद आते हैं। बस इस कारण से महंत जी ने मुझसे अति आग्रह के साथ लिखवाया। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि और चाहे कोई लिखे या न लिखे इससे कोई मतलब नहीं, पर आपको अवश्यमेव लिखना होगा। बस, सख्त आर्डर को मंजूर करने के लिए मजबूर था मैं। लिख दिया तो इस पूरी मंडली को ही वह बहुत पसंद आया। बस इसी से उन्हें महाराज की जीवनी लिखवाने की प्रेरणा मिली और मुझे आग्रह के साथ बाध्य किया।

मैंने अपने लेख की बहुत सी कमियाँ बतलाईं पर उन्होंने मेरी एक नहीं सुनी। मेरा कहना था कि मैंने आज तक कोई पुस्तक नहीं लिखी और हिंदी का तो कोई छोटा मोटा लेख भी नहीं लिखा। बस वे वही रट लगाए रहे कि कुछ भी हो आपको लिखना होगा। आखिर इनका प्रेम-पूर्ण आग्रह और उस लेख की सफलता को देखकर मुझे भी विश्वास हो गया कि चाहे जैसा भी लिखा जाए पर लिख लूंगा।

पं० हकीकत सिंह 'अरविन्द'

सूची

उन ग्रंथों व व्यक्तियों की जिन से आत्म सरिता लिखने में सहायता उपलब्ध हुई।

'निर्मल पंथ दर्शन' पंजाबी रचित श्रीमान १०८ महंत दियाल सिंह जी लाहौर। 'साडा इतिहास' पंजाबी रचित प्रिंसीपल सतबीर सिंह जी यमुना नगर।

'प्रवचनसुधा' हिंदी रचित श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी मः मः उत्तराखंड यात्रा।

व्यक्ति

श्रीमान संत देवा सिंह ज्ञानी जो महंत महाराज बुड्ढा सिंह जी की पावन सेवा में 12 वर्ष तक छाया की तरह रहे।

श्रीमान् महंत नारायण सिंह जी जिन्होंने अपने गुरुदेव महाराज महंत आत्मा सिंह जी की तिरेपन (53) वर्ष तक निरंतर सेवा की।

श्रीमान् महंत गुरुदीप सिंह जी दर्शन केसरी वेदांत शास्त्री अध्यक्ष 'निर्मल संस्कृत विद्यालय' वाराणसी व पंडित राममूर्ति व कौशिक जी शास्त्री खटकर कलां ज़िला जालंधर जिन दोनों की महती कृपा से संशोधित रुप से ग्रंथ प्रेस में जा सका।

✿ शुभ सम्मति ✿

(1)

यह नैसर्गिक नियम है कि संसार में जब जब धर्म की हानि एवं अधर्म की अभिवृद्धि होती है तब-तब पारब्रह्म परमात्मा नाना रूपों में अवतरित होकर संसार की रक्षा करता है। हमारे देश में ऐसे बहुत से महापुरुष उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने आवश्यकतानुसार समय-समय पर प्रादुर्भूत होकर सर्वजन हिताय धर्म की संस्थापना की है।

श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी के रूप में मनुष्य मात्र के लिए जो आचार-संहिता (Code of Conduct) उपदिष्ट की है वह लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार का अभ्युदय करने में सक्षम है। उनकी वाणी में महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रणीत 'परोपकारः पुण्याय, पापाय पर पीडनम्' का पूरा सार सन्निहित है। वस्तुतः गुरु नानक देव जी का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब समाज में चारित्रिक दोष आ गए थे, सारा देश छोटे छोटे अनुभागों एवं विभागों में विभक्त था। अनेक धर्म व संप्रदाय अपना अलग-अलग राग अलाप रहे थे। गुरु नानक देव जी ने लोगों को अपनी वाणी सुनाकर, उनको एकता का पाठ पढ़ाया तथा सभी धर्मों का मूलतत्व वाणी द्वारा सर्व साधारण के लिए बोधगम्य बनाया।

श्री गुरु नानक देव द्वारा प्रवर्तित धर्म कालांतर में कई संप्रदायों में फैल गया। उन्हीं संप्रदायों मे से एक 'निर्मल' संप्रदाय है। इस संप्रदाय में अनेक महान् आत्माएं प्रादुर्भूत हुई हैं जिन्होंने संसार को मानवता का पाठ सिखाया तथा अपने तप एवं त्याग द्वारा संसार के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया। प्रस्तुत पुस्तक में श्री पं. हकीकत सिंह जी 'अरविन्द' ने महात्माओं का जो संक्षिप्त परिचय दिया है, उसका सिंहावलोकन करने पर सर्व साधारण के सामने इस संप्रदाय का सही रूप में चित्र उपस्थित हो जाता है। इन महात्माओं के उपदेशों, वाणियों एवं जीवनवृत से इस संप्रदाय का 'निर्मल' नाम चरितार्थ हो जाता है। जैसा 'निर्मल' संप्रदाय है वैसे ही

आदर्श एवं 'निर्मल' चरित्र भी इस संप्रदाय में प्रादुर्भूत महात्माओं के हैं। इस संप्रदाय ने मानव जीवन को लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति का साधन बताया जो कि सभी धर्मों का मूल तत्व है।

महंत रणवीर सिंह-कनखल

(2)

आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे।। (पन्ना **1030**)

'आत्म सरिता' नाम की पुनीत पुस्तिका प्रसिद्ध विद्वान् पं. हकीकत सिंह जी 'अरविन्द' ने लिख कर आत्मज्ञान का प्रचार चलाया है। जो भी जिज्ञासु, श्रद्धालु, प्रेमी इस आत्मज्ञान, भरपूर आत्म सरिता रूपी पुनीत नदी में स्नान करेगा, इसको पढ़ेगा, विचारेगा, इसके पवित्र सिद्धांत पर चलने का प्रयत्न करेगा वही जिज्ञासु इस 'आत्म सरिता' रूपी आत्म विषयिणि त्रिवेणी महान् पवित्र नदी के कुंभ स्नान का महात्म्य प्राप्त करेगा क्योंकि इस पुस्तक के महान् विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक का नाम 'आत्म सरिता' इसी उद्देश्य को लेकर ही निश्चित किया प्रतीत होता है।

सो प्रभु दूरि नाही प्रभु तूं है।। (पन्ना 243)

यथा

ततु निरंजनु जोति सबाई सोहं भेदु न कोई जीउ।। (पन्ना 488)

जब जिज्ञासु उत्तम अधिकारी आत्मा और परमात्मा का नाम त्याग लक्षण द्वारा बोध श्रोतरीय ब्रह्मनेष्टी गुरु के उपदेश द्वारा अभेद निश्चय कर लेता है तब ही यह अधिकारी इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है। जिस अवस्था की पूर्वोक्त पुनीत गुरुवाणी में चर्चा आयी है-आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे।। अविद्या के कारण ही आत्मा में जन्म मरन, सुख दुख, पुण्य पाप, अल्पज्ञतादि की कल्पना और परमात्मा में माया उपाधि से सर्वज्ञता अंतर्यामिता सुख दुख देने की सामर्थ्यादि कल्पना सर्व अविद्या उपाधि तथा माया उपाधि ही प्रतीत होती है। यह तब तक ही है जब तक अविद्या और माया का संबंध बना हुआ है।

जब श्रोतरीय ब्रह्मनेष्टी गुरु आत्मा, परमात्मा की एकता का निश्चय कराते हैं, तब इस जीव का जन्म जन्मांतरों से चला आ रहा अज्ञान सदा के लिए काफूर हो

जाता है जिसका ज़िक्र पुनीत गुरुवाणी में गुरुदेव जी ने इन शब्दों द्वारा किया है-

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु।।

हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु।। (पन्ना **182**)

जब त्याग लक्षणा द्वारा जीव की अल्पज्ञता और ईश्वर की सर्वज्ञता का परित्याग करके आत्मा और परमात्मा की एकता का निश्चय कर लिया तब इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है। जिस अवस्था की चर्चा गुरुदेव जी ने पवित्र गुरुवाणी में इन शब्दों द्वारा की है-

ततु निरंजनु जोति सबाई सोहं भेदु न कोई जीउ।। (पन्ना **488**)

सो अंतरि सो बाहरि अनंत ।। घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत।।

धरनि माहि आकास पइआल।। सरब लोक पूरन प्रतिपाल।।

बनि तिनि परबति है पारब्रहमु।। जैसी आगिआ तैसा करमु।।

पउण पाणी बैसंतर माहि।। चारि कुंट दह दिसे समाहि।

तिस ते भिंन नहीं को ठाउ।। गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ।। (पन्ना **182**)

तब उसके अन्तर आत्मा की आवाज़ सदैव यही निकलती है-

सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई।।

तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा।।

कनक कटिक जल तरंग जैसा।। (पन्ना **82**)

आतमा परातमा एको करै।। (पन्ना **661**)

जो आत्मा और परमात्मा के अभेद बोध द्वारा माया अविद्या रूपी उपाधि त्याग कर, एकता रूपी पुनीत नदी की तरंगों में स्नान करता है वही स्वरूप का आनंद प्राप्त करता है।

परंतु इस 'आत्म सरिता' रूपी पवित्र नदी के स्नान का अधिकारी तब ही बन सकता है, जब विवेक, वैराग्य शम-दम आदि शट् संपत्ति, मुमुक्षता आदि चार साधनों से संपन्न होकर श्रवण, मनन, निदिध्यासन के उपरांत तत् पद और तवं पद के संशोधन द्वारा अभेद ज्ञान का निश्चय कर लेता है। परंतु यह विवेक, वैराग्यादि पुनीत साधन भी संत, महात्मा, महापुरुषों की संगति तथा सेवा सुश्रूषा से ही उपलब्ध होते

हैं। ऐसे संत महात्मा महापुरुष परोपकारी मेघों की तरह हिमालय से उठकर शुष्क बालू के स्थानों वत जिज्ञासुओं के हृदयों को हरे भरे कर देते हैं और आत्मज्ञान रुचि वर्षा द्वारा सदा के लिए ठंडक बरसा जाते हैं।

उन महापुरुषों में से निर्मल संप्रदायांतर्गत प्रसिद्ध ठाकुर संप्रदाय है जिसमें त्यागी, तपस्वी, परोपकारी महापुरुष संत बाबा दयाल सिंह जी 'ठाकुर' आदि पुरुष हुए हैं। उनके सुयोग्य शिष्य, प्रसिद्ध विद्वान्, त्याग, परोपकार के स्वरूप श्रीमान् पं. हरी सिंह जी, निर्माता पंजाब सिंध क्षेत्र, ऋषिकेश तथा संत बाबा मिशरा सिंह जी, संकीर्तन राग के आचार्य लक्ष्मणसर, अमृतसर (पंजाब) एवं पं. देवा सिंह जी, देवपुराश्रम, मायापुर, हरिद्वार व मुलतान, पं. नंदसिंह जी मंडलेश्वर आदि प्राचीन पुरुष हैं। ठाकुर दयाल सिंह जी के गुरु भाई संत बाबा धर्म सिंह जी त्यागी तपस्वी महापुरुष हुए हैं। आगे उनके सुयोग्य शिष्य नीति निपुण, महान् परोपकारी, समाज हितैषी, प्रसिद्ध विद्वान्, श्रीमान् महंत बुड्ढ़ा सिंह जी महाराज हुए जिन्होंने बहुत दिन श्री निर्मल पंचायती अखाड़े में रहकर पंथ की महान् सेवा की। आप जी ने ही सर्व प्रथम सिंधु देश में श्री निर्मल पंचायती रमत अखाड़ा द्वारा धर्म प्रचार का प्रसार किया। इस 'आत्म सरिता' रूपी महान पुनीत नदी के घाटों की स्थापना की, जिन घाटों पर जिज्ञासु प्रेमी पहुँच कर आत्म ज्ञान रूपी तरंगों में स्नान कर आनंद प्राप्त कर सकें। आप जी ने सिंध, पंजाब, उत्तर-प्रदेश, कनखल, काशी, ऋषिकेश आदि स्थानों में धर्म प्रचार के केन्द्र स्थापित किए। उन धर्म प्रचार के केन्द्रों को परोपकारी, उदार आत्मा, श्रीमान् महंत आत्मा सिंह जी ने अपने तेज तप द्वारा और बढ़ाया तथा फैलाया है जो आज पर्यंत कल्पवृक्ष की तरह प्रति दिन बढ़ते जा रहे हैं। आप जी ऋषिकेश में चाय का क्षेत्र चला गए हैं तथा श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल में श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज के प्रकाश के लिए स्वर्ण की पालकी, शाही जुलूस के लिए स्वर्ण का हौदा, तथा अखाड़े में रोज़ाना कड़ाह-प्रसाद की अरदास कराई। यह सब आने वाले लोगों के लिए प्रकाश स्तंभ का काम करेगी।

उनके चलाए धर्म केन्द्रों को, उनके सुयोग्य शिष्य श्रीमान् महंत नारायण सिंह जी ज्ञानी विश्व विद्यालय के सुयोग्य कुलपति की तरह देखरेख करते हुए, सुंदर, सुचारू

ढंग से नित्य प्रति बढ़ाते जा रहे हैं। यह पूर्वोक्त नामावली लिखने का मेरा यह भाव है कि जो 'आत्म सरिता' रूपी पवित्र महान पुण्यमयी नदी है यह पूर्वोक्त महापुरुषों के परोपकारमय जीवन रूपी तरंगों का समूह है। जो प्रेमी, जिज्ञासु, श्रद्धालु इस पवित्र नदी के पुनीत तटों तथा पवित्र घाटों पर पहुँच कर दर्शन करेगा, स्नान करेगा तथा पवित्र उपदेशों को धारने वाला होगा, उस प्रेमी जिज्ञासु श्रद्धालु की कामना पूर्ण होगी। यही मेरे इस 'आत्म सरिता' के बार में श्रद्धापूर्ण विचार हैं।

अंत में इस ग्रंथ के लेखक प्रसिद्ध विद्वान् पं. हकीकत सिंह जी 'अरविन्द' का धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने निर्मल महापुरुषों के पुनीत जीवन रूपी स्रोतों को एकत्रित करके नदी के रूप में बहाया है। इसलिए इस पवित्र रचना का नाम, आत्म सरिता निश्चित किया है।

महंत गुरुदीप सिंह दर्शन केसरी
वेदांत शास्त्री,
श्री निर्मल संस्कृत विद्यालय
संगत लाहौरी टोला, वाराणसी।

(3)

यह एक निर्विवाद विषय है कि हमारा भारतवर्ष मंत्र द्रष्टा, तत्ववेता, आत्म-ज्ञानोपदेष्टा एवं सन्मार्गोपदेष्ट्री गुरुवाणी के मर्मज्ञ, ऋषि महर्षि, गुरु-आचार्य तथा संत महात्माओं के ज्ञानस्रोत की उद्गम पुण्य स्थली रहा है। इसी भूमि पर निर्मल संप्रदाय के आद्य प्रवर्तक वंदनीय श्री गुरु नानक देव जी महाराज ने शुभ पदार्पण करके संसार के विविध तापों से संतप्त, अशांत लोगों को शांति का सारगर्भित सदुपदेश दिया था। वैदिक सिद्धांत एवं गुरुवाणी के गुह्यज तत्वों के प्रचार-प्रसार के लिए गुरु जी ने नानाविध पथ मतभेदोपभेद एवं अन्यान्य संप्रदायों की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट निर्मल संप्रदाय की सृजना की जिसके प्रति भाई गुरदास जी ने अच्चारण किया 'मारिआ सिक्का जगत विच नानक निर्मल पंथ चलाया'। इसी संप्रदाय के अंतर्गत विद्वन्यध्दन्य भेषशिरोमणि 'ठाकुर संप्रदाय के लब्ध प्रतिष्ठ महामंडलेश्वर, सकल शास्त्र निष्णात,

तत्वदर्शी भजनानंदी, सर्वकार्य कुशल कतिपय महापुरुषों के जीवनवृत का उल्लेख प्रसिद्ध विद्वान् माननीय श्रीमान् पंडित हकीकत सिंह जी 'अरविन्द' प्रधान अखिल भारतीय निर्मल महामंडल ने जिन ऐतिहासिक सर्वोपयोगी सार्वजनिक तथ्यों का सांगोपांग पूर्णतः अध्ययन, अनुशीलन एवं संकलन बहुमुखी बुद्धि के द्वारा निष्पक्ष भाव से किया है, उसको पढ़ने का शुभावसर हमें भी मिला।

लेखक महोदय ने इस 'आत्म सरिता' नामक ग्रंथ में दूसरे महंतों संतों के अतिरिक्त धीर धारि धौरेय विद्वद्वर उदार चरित प्रसिद्ध दानवीर श्रीमान् 108 महंत आत्मा सिंह जी महाराज, निर्मलाश्रम ऋषिकेश के जीवन उल्लेख का आद्यंत विविध विषयों के द्वारा विशद वर्णन किया है।

लेखक ने 'आत्म सरिता' नामक ग्रंथ यद्यपि हिंदी भाषा में लिखा है तथापि विषय एवं प्रकरण को सुंदर एवं रोचक बनाने के उद्देश्य से उर्दू भाषा के शब्दों का जहाँ तहाँ प्रयोग किया है। भले ही कोई समीक्षाकारी समालोचक इसको दोष समझे परंतु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह नहीं अपितु उपादेय ही सिद्ध होगा।

ग्रंथ रचयिता की प्रखर बुद्धि की अलौकिक कल्पना की भूरि-भूरि प्रशंसा, हार्दिक बधाई, एवं धन्यवाद ज्ञापन किए बिना हम नहीं रह सकते हैं। यह पुस्तक बुद्धिजीवी मनीषी विद्वानों के अतिरिक्त गुणग्राही श्रद्धालु जनता को सदा-सर्वदा सर्वजन हिताय, सुखाय च, बहुत ही उपकारी सिद्ध होगी।

अंततोगत्वा हम इस सराहनीय स्तुत्य कार्य के प्रेरक एवं भावुक श्रीमान् महंत नारायण सिंह जी ज्ञानी, वैद्यराज-निर्मलाश्रम, ऋषिकेश की भी बहुत- बहुत प्रशंसा करते हैं जिन्होंने अपने परम श्रद्धेय गुरुजनों की पुण्यमयी जीवन कथा लिखवा कर ''यावज्जीवेतव्यं वन्देवेदान्त गुरुमी बरम्'' इस उच्चतम पुनीत आदर्श का पालन किया है।

महंत बलवीर सिंह शास्त्री वेदांताचार्य
गुरुद्वारा बाललीला, मैनी संगत
पटना सिटी, बिहार।

✦ धन्यवाद ✦

भारत के भक्तजनों की संत महात्माओं के चरणों में कितनी अटूट श्रद्धा और भक्ति है, इसका दृढ़ निश्चय मुझे तब हुआ जब गुरुवर महंत आत्मा सिंह जी की पहली वर्षी मनाने के बाद में चन्द भक्तजनों और देवियों से धर्म संबंधी बातें कर रहा था। बातचीत के सिलसिले में स्वर्गीय गुरुदेव की जीवनी 'आत्म सरिता' के बारे में बातचीत चल गई।

गुरु जी के चरणों की परम श्रद्धालु रूकमनी देवी धर्म पत्नी वैकुंठ वासी श्री गोविंद हीरा ने कहा 'महाराज गुरु जी का जीवन हिन्दी में छपना चाहिए जिसे सिंधी लोग भी पढ़ सकें।' हमने कहा जीवन तो उनके श्रद्धालु और हमारे स्नेही संत हिन्दी में ही लिख रहे हैं, पूरा लिखा जाएगा तो छपवाने का प्रयत्न करेंगे। यह सुनकर वह बड़ी प्रसन्न हुई और तुरंत कहा कि 'महाराज! ऐसा ही है तो स्वर्गीय पतिदेव की स्मृति में इस पुण्य कार्य में 5000 रुपये मैं अर्पण कर दूंगी।'

मैंने इसे स्वीकार कर लिया और उसने पाँच हजार की रकम मुझे सौंप दी।

इसी प्रकार बंबई में भी बातें चलीं तो मैंने कहा जीवनी तो मुकम्मिल लिखी जा चुकी है, हम ऋषिकेश में जा कर किसी अच्छे प्रेस की तलाश करेंगे।

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि राधी बाई धर्मपत्नी हीरानंद मलकानी ने पास ही में बैठे हुए अपने प्रिय पुत्र गुलू-गुलशन से कहा-'बेटा तेरा कागज़ का कारोबार है, तू पुस्तक छपाने के लिए अच्छे से अच्छा कागज महाराज को दे दे।' बेटे ने माता की आज्ञा मानकर कागज देना स्वीकार कर लिया।

सो इस प्रकार तीस 30 रिम कागज बल्लारपुर मैपलीथो सेवा कराई श्री जे. बी. अडवानी एंड कंपनी प्राईवेट लिमिटेड चैरिटेबल ट्रस्ट बंबई ने। सो मैं प्रेमी भक्तजनों का हृद्‌य से धन्यवाद करता हुआ, आशीर्वाद देता हूँ कि दयामय भगवान इन प्रेमी भक्तों को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ाने की कृपा करते रहें।

अगर मैं अपने परम स्नेही मित्र पंडित हकीकत सिंह जी 'अरविन्द', जिन्होंने बिना आना कानी किए जीवनी लिखने की मेरी इच्छा की पूर्ति करने की स्वीकृति दे दी और फिर इधर प्रूफ संशोधन का काम बीमारी की हालत में भी पूरा किया, धन्यवाद न करूं तो मेरे कर्त्तव्य में भारी त्रुटि होगी। अतः मैं प्रिय मित्र 'अरविन्द' जी का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

महन्त नारायण सिंह

सं० 1978 निर्मल आश्रम, ऋशिकेश (देहरादून)

आत्म निवेदन

निर्मल आश्रम में संतों की परंपरा प्रारंभ से ही आचार-शुद्धि के साथ आध्यात्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन के लिए कृत-संकल्प रही है। इन संतों ने जहाँ कहीं भी अपने डेरे डाले अपने आस-पास के क्षेत्र में धर्म-गुरुओं के वचनामृत का प्रचार-प्रसार, भजन-कीर्तन-अरदास के साथ ही शिक्षा का विस्तार करने में अपना मूल्यवान योगदान दिया है। प्रस्तुत पुस्तक 'आत्म-सरिता' में इन्हीं संतों की लोकमंगलकारी सेवाओं का सविस्तार उल्लेख किया गया है। आजकल व्यवसायी संत तो यत्र-तत्र-सर्वत्र सुलभ हैं, परंतु तपोपूत आचरण वाले लोक हिताय समर्पित संतों के दर्शन दुर्लभ हैं। अस्तु सच्चे संतों की लोक-लीलाओं का विवरण उपलब्ध कराने वाली यह पुस्तक निःसंदेह पठनीय है, संग्रहणीय तथा आचरणीय भी है।

मैं स्वयं को भाग्यशाली मानती हूँ कि हमारे मार्गदर्शक, लोक हित के लिए समर्पित संत जोध सिंह जी महाराज ने प्रस्तुत पुस्तक की प्रूफ-शोधन का सेवा-कार्य संपन्न करने का मुझे अवसर प्रदान किया। अतिरिक्त लाभ यह मिला कि मैं निर्मल आश्रम के पूर्ववर्ती अनेक संतों के प्रेरक प्रसंगों का विहंगावलोकन कर सकी।

नीरजा त्रिवेदी

निर्मल आश्रम दीपमाला पगारानी

पब्लिक स्कूल, ऋषिकेश

तरंग 1

ठाकुर संप्रदाय

जगद् गुरुमहं वन्दे नानकं विश्व-पावनम्।।
वोधार्णवं महाशान्तं देवंच करुणाकरम्।।
सुन्दर मनवच कर्म जिन सुन्दर गुण भरपूर।।
सुन्दर ज्ञान ध्यान जिन आसुरी संपत दूर।।
सुन्दर गुरुमत पन्थ जिन दर्शायो मति मन्द।।
सुन्दर सिंह गुरुदेव के बन्दौं पद 'अरविन्द'।।

महान् निर्मल संप्रदाय के अंतर्गत एक 'ठाकुर संप्रदाय' है जो ईश्वर प्रदत्त शक्तियों का सदुपयोग करने में, अति प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है।

ठाकुर संप्रदाय में अनेक तपस्वी, भजनानंदी परोपकारी, असाधारण विद्वान् एवं सच्चरित्र महात्मा हो चुके हैं जिनमें से कतिपय महापुरुषों का चरित्र अनुकरणीय है।

श्री ठाकुर दयाल सिंह जी

आपका जन्म अमृतसर के किसी उपनगर का ही था। पिता का परलोक वास हो जाने पर बाहर से लकड़ियाँ लाकर बेचते थे। बस इसी की आमदनी से माता और अपना निर्वाह करते थे। 18 वर्ष की आयु में माता जी के परलोक प्रस्थान के अनंतर, उदास होकर आप महाराज बाबा राम सिंह जी के पास आने-जाने लगे। यह अलमस्त फकीर बाबा अटल साहिब के समीप श्मशान भूमि में रहते थे। उनके सत्संग से आप को प्रेम का ऐसा अनूठा रंग चढ़ा कि आप उनके शिष्य बन गए। अपने परिश्रम की कमाई से फक्कड़ बाबा की सेवा

करते, उनकी आज्ञा मिलते ही उनको योग-वाशिष्ट सुनाने लग जाते, कभी-कभी वे दो पंक्तियाँ सुनकर ही कह देते ठहर जाओ अर्थ-विचार कर लेने दे। दो-दो दिन आगे न बढ़ने देते और कहते कि अभी विचार कर रहे हैं, वे विचार करते-करते समाधिस्थ हो जाते। कभी-कभी इसी दशा में दस-दस दिन व्यतीत हो जाते। बाबा जी की मस्ती का रंग इनको भी चढ़ने लगा। उनके लिए आपने उसी श्मशान भूमि में कच्ची कुटिया बना ली। इनकी कुटिया को देखकर महात्मा ने कहा कि 'दयाल सिंह! तेरा प्रवृत्ति में चित्त है, अच्छा कोई हानि की बात नहीं, राजा-महाराजा तुम्हारे चरणों में सिर झुकाया करेंगे, पर प्रवृत्ति में रहते हुए भी अनासक्तभाव से रहना।'

गुरुदेव के देहत्याग के बाद आप पहले से भी अधिक मग्नावस्था में रहने लगे। कठिन तप और जप के प्रभाव से सर्व सिद्धियाँ आपके पास हाथ जोड़कर खड़ी रहती थीं पर वह इतने से ही संतुष्ट होकर साधना से विरक्त नहीं हुए और अध्यात्म मार्ग पर बढ़ते ही गए। जिस पद को योगीजन अनेक जन्मों में प्राप्त करते हैं उस पद को आपने आत्मज्ञान के द्वारा प्राप्त किया। जिस उच्च अवस्था प्राप्त पुरुष को गीता में स्थितप्रज्ञ कहा गया है,उस अवस्था को प्राप्त कर आप कृतकृत्य हो गए। आप संत महात्माओं में सिद्धयोगी नाम से प्रसिद्ध हुए जनता में भी अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की, इसी कारण से आप से दीक्षा लेकर बहुत लोग निर्मल मतावलम्बी बने।

जनता में अत्यधिक प्रतिष्ठा के कारण जिस स्थान पर बैठ कर आप भजन ध्यान किया करते थे उस स्थान को आपके श्रद्धालु भक्तों ने आप के नाम पर खरीद लिया और धीरे-धीरे वहाँ पर एक अच्छा आश्रम बन गया जो आगे चलकर 'डेरा ठाकुरां' नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् महंत साहिब, महंत हरदयाल सिंह जी ने डेरे के बहुत से मुज़ारों द्वारा अधिकृत भूमि जीत कर डेरे की संपत्ति में शामिल कर दी।

श्री ठाकुर दयाल सिंह जी के तपतेज का प्रभाव इतना बढ़ा कि आपके आश्रम में दो से तीन सौ तक साधु-संत भोजन पाते थे, परंतु महाराज जी ने भोजनादि के प्रबंध के लिए डेरे से बाहर कभी पैर नहीं रखा।

एक दिन शहर में यह बात उड़ गई कि आज ठाकुर जी के आश्रम में आटा, दाल न होने के कारण भोजन नहीं बन पाया, बस फिर क्या था, घर-घर से इतना अनाज इकट्ठा हो गया कि कई मकान गेहूँ आदि से भर गए।

आपका यश सुनकर महाराजा रणजीत सिंह जी, महाराजा पटियाला आदि राजागण आपके दर्शन को आया करते और विनती किया करते कि महाराज आश्रम के नाम जागीर लगा देने की आज्ञा दीजिए। तो महाराज कहते कि भाई! यह लंगर गुरु का है, जनता का है, यह अटूट अन्न क्षेत्र है, अतः किसी एक आध राजा, महाराजा से भूमि आदि लेने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता।

महाराजा रणजीत सिंह के बाद महारानी जिंद कौर ने कुछ गाँव डेरे के नाम लगा देने की आज्ञा मांगी तो ठाकुर जी ने बार-बार के इस झंझट को हमेशा के लिए खत्म करने के लिए स्पष्ट कह दिया-'महारानी ! यदि हमारी प्रसन्नता चाहती हो तो फिर कभी डेरे में आने का कष्ट न करना।'

योग्य उत्तराधिकारी समझ कर आपने संवत् 1915 में संत गुलाब सिंह को डेरे की गद्दी सौंप दी और संवत् 1916 में ब्रह्मलीन हो गए। ❑

तरंग 2

पंडित हरि सिंह जी महाराज

श्री ठाकुर दयाल सिंह जी के 17 शिष्य हुए जिन में से एक संत गुलाब सिंह जी को आपने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था, शेष में से दो महान् विभूतियों का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है।

श्री ठाकुर दयाल सिंह जी के शिष्यों में सबसे योग्यतम और अमूल्य रत्न थे–श्री 108 पंडित हरि सिंह जी महाराज 'कथा वाले' जो सर्व समर्थ होते हुए भी आजीवन विरक्त रहे। बड़े-बड़े भवनों का निर्माण भी किया पर उनकी ममता से मुक्त रहे और जीवन पर्यंत रुपये-पैसे को हाथ से छुआ तक नहीं।

आपका जन्म ग्राम दौलताला ज़िला रावलपिंडी में संवत् 1888 में हुआ। बीस वर्ष की आयु में अचानक एक दिन घर से निकल पड़े और ऐसे आत्म-ज्ञानी गुरु की तलाश में अनेक तीर्थों में घूमने लगे जो संसार-चक्र से निकालकर उस परम धाम में पहुँचा दें जिससे फिर कभी गिरने का भय न रहे। जिसे गीता में इस प्रकार कहा है-

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृतिः प्रसृता पुराणी।।
यथा-यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

यथा

नानक बधा घरु तहां जिथै मिरतु न जनमु जरा।। (पन्ना **44**)

अनेक महात्माओं के दर्शन सत्संग किए पर कहीं से पूर्ण संतोष न हुआ।

आखिर भारत के कई प्रमुख भागों का चक्कर काटकर संवत् 1902 में दीवाली पर अमृतसर पधारे और महापुरुष ठाकुर दयाल सिंह जी के दर्शन किए। बस दर्शनमात्र से मनोदशा बदल गई। भजन चिंतन में चित्तवृत्ति स्थिर हो गई। सेवा स्मरण करते रहे और अनंत सेवा, सरलता एवं नम्रता, आदि गुणों से ठाकुर जी महाराज को प्रसन्न किया। ठाकुर जी महाराज ने उन्हें निर्मल मत में दीक्षित करने की कृपा की। कुछ दिन वहीं रहकर गुरुस्थान की सेवा की और श्री ठाकुर जी महाराज के स्नानादि की सेवा संभाली। बाद में श्री ठाकुर जी की आज्ञा पाकर श्री पंडित भगत सिंह जी जो ठाकुर जी के शिष्य थे, की मंडली में रहकर संस्कृत का अध्ययन करने लगे। व्याकरण, काव्य, कोषादि पढ़कर न्याय, वेद, वेदांत के पारंगत विद्वान् हो गए।

आप की बुद्धि अति-तीव्र थी। ग्रंथ-धारण-शक्ति अपूर्व थी। अतः आसानी से अर्थ सहित पाठ कंठस्थ कर लेते थे। पूर्ण विद्वान् होकर स्वेच्छा से तीर्थाटन करने लगे। अनेक पवित्र तीर्थ स्थानों के दर्शन यात्रा कर, ऋषिकेश में आ विराजे। यहाँ पर साधु-समाज में आप की बहुत प्रतिष्ठा हुई। व्यास भगवान की तरह आप बहुत से साधु संतों की सभा में बैठ कर कठिन ग्रंथों की अपूर्व ढंग से व्याख्या करते, बड़े-बड़े विद्वान् आपकी व्याख्या सुनकर मंत्र-मुग्ध हो जाते थे। विशेषता यह थी कि आत्म पुराण जैसे वृहद् एवं गूढ़-ग्रंथों की कथा आप बिना पुस्तक हाथ में लिए करते थे। ऐसा मालूम होता था कि सरस्वती आपकी जिहवा में निवास करती है। अनेक विद्वान् साधुओं ने अपने पास पुस्तक लेकर आपकी कथा सुनी कि ठीक आनुपूर्वी 'आत्म पुराण' आप को कंठस्थ है या कि दिखावा मात्र है। पर एक अक्षर का भी अंतर न पड़ा तो हैरान होकर आपकी अपूर्व प्रतिभा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे। 'दृष्टांत तथा प्रमाणों से सुसज्जित आपकी कथा श्रोताओं के हृदय में आनंद का स्रोत प्रवाहित कर देती थी।

एक बार आप काशी चले गए। वहाँ संत समाज में आपका बहुत आदर हुआ। एक दिन आपने नेपाल जाकर पशुपति नाथ की यात्रा करने की अभिलाषा व्यक्त की तो उपस्थित सभी संत महात्माओं ने समर्थन किया और बहुत से साधु संत साथ चलने को तैयार हो गए। फलस्वरूप बहुत से साधु संतों सहित मंजिल-ब मंजिल नेपाल पहुँच गए। उस समय आपके साथ बड़े-बड़े संत महात्मा, जैसे पूज्यपाद तत्वदर्शी श्री-श्री 108 पंडित ईश्वर सिंह जी महाराज 'दौघर' (प०) वाले तथा और भी अनेक विद्वान् महात्मा थे। मेला-पर्यंत ब्रह्मविचार एवं कथा उपदेशों का अखंड प्रवाह चलता रहा। मेले की समाप्ति होने पर वहाँ के रीति-रिवाज के अनुसार पंचमी वाले दिन महाराजाधिराज नेपाल नरेश, सभी संप्रदायों के संत महात्माओं को विदायगी देकर सम्मान सहित विदा करते थे।

मेले के अंतिम दिन सभी संप्रदायों के महात्मा विराजमान थे। स्वयं नेपाल नरेश के राणा जंग बहादुर भी उपस्थित थे। उस समय सरकार के आशय अनुसार संत सत्यनाम सिंह जी ने साग्रह प्रार्थना की कि आज का दिन अति शुभ एवं सौभाग्यपूर्ण है जिसमें वेद वेदांगों व शास्त्रों के ज्ञाता अत्यधिक महात्मा सुशोभित हैं सो आप लोगों की अमृत वाणी द्वारा महाराजाधिराज कुछ ब्रह्मविचार श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं। यह सुनकर सभी महात्मा चुप हो गए। तब जगद्वंदनीय श्री पंडित ईश्वर सिंह जी का इशारा पाकर श्री पंडित हरि सिंह जी ने भाषण आरंभ किया। भाषण इस ढंग से गुंथन किया जिसे सुनकर उपस्थित सभी संत महात्मा धन्य-धन्य कर उठे। तो नेपाल नरेश ने उठकर कहा-आज तक मैंने ऐसा सुमधुरतम, सुधास्रावी संभाषण कभी नहीं सुना। 'धन्य महात्मा' कहकर दस हजार रुपये भेंट किए पर 'वीत रागस्य तृणं जगत्' के अनुसार निस्पृह महात्मा ने सारी रकम लौटा दी। उसमें से एक पैसा

भी नहीं ग्रहण किया। यह बात आज से सत्तर (70) वर्ष पहले की है जब एक रुपये का 111 मन गेहूँ मिलता था।

इसके अनंतर यथा क्रम तीर्थों के दर्शन स्नान करते हुए वापस ऋषिकेश आ विराजे। संवत् 1960 के करीब पंजाब सिंध क्षेत्र जैसे विशाल भवन का निर्माण किया। उसमें महात्माओं के लिए अन्नक्षेत्र स्थापित किया। यह सब महान कार्य आपने पंजाब सिंध के केवल एक दौरे में ही सम्पन्न किया। आप 'कथा वाले महात्मा' के नाम से प्रसिद्ध थे। आप अहर्निश ब्रह्म-विचार में ही व्यतीत करते थे। सम्वत् 1962 के प्रयाग कुंभ पर

जिउ जल महि जलु आइ खटाना।।
तिउ जोती संगि जोति समाना।। (पन्ना **278**)

सुखमनी साहिब के वचनानुसार वहीं माता गंगा की गोद में सदैव के लिए सुख की नींद सो गए।

❑

तरंग 3

महंत बाबा मिशरा सिंह जी

बाबा मिशरा सिंह जी ठाकुर संप्रदाय के देदीप्यमान नक्षत्र थे। आपका जन्म संवत् 1969 में चकोठी ग्राम, मुजफराबाद, काश्मीर में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण घराने में हुआ। आप बाल्यावस्था से ही अति सौम्य एवं सरल स्वभाव के बुद्धिमान बालक थे। बचपन में आपको गुरुमुखी लिपि पढ़ने में रूचि पैदा हुई। आपने गुरु नानक देव जी की पावन वाणी कंठस्थ कर ली। पावन गुरुवाणी के अध्ययन से सांसारिक झंझटों से वैराग्य हो गया। फलस्वरूप घर के लोगों से नाता तोड़कर अमृतसर में श्री ठाकुर जी के प्रसिद्ध स्थान में आकर ठहर गए। ठाकुर जी से आज्ञा लेकर आश्रम की सेवा से निवृत्त होकर संगीत विद्या सीखने लगे। अल्प काल में ही अच्छे गायक बन गए। आपका मनोमुग्धकारी संगीत सुनकर श्री हरिमंदिर साहिब के प्रबंधकों ने दरबार साहिब में संगीत चौकी करने के लिए विनय की, पर आपने वेतन पर गुरुवाणी का कीर्तन करना स्वीकार न किया। आखिर अवैतनिक रूप से कीर्तन करने का आग्रह मान लिया। इससे शहर में आपकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। आपका मधुर कीर्तन सुनने के लिए श्री हरिमंदिर का प्रांगण पूरा भर जाता था। आपके नयनाभिराम दर्शन से एवं अलौकिक सुरीले संगीत से श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो जाते।

एक बार इसी प्रकार की मनोहारी संगीत-ध्वनि सुनकर बाबा फतह सिंह जी आप की ओर आकर्षित हुए और सोचने लगे कि यदि अपने स्थान की गद्दी इन्हीं को सौंप दें तो यह स्थान भाग्यवान होगा क्योंकि इनसे बढ़ कर कोई योग्य साधु मिलना कठिन है, इससे स्थान की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और हम निश्चिंत भी

हो जाएगे। इस प्रकार विचार कर बाबा फतह सिंह जी ने ठाकुर दयाल सिंह जी से प्रार्थना की कि महाराज यह संत आश्रम संभालने हेतु मुझे दे दीजिए ताकि इसे अपना स्थान सौंप कर मैं निश्चिंत हो जाऊँ। इसमें न केवल स्थान को आबाद रखने की ही योग्यता है वरन् आश्रम को उन्नत करने की क्षमता भी दिखाई देती है।

यह सुनकर ठाकुर जी बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि आप के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। यह संत भी और जो कुछ भी चाहो सब आप का ही है।

इस प्रकार बाबा मिशरा सिंह जी को 27 जनवरी सन् 1916 को अपना उत्तराधिकारी नियत किया और मकान व ज़मीन तथा समस्त चलाचल संपत्ति की वसीयत अपने उत्तराधिकारी संत मिशरा सिंह के नाम लिख दी।

महंत बाबा मिशरा सिंह जी तत्कालीन योग्यतम महापुरुषों में से एक थे। आपकी नयनाभिराम मनोहर मूर्ति को देखकर हर व्यक्ति का हृदय मोहित हो जाता था। संगीत की कोमल कला के जिज्ञासु, आपके पास सदैव रहते थे। आप मधुर भाषी सब के हितकारी एवं व्यवहार कुशल महापुरुष थे। उदार ऐसे कि डेरे में आए साधु महात्मा को देखकर आपकी प्रसन्नता का कोई पारावार न रहता। वैसे तो आपके बहुत से शिष्य थे परंतु पंडित देवा सिंह जी देवपुरा (हरिद्वार) वाले व महंत रत्न सिंह जी बहुत ही विख्यात महापुरुष हुए हैं।

महंत रत्न सिंह जी महाराज

बाबा मिशरा सिंह जी के शिष्यों में अति प्रभावशाली व्यक्ति थे, महंत रत्न सिंह जी महाराज। आपका जन्म संवत् 1900 में ग्राम पनियाली इलाका पुंछ (कश्मीर) में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। आप बाल्यकाल से ही शीतल स्वभाव के थे। छोटे बड़े सब के साथ आपका प्रेम पूर्ण बर्ताव था। घर बाहर सभी में आप स्नेह की दृष्टि से देखे जाते थे। जब कुछ सयाने हुए तो गुरुमुखी सीखने की तीव्र इच्छा हुई। सच्ची लगन और परिश्रम के कारण शीघ्र ही गुरुमुखी में

असाधारण योग्यता प्राप्त कर ली। किशोरावस्था में जब कभी कथा करते तो श्रोतागण आनंद विभोर हो जाते।

आप जब जवान हुए तो एक बार पेशावर चले गए। वहीं आपको बाबा मिशरा सिंह जी के दर्शन हो गए। बाबा जी के चरणों की ओर इतने आकृष्ट हुए कि बस उन्हीं के हो गए। उन के कीर्तन से इतने प्रभावित हुए कि घर वालों का ध्यान तक न रहा। अंत में बाबा मिशरा सिंह जी के साथ अमृतसर आ गए। डेरे की समस्त सेवा का भार अपने कंधों पर ले लिया यथा गुरुदेव बाबा मिशरा सिंह जी को प्रातःकालीन स्नान कराना, श्री गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश व धूप-दीपादि से पूजा करना, अभ्यागत महात्मा का स्वागत एवं सेवा सुश्रूषा करना, यथा-समय महात्माओं व संगत को भोजन कराना, इस प्रकार समस्त कार्यभार संभाल लिया। यह महापुरुष स्वभाव के इतने कोमल थे कि किसी को कभी कटु वचन नहीं कहते थे, सदैव शांत रहते। आपके शील और अंतर्मुखी वृत्ति, मधुर वाणी और आज्ञापालन आदि सद्‌गुणों से बाबा जी इतने प्रसन्न हुए कि यह निश्चय कर लिया कि इसमें आश्रम की सेवा का गुरुभार संभालने की क्षमता है। इसलिए बाबा मिशरा सिंह जी ने संवत् 1923 में शहर के महात्माओं की सभा में संत रत्न सिंह जी को अपने हाथों रस्म दस्तारबंदी कर दी।

इसके बाद आपने जिस योग्यता और लगन से आश्रम का संचालन किया वह सब महात्माओं के लिए अनुकरणीय है। आप गुरुवाणी का बहुत अभ्यास किया करते थे। आपका गुरुवाणी पाठ का उच्चारण बहुत ही शुद्ध था इसलिए कितने ही साधु संत पाठी व ज्ञानी होकर भी आपको सुना कर पाठ शुद्ध किया करते थे। आप स्वभाव के दयालु और परोपकारी महापुरुष थे। आप प्रभु-नाम के अति प्रेमी थे। आपकी अमलदारी में डेरे की असाधारण उन्नति हुई।

एक बार जब देश व्यापी प्लेग का रोग फैला तो एक मरीज़ आपके स्थान में मृत्यु का ग्रास बन गया, तब नगर पालिका कमेटी ने आप के डेरे के सभी संतों

को तरन-तारन वाली सड़क पर एक सराय में टिकाया (ठहराया)। उस समय जो सरकारी आज्ञा थी, आपने बिना हिचकिचाहट के स्वीकार की। मकान और तमाम सामान जला दिया। इस असाधारण धैर्य के लिए आप को कुर्सी-नशीनी का अधिकार सरकार की ओर से दिया गया। फिर आपने नया मकान बनवाया।

पहली वसीयत आपने संत मोता सिंह के नाम की। उनके परलोकवासी होने पर संत हाकम सिंह जी के नाम वसीयतनामा किया।

जनरल कमेटी टूट जाने पर निर्मल महामंडल अस्तित्त्व में आया और आप उसके प्रधान बनाए गए। आजीवन आप इस उच्चपद पर आसीन रहे।

अंत में आप 82 वर्ष की दीर्घायु भोग कर 17 चेत संवत् 1986 को अमृतसर ही में भौतिक शरीर का परित्याग कर ब्रह्मज्योति में विलीन हो गए।

महंत रत्न सिंह जी के शिष्य

महंत रत्न सिंह के शिष्यों में सात प्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं यथा भजन-मूर्ति तपोनिधि श्री श्री 108 स्वामी 'भगत सिंह जी महाराज पिंडी घेबवाले' जिनके शिष्य श्री श्री 108 पंडित सुच्चा सिंह जी महाराज निर्मल अखाड़े के महंत पद को सुशोभित कर रहे हैं। दूसरे श्री श्री 108 बाबा प्रेम सिंह जी (ऋषिकेश) झाड़ी वाले, संस्कृत के महान विद्वान् थे। बहुत से साधु संतों ने आपके विद्यार्थी होने का गौरव प्राप्त करके समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनमें प्रमुख थे श्रीमान् पंडित संत सिंह जी वेदांताचार्य काशी वाले, निर्मल अखाड़ा के वर्तमान प्रेसीडेंट महंत पंडित सुच्चा सिंह जी महाराज लब्ध-प्रतिष्ठ महापुरुष हैं। तीसरे ज्ञानी सरोवर सिंह जी थे। आप नेत्रहीन होने पर भी गुरु घर की विद्या के व्यास कहे जाते थे। आप ने मुक्तसर में स्थान बनाया था जिसके वर्तमान महंत हैं ज्ञानी राम सिंह जी जो महान् विद्वान् हैं। चौथे हैं ज्ञानी भगवान सिंह जी सहारनपुर वाले। पाँचवें ज्ञानी विशन सिंह क्रीट जो प्रसिद्ध वक्ता और अच्छे लेखक भी हैं। छठे बाबा पाल सिंह जी। सातवें हैं गद्दी के वर्तमान महंत हाकम सिंह जी।

महंत हाकम सिंह जी

महंत हाकम सिंह जी का जन्म संवत् 1953 को ग्राम पणियाली तहसील बाग (पुंछ कशमीर) में हुआ। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार आप बचपन से ही स्वभाव के सरल, सहनशील, मधु भाषी और प्रतिभा संपन्न बालक थे। दुराग्रह और रोना आदि बाल्यकाल के दोष आप में नहीं थे। प्रकृति के नियमानुसार जैसे-जैसे शरीर की अभिवृद्धि हुई, वैसे ही बुद्धि भी तीक्ष्ण होती चली गई। खेल-कूद में कम और पठन-पाठन में विशेष रूचि थी। बोलचाल में शिष्टाचार और सरलता थी। गुण ग्रहण करने की शक्ति भी असीम थी। वार्तालाप में मधुरता और कुशलता आप के बचपन का विशेष गुण था।

कुछ सयाने हुए तो पिता जी एक बार अमृतसर साथ ले आए। यहाँ महंत रत्न सिंह जी के पास ठहरे। अमृतसर गुरुपुरी की अद्‌भुत रचना देखकर पावन गुरुवाणी का अमृत कीर्तन सुनकर मन गुरु चरणों में रम गया। पीछे लौट कर घर जाना आपको अच्छा न लगा। आपका आग्रह देखकर पिता जी ने आपको यहीं छोड़ जाना श्रेयस्कर समझा। यहाँ पठन-पाठन में प्रवृत्त हो गए। विद्याध्ययन में रूचि देखकर बाबा रत्न सिंह जी ने पंजाबी और हिंदी पढ़ाना आरंभ कर दिया। आपने शीघ्र ही हिंदी, पंजाबी और संगीत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। वेदांत भी पढ़े और श्री गुरु ग्रंथ साहिब का अर्थ सहित पर्याप्त मनन किया। गुरुघर के इतिहास का भी गंभीर अध्ययन किया तथा गुरुवाणी के अच्छे ज्ञानी बन गए। इसके साथ-साथ उर्दू साहित्य और भाई नंदलाल जी का काव्य संग्रह फारसी में पढ़ा। धीरे-धीरे भाषण-कला में भी आपने बहुत महारथ प्राप्त की। इस प्रकार आप लोकप्रिय नेता बन गए। बाहर से आए महात्मा व यात्री आपके शिष्टतापूर्ण बर्ताव से बहुत प्रसन्न होते थे। शहर के संत महंत भी आपकी प्रशंसा करते थे।

इस प्रकार श्रद्धाभक्ति पूर्ण सेवा, विमल बुद्धि, कार्यकुशलता, सच्चरित्रता

आदि गुणों के वशीभूत होकर श्रीमान् महंत रत्न सिंह जी ने एक माघ संवत् 1983 को अपनी गद्दी देकर महात्माओं के भारी समागम में अपने कर-कमलों से महंती की दस्तार संत हाकम सिंह जी के सिर पर सजा दी। डेरे के लेन-देन आदि का काम तो पहले भी आप ही करते थे पर आज से कुल कार्यभार महंत हाकम सिंह जी को सौंप दिया गया। अब महंत हाकम सिंह जी सुचारू रूप से डेरे की सेवा करने लगे।

संवत् 1987 में महंत रत्न सिंह जी के ब्रह्मलीन होने पर, आप ही उनकी जगह निर्मल महामंडल के प्रधान चुने गए। सन् 1932 में आपने आल इंडिया निर्मल महामंडल को रजिस्टर्ड करवाया। 15 वर्ष तक लगातार मंडल के सर्वसम्मति से प्रधान चुने जाते रहे। इस अवधि में आपने कथा, भाषण आदि में विशेष योग्यता प्राप्त की। अन्यान्य सभा सोसाइटियों और संत समागमों में आपके संभाषण अत्यधिक आदर से सुने जाते थे। इन गुणों और अति पवित्र जीवन के कारण आपकी साधु संतों तथा भक्त समाज में बहुत प्रतिष्ठा हुई। आप एक अच्छे लेखक भी थे। 'निर्मल पत्र' आदि साप्ताहिक पत्रों में आपके लेखों को प्रथम स्थान मिलता था।

तीन चार वर्ष तक महामंडल की अध्यक्षता से हठ पूर्वक दूर रहे पर अंत में प्रतिष्ठित संतों महंतों के आग्रह से फिर आपने प्रधान पद की सेवा स्वीकार कर ली और आखिर में ब्रह्मलीन होने के चार साल पहले आपको रक्त-चाप (ब्लडप्रैशर) की शिकायत हो जाने से आपने अध्यक्ष पद की सेवा के लिए अस्वस्थ होने के कारण विवशता व्यक्त की जो समाज ने स्वीकार कर ली। दुर्भाग्य से फिर सन् 1972 के अंत में आप को दोबारा हार्ट-अटैक हो गया। भरपूर चिकित्सा होने से बच तो गए पर खाट से न उठ सके। इसी दौरान अपनी कुल चलाचल संपत्ति की वसीयत अपने सुयोग्य शिष्य संत मनजीत सिंह जी के नाम कर दी।

आपकी इस रुग्णावस्था से सारा पंजाब ही चिंतित था। सभी सभा-सोसाइटियों के कर्मचारियों का, जिनको आपका अमूल्य सहयोग प्राप्त होता था, आपके पास ताँता लगा रहता था। इतना ही नहीं प्रत्युत दिल्ली, जम्मू, कशमीर तक घबराहट मच गई थी। आखिर में आप 13 अगस्त सन् 1973 को-

जा कउ आए सोई बिहाझहु हरि गुरु ते मनहि बसेरा।।

निज घरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा।। (पन्ना **13**)

के अनुसार जिस अमर वस्तु को प्राप्त करने आए थे, श्रवण-मनन आदि साधनों के द्वारा उसी आत्मज्ञानरूप अमर वस्तु को प्राप्त कर और प्रेमी भक्तजनों को सत्नाम का जाप जपाकर अपने निज घर स्वरूपब्रह्म में लीन हो गए।

आपके चार सुयोग्य शिष्य हैं 1. आपके उत्तराधिकारी मनजीत सिंह जी जिन्होंने आपका सौंपा हुआ भार अपने कन्धों पर लिया है। 2. पंडित ईश्वर सिंह जी शास्त्री (काशी)। 3. संत मान सिंह जी (दिल्ली) और 4. संत राम सिंह जी (अमृतसर) जो डेरे ही में रहकर पूर्ववत् सेवा कार्य कर रहे हैं।

❑

तरंग 4

श्री पंडित महंत देवा सिंह जी

पंडित देवा सिंह जी बाबा मिशरा सिंह जी के ही चेले थे। ठाकुर-संप्रदाय रूपी नदी की सीप के महान मोती थे। आपका जन्म ग्राम बीरबल जिला शाहपुर में संवत् 1905 में हुआ। बचपन ही में सम्मोहक पदार्थों की ओर से आपका मन विरक्त होता गया। आप संवत् 1932 में चुपचाप घर से निकल पड़े और सोचने लगे कि भजनानंदी महापुरुष से उपदेश लेकर ईश्वर-चिंतन कर मानव-जन्म को सफल करना चाहिए। इसी विचार में निमग्न हुए आप किणाणा में आ टिके। यह नाथ पंथ के योगियों का प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ बहुत से महापुरुषों के विचार सुने पर उन लोगों के रहन-सहन और खान-पान से कुछ घृणा सी हुई। अतः वहाँ से निराश होकर अमृतसर में आ विराजे। यहाँ श्री दरबार साहिब में प्रतिदिन प्रातः कालीन कीर्तन श्रवण करने लगे। ब्रह्म-मुहूर्त में नामरसिक बाबा मिशरा सिंह जी का कीर्तन हुआ करता था। वैराग्यमय कीर्तन का पवित्र हृदय पर गहरा असर हुआ। फलस्वरूप आपने बाबा मिशरा सिंह जी का शिष्य बनने का दृढ़ संकल्प कर लिया। तदनुसार महापुरुषों के चरणों में विनीत विनय की और महात्मा ने 'यदहखे विरजेत तदहखे प्रर्वजेत'-वेद वचन के अनुसार वैराग्य की दशा देखकर प्रार्थना स्वीकार की और दीक्षा देकर अपनी चरण-सेवा में लगा लिया। परम श्रद्धालु शिष्य ने गुरुदेव एवं लंगर की अपूर्व सेवा की। आपकी सेवा से गुरु प्रसन्न हुए और साथ-साथ पढ़ाना भी शुरु किया। पढ़ने में आपकी लोकोत्तर प्रतिभा देखकर प्रसन्नतापूर्वक बाहर जाकर गंभीर अध्ययन करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर आप दादां वाले संत

ज्वालादास जी के पास चले गए। उनकी मंडली में रहकर आपने वेदांत आदि दर्शन-शास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया और अच्छे विद्वान् होकर वापस अमृतसर में आ गए। अमृतसर में आपकी बहुत ख्याति हुई। फलस्वरूप बहुत से विद्या अभिलाषी आपके विद्यार्थी बन गए। इस प्रकार आपकी एक बड़ी मंडली बन गई।

इसके अनंतर आपने तीर्थाटन और विभिन्न स्थानों में भाषण आरंभ किया। घूमते-घूमते संवत् 1957 में मुलतान पहुँचे। वहाँ भक्तजनों ने आपका अभूतपूर्व स्वागत किया और श्रद्धा-भक्ति से सेवा की। प्रेमी भक्तों के आग्रह से आपने वहाँ 'देवपुरा' नाम से सुंदर आश्रम स्थापित किया जिसमें संत महात्माओं के रहने और भोजन आदि का समुचित प्रबंध किया गया।

इसके अनंतर आपने सीमा प्रांत के नगर पेशावर आदि का कई बार दौरा किया और कई बार कश्मीर की यात्रा और की अंत में संवत् 1967 में मायापुर, हरिद्वार में देवपुरा आश्रम की स्थापना की। इस स्थान में बड़े-बड़े महात्मा विराजते हैं और यहाँ हर प्रकार के अभ्यागत साधु-संत की उचित सेवा होती है। साधु किसी भी संप्रदाय का हो यहाँ सम्मान पूर्वक ठहराया जाता है।

आप एक विचारवान विद्वान् महात्मा थे। आपने (1) आत्मानुभवविवेक (2) स्वप्नविचार (3) मृत्युचिन्ह प्रदीपिका (4) जपुप्रदीप टीका (5) सिंह सिद्ध गोष्टि आदि कई ग्रंथ रत्नों की रचना की। इस प्रकार 77 वर्ष की आयु भोगकर बसंत पंचमी के दिन माघ संवत् 1982 को शहर मुलतान में फानी दुनिया को छोड़कर नित्य अविनाशी स्थान सचखंड में जा विराजे। बसंत पंचमी के दिन देवपुरा आश्रम हरिद्वार में आपकी वर्षी (बरसी) बड़ी धूम-धाम से मनाई जाती है।

आप एक महान परोपकारी, अति मधुरभाषी, सत्यवादी एवं वेदांत के पारंगत विद्वान् थे। आपके कथा व्याख्यान अति प्रभावशाली थे। संत समाज में आपका भरपूर आदर सम्मान था।

आप के बहुत से शिष्यों में से छः (6) अति प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं यथा

पं. गुरुचरण सिंह जी, पं. प्रेम सिंह जी, पं. भगवान सिंह जी, स्वामी चेतनदेव जी, जय सिंह जी आदि।

पंडित गुरुचरण सिंह जी का जन्म संवत् 1940 में जिला झंग, पाकिस्तान में हुआ। आप जवान हुए तो आपके ग्राम में प्लेग रोग फैल गया जिससे बहुत से ग्राम निवासी काल के विकराल गाल में समा गए। यह भयावह दृश्य देखकर आपको संसार से वैराग्य हो गया। आप मुलतान में महाराज देवा सिंह जी के चरणों में आ विराजे। कुछ दिन सेवा कर निर्मलमत में दीक्षित हुए। महाराज के स्वर्गारोहण के अनंतर आप देवपुरा आश्रम के महंत नियुक्त हुए। आप 'पुराणों' के बहुत बड़े विद्वान् थे। आप कृष्णलीला एवं वृंदावन की यात्रा के बड़े प्रेमी थे। आप बड़े तेजस्वी पुरुष थे। आपके सामने बोलने का साहस किसी को नहीं होता था। आपके एक शिष्य संत चमन सिंह जी भी थे जिनका देहांत हो चुका है।

आपके बैकुंठवास के बाद आपकी गद्दी को सुशोभित किया आपके गुरुभाई प्रियवादी पंडित प्रेम सिंह जी महाराज ने।

पंडित प्रेम सिंह जी का जन्म संवत् 1942 को ग्राम बाजवा स्टेट पटियाला में हुआ। आपने देवपुरा आश्रम की सेवा बहुत योग्यता से की। आपके समय में सब महात्मा खुश रहते थे। आपके सद्भावनापूर्ण बर्ताव और निष्काम सेवा से देवपुरा आश्रम का समाज में बहुत सम्मान बढ़ा। शीतल स्वभाव होने के कारण आपके बहुत शिष्य हुए, जिनमें प्रमुख वर्तमान महंत लाल सिंह जी हैं जो अति योग्यता से आश्रम के प्रबंध को चला रहे हैं और उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। आपके सहयोगी गुरुभाई संत दया सिंह ब्रह्मी जी पं. गुरुचरण सिंह के शिष्य हैं। बहुत काल से आश्रम में ही निवास करते हैं। संत नारायण सिंह जी 'बाबेआना' (ग्राम जोद्धे) में, अपने चाचा गुरु महंत दया सिंह जी, जो बाबा देवा सिंह जी के शिष्य हैं, के पास रहते हैं। पंडित गुरुचरण सिंह जी के एक संत किशन सिंह जी ठाकुर, नानक कुटी नागपुर में यश का जीवन बिता रहे हैं।

पंडित प्रेम सिंह जी के बाद उनके गुरुभाई संत मोहन सिंह जी आश्रम के महंत बने। वे कुछ समय तक सेवा करके परलोक सिधार गए। उनके बाद पं. प्रेम सिंह जी के चेले संत किशन सिंह जी आश्रम की गद्‌दी पर विराजे। वे भजन-पाठ बहुत करते थे। विचार सागर और दोनों रामायणों के अच्छे ज्ञाता थे। विरक्तों जैसा सादा लिबास रखते थे पर स्वभाव में दुर्वासा ऋषि जैसे थे। किसी साधु संत व गुरुभाई संत को यह विश्वास नहीं था कि महीना दो महीना यहाँ रह सकूँगा कि नहीं। उनकी अमलदारी में स्थान का बहुत नुकसान हुआ। ये 18 वर्ष तक डेरे की कीर्ति को धुंधला-सा रूप देकर परलोक प्रयाण कर गए।

महंत लाल सिंह जी का जन्म सन् 1918 को ग्राम धुतकलां जिला होशियारपुर में सरदार जीवन सिंह के घर हुआ। सन् 1933 में पंडित प्रेम सिंह जी की चरण-शरण में आए। दो वर्ष आश्रम की अथक सेवा के बाद पंडित जी ने शिष्य बनाया। चार साल तक लगातार गुरुदेव एवं आश्रम की सेवा की। 1930 में मुलतान वाले देवपुरा आश्रम में सात, आठ वर्ष सेवा की। पाकिस्तान बनने से कुछ दिन पहले पूर्वी पंजाब में आ गए। ग्रामों में अपनी स्वतंत्र कुटिया बनाकर दवा बूटी का काम करते रहे फिर बहुत काल डेरा बाबा मिशरा सिंह जी, महंत हाकम सिंह जी की छत्रछाया में रहे और मुखतार-ए-आम के रूप में सेवा करते रहे।

महंत किशन सिंह जी के निधन के बाद सन् 1970 में देवपुरा आश्रम के महंत नियुक्त हुए। आप बहुत सुचारु ढंग से आश्रम का प्रबंध चला रहे हैं। अपनी कुशल सेवा, उदार-स्वभाव और प्रेमपूर्ण बर्ताव से समाज में सम्मान सत्कार व यश प्राप्त कर रहे हैं। आश्रम की उन्नति कर रहे हैं।

आपका एक शिष्य संत दर्शन सिंह है जो अभ्यागत साधु संत की सत्कार-पूर्वक सेवा करके सबका स्नेह पात्र बना हुआ है। ❑

तरंग 5

बाबा आनंद सिंह जी मंडली वाले

महंत बाबा मिशरासिंह जी के तीसरे प्रसिद्ध शिष्य थे-संत बाबा आनंद सिंह मंडली वाले। आपका जन्म किसी ने ठक्करवाल ग्राम का लिखा है। महंत दयाल सिंह जी लाहौर वालों ने अबुपुरा का लिखा है, परंतु वास्तव में ग्राम का नाम अबुपुरा नहीं है, अबुवाल है जो मेरे जन्म ग्राम रतोवाल जिला लुधियाना से केवल एक कोस के अंतर पर है। आप 15 वर्ष की आयु में बाबा मिशरा सिंह जी के शिष्य हुए। पठन-पाठन में अधिक रुचि के कारण संस्कृत के अच्छे विद्वान् बन गए। विरक्त रह कर पश्चिमी पंजाब में मंडली बनाकर साधु संतों को विद्या दान करते रहे। जिला झंग और मघियाना आदि पश्चिमी जिलों में आपकी बहुत प्रतिष्ठा थी, फिर भी आप विरक्त रहे और अपने सेवकों से डेरा बाबा मिशरा सिंह की सेवा कराते रहे। बाद में महंत रत्न सिंह जी के साथ किसी कारण मतभेद हो जाने से अपना स्थान मघियाना में बना लिया था। आपके तीन शिष्य थे। संत मेहर सिंह जी व संत भोला सिंह जी जिनको लोग 'ईश्वर' नाम से याद करते थे। 'ईश्वर जी' महंत रत्न सिंह जी के पास अमृतसर में ही रहते थे। तीसरे ज्ञानी सरोवर सिंह जी जिनका जिक्र किया जा चुका है।

बाबा आनंद सिंह अपने बड़े चेले मेहर सिंह जी को स्थान की महंती दे गए थे। महंत मेहर सिंह जी के परलोकवास हो जाने पर उनके गुरु भाई संत भोला सिंह जी 'ईश्वर', गुरु-स्थान के महंत बनाए गए। 'ईश्वर जी' महाराज अपने

प्रमुख शिष्य संत हरिभजन सिंह जी को अपनी गद्‌दी की दस्तार बंदी कर गए थे।

संत हरिभजन सिंह जी ने पाकिस्तान से आकर 'ईश्वर जी' की याद में रोहतक (हरियाणा) में सुंदर स्थान बनाया। उसके बाद दिल्ली में भी आलीशान स्थान बनाया है। रोहतक में आप बड़े पैमाने पर सालाना जोड़ मेला किया करते हैं। बहुत से गुणी ज्ञानी महात्माओं एवं विद्वानों को बुलाया करते हैं। भक्तजनों व सिक्ख संगतों में आप बेहद मान सत्कार प्राप्त कर रहे हैं।

❑

तरंग 6

महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी

ठाकुर जी की परंपरा रूपी पुनीत नदी के महान् तरंग थे, महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज। इस भाग्यशाली महापुरुष का जन्म ग्राम हल्लोवाल ज़िला गुरुदास- पुर में, सरदार फतेह सिंह जी के घर में हुआ था।

खोज पड़ताल से पता चलता है कि आपके माता-पिता हर मास अमावस्या के पावन अवसर पर श्री तरन-तारन में दर्शन-स्नान करने जाया करते थे। माता जी एक श्रद्धालु देवी थीं। यह गुरुद्वारा साहिब का दर्शन आदि करके, प्रायः सत्संग के लिए ठाकुर दयाल सिंह जी के डेरे में जाया करती थीं। ठाकुर जी के चरणों में इनकी अटूट श्रद्धा थी। कथा वार्ता और महात्माओं के उपदेश सुनने का उन्हें बहुत शौक था।

माताओं को पुत्रों की लालसा तो बनी ही रहती है। एक बार कथा सुनकर मन में बहुत आनंद हुआ, सो माता जी ने संकल्प किया कि आज भक्त-भावन भगवान से पुत्र की दात के लिए अवश्य विनय करूँगी। तदनुसार श्रद्धापरिपूर्ण हृदय से विनती की कि हे अंतर्यामी ! हे करुणानिधान ! गुरु नानक देव जी यदि हमारे घर में आपकी कृपा हो तो पहली संतान श्री ठाकुर दयाल सिंह जी के चरणों में सौंप दूँगी। हे गुरु नानक देव ! मेरे घर में भी ऐसा पुत्र रत्न दो जिसके मुख से ठाकुर जी के समान अमृत वर्षा हुआ करे तो मैं अपना जन्म सफल समझूं। सो-

जो मागहि ठाकुर अपुने ते सोई सोई देवै।। (पन्ना **681**)

के अनुसार वह संकल्प पूरा होने का शुभ अवसर भी समीप आ गया। वे यही उम्मीद लेकर अमृतसर आए। दर्शन, स्नान, सेवा, स्मरण आदि करके रात्रि में ब्रह्मज्ञानी बाबा बुड्ढा जी की बेरी के नीचे सो गए। स्वप्न में बाबा बुड्ढा जी का दर्शन माता को हुआ और वर प्रदान हुआ कि जैसा तुमने संकल्प किया है वैसा ही तुम्हारे घर में पुत्र होगा। उन पवित्र वचनों के फलस्वरुप संवत् 1904 ई. में उनके घर वैसा ही पुत्र रत्न प्राप्त हुआ जैसा चाहा था। अपने संकल्प के अनुसार माता ने वह पुत्र रत्न ठाकुर जी के चरणों में अर्पण कर दिया। ठाकुर जी की आज्ञा से, बाबा बुड्ढा जी के वर से प्राप्त होने के कारण बच्चे का शुभनाम बुड्ढा सिंह रखा गया। बुड्ढा सिंह जी के पिता सरदार फतेह सिंह जी छः वर्ष के पुत्र को ठाकुर जी के चरणों में अर्पण कर घर लौट आए। उधर ठाकुर जी ने बच्चे को अपने गुरुभाई बाबा धर्म सिंह जी समाधि वालों की सुपुर्दगी में दे दिया और कहा कि आप इसे अपनी चरण सेवा में रखिए, पढ़ाइए और आप ही इसे निर्मल मत में दीक्षित कीजिए। ठाकुर जी की आज्ञा से बाबा धर्म सिंह जी ने इन्हें पढ़ाया और दीक्षा देकर शिष्य बनाया।

आगे चलकर श्री बाबा धर्मसिंह जी के यही शिष्य श्रीमान् महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी के नाम से विख्यात हुए।

यह पवित्र आत्मा महान नीतिवान, व्यवहारकुशल, मधुरभाषी, कुशल प्रबंधक, शास्त्र के मर्मज्ञ और हजारों के श्रद्धाभाजन भाग्यवान प्रसिद्ध महापुरुष थे। गुरुघर की विद्या में पारंगत होकर आपने काशी जाकर संस्कृत का पर्याप्त अध्ययन किया। उच्च कोटि के वक्ता होने के साथ-साथ अत्यंत कार्य-कुशल व्यक्ति थे। इन्हीं गुणों के कारण आप निर्मल अखाड़ा के सचिव बनाए गए और फिर कालांतर में रम्मत अखाड़ा के मुखिया महंत नियत हुए। देश-देशांतर में घूमकर अखाड़े की प्रतिष्ठा बढ़ाकर ख्याति प्राप्त की।

सिंध प्रांत तो आपके नाम का दीवाना था। सहस्त्रों प्राणी आप से नाम

अमृत पीकर आत्म कल्याण के स्वर्ण-पथ पर चलकर मानव जीवन सफल कर गए। हजारों ने मिथ्या-भाषण, व्यापार में ठगी, शराब आदि के दुर्गुणों को छोड़कर सत्य धर्म का व्रत लिया।

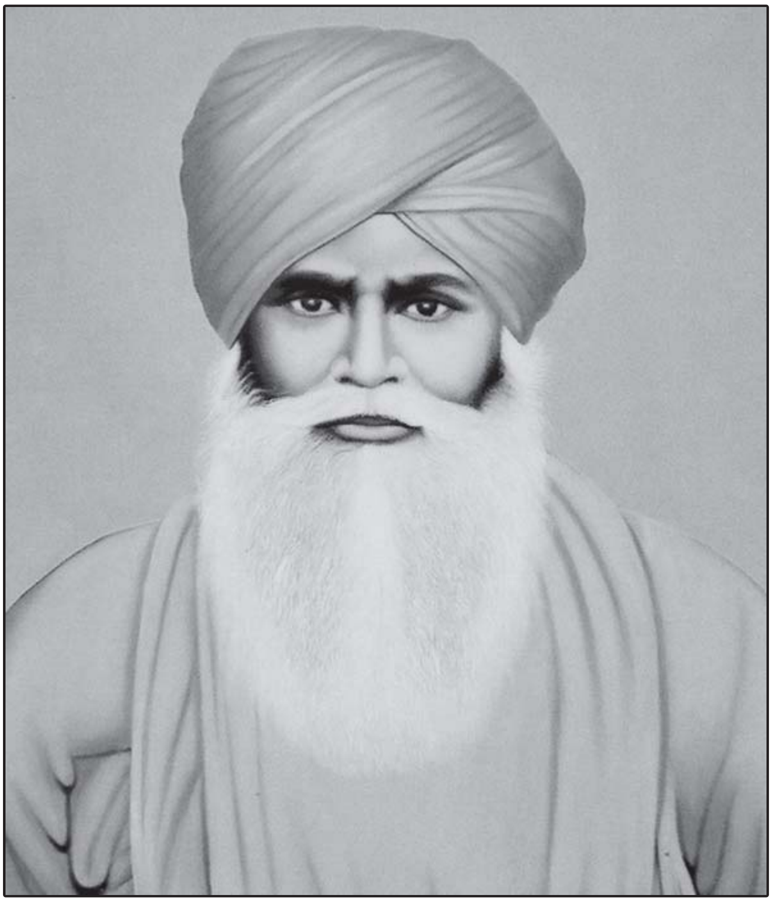

श्रीमान महंत बुड्ढा सिंह जी महाराज संस्थापक निर्मल आश्रम ऋषिकेश

आपने गुरुवाणी के कीर्तन का भी बहुत प्रचार किया। मौत के मुँह में पड़े हुए अनेक रोगी आपके आशीर्वाद से पूर्ण स्वस्थ हो गए। कुछ एक श्रद्धालुओं के घर आपके आशीर्वाद से पुत्र भी पैदा हुए। सहस्त्रों ने आप से नाम उपदेश लिया। सैकड़ों अमृत-पान करके केशधारी सिक्ख सरदार भी बने। आप भक्तों

में अति श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे। आपके द्वारा सत्यधर्म का भरपूर प्रचार हुआ। आप एक दूरदर्शी, उदार-चेता महापुरुष थे। आप हर संत महात्मा का हृदय से स्वागत करते थे। हर किसी के साथ आपका प्यार व सद्वर्ताव था। आपका मधुर वार्तालाप हर किसी के हृदय को शांति प्रदान करता था। हर समय आप शांत चित्त रहते। कुछ न कुछ कथा वार्ता सुनाते ही रहते थे। आपका जीवन एक सफल जीवन था।

सबसे पहले आपने ऋषिकेश में निर्मल आश्रम नाम से एक स्थान स्थापित किया, दूसरा निर्मल बाग कनखल व तीसरा संगत ज्ञान गुफा काशी। आपके सभी स्थानों में भजन, स्मरण, पाठ-पूजा आदि धार्मिक मर्यादा बराबर चल रही है। सभी स्थान उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। सभी सुंदर सुचारू और दर्शनीय हैं।

आपके लगभग 19-20 शिष्य थे जिनमें से निम्न महानुभावों के नाम उल्लेखनीय हैं-

(1) परम संत अवधूत जयमल सिंह जी, महान् तपस्वी और भजनानंदी विद्वान् थे परंतु दुर्भाग्य से महाराज के सामने ही आप परलोकवासी हो गए।

(2) महंत आत्मा सिंह जी जिन्हें आपने अपना उत्तराधिकारी महंत नियत किया।

(3) संत मान सिंह जी जो आपके सहकारी उपमहंत बनाए गए।

(4) संत निक्का सिंह जी महान् विद्वान्, कथाकार, वक्ता, महात्यागी, विरक्त और वीतराग महापुरुष थे। सहस्त्रों श्रद्धालुओं को नाम दान देकर सन्मार्ग पर लगाया। निर्मल आश्रम के यश को बढ़ाने में आपका बहुत बड़ा हाथ है। षड्दर्शन साधु समाज में सर्वाधिक आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। आपके भक्तों ने आपके नाम पर कई जगह कुटिया व आश्रम बना दिए हैं जो सुचारू रूप से चल रहे हैं।

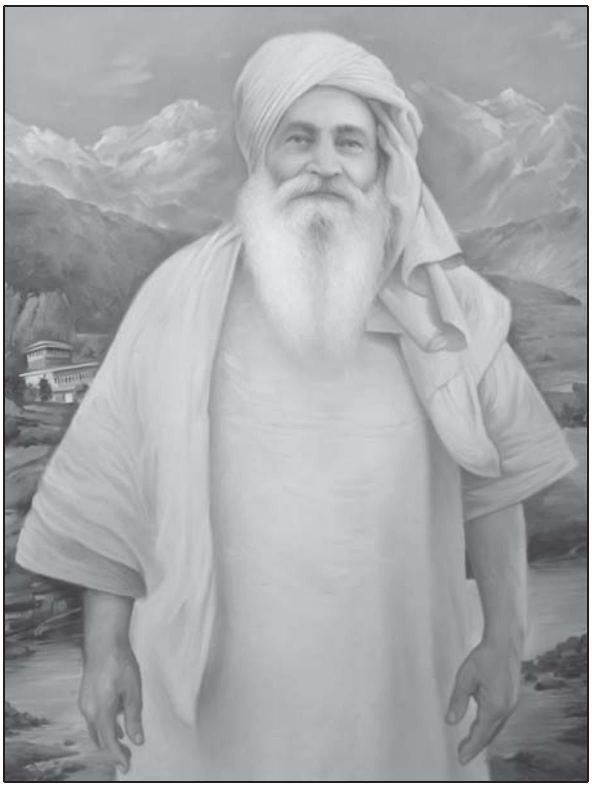

श्रीमान **108** विरक्त शिरोमणी ब्रह्मनिष्ठ, पूज्यपाद,
विरक्त संत निक्का सिंह जी महाराज

(5) ज्ञानी संत देवा सिंह जी के बहुत से सिंधी भक्त थे जो आपकी सेवा का बहुत ध्यान रखते थे। आपने 'दरबार साहिब' अमृतसर में सोना लगवाने की सेवा की।

(6) षड्शास्त्री विद्वान् अर्जुन सिंह जी तथा भिक्षु जी। ज्ञानी बलवंत सिंह जी, संत खीवन सिंह जी, संत सेवा सिंह जी, संत करतार सिंह जी आदि पाँचों ही परलोकवासी हो गए हैं।

बाबा बुड्ढा सिंह जी ने सन् 1932 में संत आत्मा सिंह जी के नाम वसीयत कर दी थी। परमेश्वर की आज्ञा अनुसार 15 अशौज संवत् 1994 में सायं 8 बजकर 15 मिनट पर निर्मल बाग कनखल में ब्रह्मलीन हो गए। ❑

तरंग 7

संत आत्मा सिंह

मालवे (दक्षिण पंजाब) के मरुस्थल की विषम भूमि में साँप की तरह बल खाती हुई टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी पर गंभीर चाल से चला जा रहा है एक कोई किशोर बालक, जिसकी आयु तेरह से सोलह के बीच है। बाल्यावस्था में ही शरीर का गठन सुदृढ़ है। रंग गेहुँआं, आँखें कुछ छोटी और मस्तक ऊँचा है। चेहरे से टपकता हुआ भोलापन बता रहा है कि यह सुंदर किशोर किसी पवित्र परिवार का सदस्य है। सादा वेश, धोती-कुर्ता, पगड़ी एक हाथ में बांस की पतली-सी छड़ी और दूसरे में मुरादाबादी लोटा। यह किसी की ओर नहीं देखता पर पथिक इसे विस्मय की नजरों से देख रहे हैं कि आखिर कौन है यह अनूठा बालक? और कहाँ जा रहा है यह द्रुतगति से? कोई कहता है कि घर से नाराज होकर निकला होगा। किसी के विचार में यह दूरस्थ रिश्तेदारी में जा रहा है। किसी का अनुमान था कि साधु बन जाने की इच्छा से निकला है घर से, पर इसके सूक्ष्मतम अंतस्तल में क्या छिपा है इसका पता किसी को नहीं।

बैसाखी का त्योहार समीप आ रहा है, बसंत ऋतु का यह आखिरी मेला अनेक स्थानों में लगता है। श्री दमदमा साहिब का यह राष्ट्रीय मेला देखने के लिए इस रास्ते से सहस्त्रों यात्री जाया करते हैं और इस वर्ष भी जा रहे हैं, जिनमें अति अद्भुत गंभीर स्वभाव का यह किशोर भी जा रहा है, जो न किसी से बात करता है न किसी की ओर देखता ही है, पर वह फिर भी सबकी नजरों का केंद्र बन रहा है।

चूँकि उस समय किसी सवारी का प्रबंध नहीं था, अतः दूर-दूर के दर्शनार्थी कुछ दिन पहले ही यात्रा आरंभ कर देते थे। कोई अपनी रिश्तेदारी में पड़ाव करता हुआ चलता तो कोई रास्ते के गुरुद्वारों में ठहर कर जाता। सभी साधु, महात्मा और संतों के आश्रमों में पड़ाव करते हुए जाते थे, परंतु इस सुकुमार किशोर की न मार्ग-समीपस्थ ग्राम में रिश्तेदारी, न किसी से जान पहचान, पर एक भगवान की टेक रख कर जा रहा है किसी पवित्र उद्देश्य को हृदय में लेकर। किसी ने ठीक ही कहा है -

गुमराही खुद है मंजिले मकसूद की रहनुमा।
खिजर मिल जाते हैं जिन्हें रास्ता मिलता नहीं ।

इस कथन अनुसार, निकटस्थ संत आश्रम के एक साधु जो सायं भ्रमणार्थ निकले थे सामने आ गए। उन्होंने बबूल वृक्ष के नीचे निश्चिंत खड़े बालक को देखा और दया के वशीभूत होकर बोले बेटा! कहाँ जाना चाहता है? उत्तर में बालक ने विनीत स्वर में कहा-दमदमा साहिब के दर्शन के लिए जा रहा हूँ, महाराज। पर बालक वह तो बहुत दूर है। यहाँ से अभी दो दिन का रास्ता है। चल मेरे साथ,एक मील पर महात्माओं का आश्रम है, वहाँ रात काट कर सवेरे अपने गंतव्य स्थान को चले जाना।

विनीत स्वभाव के बालक ने महात्मा के आदेश को स्वीकार करते हुए कहा-महाराज ! जो आज्ञा।

ठंडी बूँदाबाँदी में भीगते हुए दोनों बालू का एक ऊँचा टीला पार कर ग्राम भुच्चो महात्मा की कुटिया में पहुँचे इस के पास ही एक गहरा तालाब खोद कर उस मिट्टी से यह बहुत ऊँचा स्थान बनाया गया है जिसमें बबूल, बेरी सभी वृक्ष और जड़ करीर के पेड़ लगे हुए हैं जिन पर बैठे मोर आगत भक्तों का मधुरतम स्वर से स्वागत करते हैं। इतना ही नहीं प्रत्युत आरती के समय रणसिंघा घड़ियाल और शंखादि की ध्वनि के साथ स्वर मिलाकर आरती-पूजन में संतों

को पूरा सहयोग देते हैं। इस ऊँचे स्थान के मध्य भाग में सिद्ध योगी महात्मा हरनाम सिंह जी महाराज की कुटिया बनी हुई है। संत महात्मा और भक्तों के लिए अलग-अलग कमरे व झोपड़ियां बनी हुई हैं।

यहाँ के संत बाबा हरनाम सिंह जी रुमीवाले वाक् सिद्धि के स्वामी हैं। उनके मुखारविंद से निकला प्रत्येक वचन पूरा होता है, ऐसा प्रांत के लोगों का पूर्ण विश्वास है।

आरती पूजनोपरांत आश्रम के सभी संतों ने आकर निजानंद में मग्न, सिद्ध योगी संत हरनाम सिंह जी के चरण छुए और इस आगंतुक बालक ने भी। योगी महापुरुष ने दाहिना हाथ उठाकर सबको मूक आशीर्वाद दिया। इसके बाद सब संतों ने मिलकर भोजन पाया।

भोजनोपरांत बालक सोचने लगा कि ऐसे सिद्धपुरुष के दिव्य दर्शन हो जाने पर भी क्या अपने उद्देश्य में सफलता मिलने में संदेह किया जा सकता है? नहीं ! अपने उद्देश्य में सफलता अवश्य मिलेगी। इस विश्वास को अंतर हृदय में लेकर बालक सो गया। प्रातः चार बजे घंटी बजी तो सब संतों ने उठ कर स्नानादि किया और भजन चिंतन में बैठ गए। प्रातः दो साधु जाकर ग्राम से नमकीन मिस्सी रोटियां और लस्सी (मट्ठो) ले आए। किसी ने एक किसी ने दो रोटियां खाईं। खाने पीने के बाद सब पथिक अपने-अपने गंतव्य स्थानों को रवाना हुए। बालक यात्री ने चलने से पहले महात्मा के दर्शन करना उचित समझा। वहाँ जा कर उसने देखा कि बहुत से प्रार्थी अपने-अपने मनोरथों की सिद्धि के लिए वर मांग रहे हैं। परंतु वे मस्त महात्मा किसी का मनोरथ पूरा होने का वचन दे देते हैं और किसी को डाँट-फटकार देते हैं। डर के मारे दुबारा बोलने का साहस कोई नहीं करता क्योंकि ऐसा करने से उलटा शाप हो जाने का भय था। अतः सभी लोग चुपचाप वचन सुनकर चले जाते थे पर यह बालक तो निष्काम था। इसे कोई चाहत नहीं थी, केवल दर्शन की इच्छा से ही आया था

यहाँ, सो चरण स्पर्श कर चुपचाप बैठ गया बिना कोई सवाल किए। महापुरुष बोले-कहाँ जाओगे बेटा? महाराज मैं दमदमा साहिब दर्शन-स्नान के लिए जा रहा हूँ, बालक ने अति विनीत स्वर में कहा और पास बैठ गया। महात्मा के मन में न जाने क्या आया, वे अति प्रसन्न मुद्रा में थे, अतः उन के मुखारविंद से वातावरण को आनंदमयी बनाती हुई गुरुवाणी की एक पंक्ति निकली-

इछा पूरकु सरब सुखदाता हरि जा कै वसि है कामधेना।। (पन्ना **669**)

बोले-बेटा जाओ तुम्हारे सब मनोरथ पूरे होंगे, अपने उद्देश्य में तुम्हें सफलता मिलेगी। आदेश होते ही सब प्रार्थी बाहर आ गए। यह बालक प्रभु का धन्यवाद सहित चिंतन करता हुआ रास्ते में मिले संत जी के पास गया और उसने आगे चलने की आज्ञा माँगी, पर उनको तो सरल स्वभाव के कारण इस बालक पर अति स्नेह था, अतः करुणा भरे स्वर में बोले-नहीं बेटा, ऐसे नहीं रास्ता भयंकर है। तुम्हें भूख लगेगी और तुम्हें किसी से माँगना नहीं। अतः साथ में दो चार रोटियाँ लेते जाओ, जहाँ भूख लगे खा लेना। पर बालक के मन में तो धर्म-रक्षक गुरु गोविंद सिंह जी के पावन चरण स्पर्श से पवित्र हुई भूमि के दर्शन की लालसा थी और चित्त में था प्रभु प्यारे का चिंतन, अतः टाल मटोल करनी चाही पर दयालु महात्मा ने चार रोटियाँ और डेलों (करीर के फलों) का अचार बाँध दिया। इस प्रकार प्रभु के विधान के अनुसार बिना यत्न बालक का योग क्षेम होता गया।

भगवान ने कहा है-

अनन्याश्चिन्तयन्तोः मां यं जनाःपर्युपास्ते।।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (भगवद्गीता)

बड़ी भुच्चो नामक गाँव, भटिंडा से आठ मील की दूरी पर स्थित है, जहाँ से यह प्रभु-प्रेमी, महात्माओं की प्रसन्नता और आशीर्वाद लेकर आगे के लिए रवाना हुआ है।

उत्साहपूर्ण हृदय से सुकुमार किशोर ने आगे के लिए प्रस्थान किया। तीस मील का रास्ता तय करके एक गुरुद्वारे में सूर्यास्त के बाद पहुँचा। वहाँ एक विद्वान् महात्मा ठहरे हुए थे। वे प्रतिदिन गुरुवाणी की कथा किया करते थे। उनकी कथा सुनकर श्रोतागण आनंद विभोर हो जाते। इस बालक को भी उनकी कथा सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस दिन गुरु तेग बहादुर जी के निम्नांकित शब्द की कथा आरंभ हुई–

सोरठ महला ६
१ ओंकार सतिगुर प्रसादि।।
रे मन राम सिउ करि प्रीति।।
स्रवन गोबिंद गुनु सुनउ अरु गाउ रसना गीति।। १।। रहाउ।।
करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत।।
कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीत।। १।।
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति।।
कहै नानकु रामु भजि लै जातु अउसरु बीत।। २।। १।। (पन्ना **631**)

उक्त शब्द की व्याख्या विद्वान् महात्मा ने बहुत ही वैराग्यपूर्ण रीति से की। इस बालक सहित कितने ही श्रोतागण वैराग्य से रोने लगे। सोचा कि दुनिया के पदार्थों के मोह में फँसकर मनुष्य मानव-जीवन को व्यर्थ गँवा रहा है। धन-धान्य आदि जो कि स्वर्ग के साधन थे, उनका अनुचित प्रयोग कर उन्हें नरक का साधन बना रहा है, भाई बंधु आत्मीय जनों के जाल में फँसकर नाना विधि के नीच कर्म करता है और परिणाम स्वरूप बारंबार नरकाग्नि में जलता-मरता रहता है। जिन पुत्र पौत्रादि के वास्ते कुकर्म करके धनादि का संग्रह करता है, वृद्धावस्था के गड्ढे में गिर जाने पर वे ही इसके शत्रु बनकर इसे कुत्ते की तरह डाँटते-फटकारते रहते हैं कितने आश्चर्य की बात है कि जानता-बूझता हुआ भी मनुष्य कुएँ में गिरता है। संत कबीर ने बड़ा अच्छा कहा है–

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै।।
काहे की कुसलात हाथि दीपु कूए परै।। (पन्ना **1376**)

जिस दौलत को यह मेरी-मेरी कहकर खुदी की मिट्टी में जलता रहता है, उसका फैसला मौत का फरिश्ता एक ही झटके में कर डालता है। कबीर जी करारी चोट करते हुए कहते हैं-

सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु कहै धनु मेरा।।
जम को डंडु मूंड महि लागै खिन महि करै निबेरा।। (पन्ना **479-480**)

इस विषय पर महात्मा ने बड़ी ही मनोमुग्धकारी आख्यायिकाएं सुनाईं, जिन्हें सुनकर अन्य श्रोता और इस बालक का पवित्र हृदय वैराग्य की भावना से लबालब भर गया ।जो पहले किसी के बहकाने से कभी मन डोल जाता था कि घर को छोड़ कर इधर-उधर भटकना बुद्धिमत्ता की बात नहीं। प्रत्यक्ष दिख रहे सुंदर संसार को छोड़कर, कभी न दिखने वाले केवल कपोल कल्पित सुखों की प्राप्ति हेतु दुःख उठाते हुए जंगलों में भटकना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं है, इत्यादि दुर्भावनाएं हमेशा के लिए हृदय से निकल गईं। इस प्रकार वैराग्य और प्रेम परिपूर्ण हृदय लेकर शुकदेव जैसा जिज्ञासु यह कुमार, यहाँ से आगे चल पड़ा। जहाँ इसका गंतव्य तीर्थ श्री दमदमा साहिब है। पच्चीस मील का रास्ता तय करके यह मेले से तीन दिन पहले यानी 11 अप्रैल 29 चैत्र संवत् 1954 को पावन धाम श्री दमदमा साहिब पहुँच गया। यहाँ कट्टेवाले महात्मा के डेरे में इसे रहने के लिए अच्छी जगह मिल गई। ❑

तरंग 8

श्री दमदमा साहिब

पूर्वोक्त स्थान का नाम दमदमा क्यों पड़ा? तीर्थ के रूपमें इसकी मान्यता क्यों होने लगी? इसको इतना महत्व मिलने का कारण क्या है? प्रकरणवश इन सब बातों का उत्तर देना आवश्यक है। अतः हम पाठकों को पौने तीन सौ वर्ष पहले बीत चुकी घटनाओं का दिग्दर्शन करा देना ठीक समझते हैं।

सन् 1700 ईसवी की बात है, आनंदपुर के मैदान में नीले घोड़े पर सवार गुरु गोविंदसिंह जी सन्नद्ध शाही सेना के सामने खड़े हैं। शाही सेना का सेनापति पायंदे खान, जिसका सारा बदन फौलादी वर्दी से ढका हुआ है, केवल कान-आँख नंगे हैं सामने ललकार रहा है, उन्मत्त हाथी के समान चिंघाड़ रहा है। नरशार्दूल गुरु गोविंद के सामने, वह मतवाला हाथी नरकेसरी के एक ही झपट्टे से, यानी पहले ही बाण से जो कान में लगा था धराशायी हो गया। सारी फौज सिर पर पैर रखकर भाग खड़ी हुई। तीन लड़ाइओं में शाही सेना और पर्वतीय नरेशों की संयुक्त सेनाएं इसी प्रकार मैदान छोड़कर भागती रहीं। चौथी जंग जो 1704 में हुई राजाओं और शाही जरनैलों की कसमों पर विश्वास कर, गुरुजी ने आनंदपुर का किला छोड़ दिया। विश्वासघात कर इन लोगों ने पीछे से हमला कर दिया। इस युद्ध में गुरुजी का बहुत नुकसान हुआ। केवल चालीस वीर सिक्खों के साथ गुरुजी ने चमकौर की कच्ची गढ़ी में आश्रय लिया। इसे शत्रुओं की दस लाख सेना ने घेरा डाल दिया। इस युद्ध में गुरुजी के बड़े साहिबज़ादे बाबा अजीत सिंह, बाबा जुझार सिंह वीरगति को प्राप्त हुए। 37

वीर सिक्ख शहीद हो गए पर गुरु गोविंद सिंह जी शेष बचे सिक्खों के आग्रह से, रात्रि के समय, यह सिंह नाद करते हुए कि पीरे हिंद में रवद, रात्रि के अंधेरे में गायब हो गए। यह लड़ाई 22 दिसंबर सन् 1704 में हुई।

मुक्तसर की ओर

यहाँ से गुरुजी माछीवाड़ा, आलमगीर, लम्मेजट्टपूरा आदि ग्रामों से होते हुए दीने कांगड़ में घालीवाल सरदारों-शमीर और लखमीर के पास कुछ काल रुके। यहीं से गुरुदेव ने औरंगज़ेब के नाम फारसी में चिट्ठी लिखी जो कि 'ज़फरनामा' के नाम से मशहूर है। यहाँ लगभग दो माह रहे। इसे खिदराणे की ढाव, पुखरा जोहड़ भी कहते हैं। यहाँ पर शाही सेनाओं ने वजीद खां की कमान में पानी की जगह पर कब्जा करने के लिए हमला किया था। यहाँ से कुछ दूरी पर चालीस वीर सिक्खों ने उन्हें रोका और जी तोड़ मुकाबला किया। पर आखिर चालीस जवान चालीस हजार का मुकाबला कहाँ तक करते। अनेक दुश्मनों को मौत के घाट उतार कर सम्मुख जूझते हुए शहीद हो गए। इधर गुरुजी ने ऊँचे स्थान पर बैठ कर बाण वर्षा आरंभ कर दी। गुरु जी और उनके वीर सैनिकों के तीरों की बौछार के सामने टिक सकना असंभव देख कर शाही फौजें भाग खड़ी हुईं और मैदान गुरु जी के हाथ रहा।

दरअसल वे पानी के इस सामरिक महत्व वाले स्थान को हथिया कर व इसे केंद्र बना कर गुरु जी का पीछा कर उन्हें पकड़ना चाहते थे। परंतु उन्होंने करारी हार खाई। फिर मुड़कर पीछे देखने की भी हिम्मत न हुई और हमेशा के लिए पीछा छोड़ गए।

जो चालीस सिक्ख योद्धा सम्मुख लड़ते हुए शहीद हुए थे, उन्हें गुरु जी ने मुक्त पुरुषों की पदवी प्रदान की और उस जगह का नाम मुक्तसर रखा जो आगे चलकर सिक्ख समाज का बड़ा तीर्थ बन गया। यहाँ हर वर्ष मकर-संक्रांति के दिन मेला लगता है। यहाँ बने सरोवर में माघ संक्रांति के दिन स्नान होता है।

शायद इसी स्थान को नज़रों के सामने रख कर किसी शायर ने बहुत खूब कहा है–

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा।

यहाँ से फिरोजपुर आदि नगरों से होते हुए गुरुदेव साबो की तलवंडी ग्राम में पहुँचे। गुरुजी के बैठने के लिए ऊँचा चबूतरा बनाया गया। बस तब से इसका नाम दमदमा पड़ गया। यहाँ गुरुजी की याद में हर वर्ष बैसाखी (मेष संक्रांति) पर भारी मेला होता है। यह जिला भटिंडा का भारी मरुस्थल था।

यहाँ गुरु गोविंद सिंह जी एक वर्ष तक रहे। यहीं पर गुरुदेव ने आदि श्री गुरु-ग्रंथ साहिब का दूसरा संस्करण तैयार किया। आप उच्चारण करते गए और भाई मणि सिंह जी लिखते गए। इसके अनंतर यहीं पर सब सिक्खों को अर्थों सहित पढ़ाया। यहीं से श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अर्थों सहित पठन-पाठन की परंपरा चली। यहीं पर गुरु जी ने, गुरु-ग्रंथ साहिब को अर्थों सहित पढ़ाने वालों को ज्ञानी की पदवी प्रदान की। लिखने से जो स्याही (रोशनाई) बची, वह एक छोटे से पोखर में डाल दी, उसका नाम लिखनसर हुआ। इस प्रदान की हुई विशेषताओं के कारण गुरुजी ने इस स्थान का नाम गुरु की काशी रखा।

बस गुरु गोविंद के पावन चरण स्पर्श से यह जल विहीन मरुस्थल महातीर्थ स्थान बन गया। अब यहाँ बड़े-बड़े अनेक गुरुद्वारे, सरोवर, बाग-बगीचे लहलहा रहे हैं। एक कॉलेज भी है।

यहीं से गुरुजी ने आगरा राजस्थान होते हुए नांदेड़ (हज़ूर साहिब) के लिए प्रस्थान किया था। ❑

तरंग 9

एक निर्वाण आश्रम की ओर

इसी पूर्वोक्त तीर्थ स्थान पर चरित्र-नायक वह किशोर बालक दर्शन स्नान के लिए आया है। इतना ही नहीं प्रत्युत वह आध्यात्मिक जीवन का मार्ग ढूँढने आया है। इसी से वह साधु महात्माओं के स्थानों में जाकर कथा कीर्तनादि श्रवण करता रहता है।

यहाँ स्नान और सत्संग के लिए बहुत से साधु संत भी पधारा करते हैं। ऐसे ही एक निर्वाण साधु के साथ इसका परिचय हो गया। वह इसे छः सात कोस की दूरी पर स्थित, अपने स्थान पर ले गया। उसके गुरु भी एक अच्छे महात्मा थे जो धूनी पर बैठे समाधि में तल्लीन रहते थे। उन्हें गुरु बनाने की इच्छा इस बालक के दिल में भी पैदा हुई परंतु उस रात्रि को एक दैवी घटना घटित हुई जिसने हक के मुत्लाशी इस बालक के विचार को बदल डाला। यह स्थान भागी बांदर ग्राम है जो जिला भटिंडा में है।

आधी रात बीत चुकी थी। लगभग एक दो बजे का समय होगा, इस बालक ने स्वप्न देखा कि जिस पेड़ के नीचे वह सो रहा है उसकी जड़ के बिल में से निकल कर सफेद रंग का एक लंबा साँप इसकी खाट के पास आया और अपना भयंकर फन फैलाकर फुंफकारने लगा। इससे डर कर बालक की आँख खुली। तब जागृत अवस्था में भी उसने सामने फुंफकारते हुए सर्प को देखा, पर वह तुरंत सरक कर बिल में चला गया।

इस भयंकर स्वप्न के बाद बालक को नींद नहीं आई। प्रातः कालीन

स्नानादि कृत्य के अनंतर एक साधु के पास इसने रात की घटना का जिक्र किया। वह साधु वैरागी था जो अयोध्या की ओर से पंजाब के तीर्थ-स्थानों की यात्रा के लिए आया था। वह अच्छा पढ़ा-लिखा भी था, विशेष कर ज्योतिष का अच्छा जानकार था। हस्त-रेखा देखी और चेहरे को भी गौर से देखा और बोला बेटा! तेरा भाग्य उदय होने वाला है। यह सर्प कोई इच्छा धारी योगी लगता है जिसने प्रसन्न होकर तुझे ही नहीं बल्कि तुम्हारी तकदीर को भी जगाया है। अगर यह साधारण साँप भी है तो भी सफेद साँप का दर्शन शुभ है। इसका दर्शन तेरे लौकिक और आध्यात्मिक अभ्युदय का सूचक है। अब तू यहाँ से उत्तर दिशा को वापस लौट जा। तेरे लिए उत्तर दिशा अधिक फलदाई है। बहुत संभव है उत्तर दिशा में पंजाब के अंदर ही तुझे पूर्ण गुरु का भी मिलाप हो जाए। बेटा तेरे भाग्य में राजयोग है- यह तेरी रेखाओं से विदित होता है पर तेरा पूर्ण भाग्य उदय उत्तराखंड में ही होगा। तेरी हस्त रेखा से मुझे ऐसा ही आभास मिलता है।

नोट- यह पूर्वोक्त संत स्थान ग्राम भागी बांदर में है जो दमदमा साहिब से सात आठ मील की दूरी पर स्थित है।

❑

तरंग 10

पुनः उत्तर की ओर

साधु के वचनों पर विश्वास कर सरल स्वभाव का वह बालक उत्तर दिशा की ओर रुख करके चल पड़ा। कई एक मंजिलों को तय कर के वह मोगा जिला फिरोजपुर के नज़दीक सिंघावाला ग्राम में आ टिका।

इस ग्राम के गुरुद्वारा में छोटा सा संगीत विद्यालय था। यहाँ पर अधिकतर नेत्रविहीन विद्यार्थी संगीत संकीर्तन आदि सीखते थे और यहाँ थोड़ी बहुत पंजाबी भी पढ़ाई जाती थी। यहाँ यह बालक भी अन्य विद्यार्थियों की सेवा करता हुआ कीर्तनोपयोगी तबला, हारमोनियम आदि सीखने लगा पर क्योंकि नेत्रहीन विद्यार्थी बहुत चंचल, वहमी, क्रोधी और साथ ही शरारती भी बहुत होते हैं, वे इस सरल बालक से काम बहुत लेते और सिखाते बहुत कम थे। आखिर इसने समझ लिया कि यहाँ से कुछ हासिल होने वाला नहीं है। आखिर एक साधु वहाँ भी इसकी सहायता के लिए आ निकला। उसने देखा कि ये अंधे इसको बहुत परेशान करते हैं और सिखाते कुछ भी नहीं। यहाँ तो इसका अमूल्य समय यों ही निकल जाएगा । यहाँ इन अंधों के तबले वगैरह उठाने में ही गुणोपार्जन करने की अवस्था को खो देगा। उसने सलाह दी कि मोगा के पश्चिम की ओर भाई की डरौली, ग्राम में निर्मल अखाड़े की जमात आई हुई है, उसमें कीर्तन करने वाले अच्छे रागी भी हैं और कथा करने वाले विद्वान् महात्मा भी। चलो वहीं कुछ दिन सत्संग का लाभ प्राप्त करेंगे।

❑

तरंग 11

झालागे उठि नामु जपि

विचार विनिमय करते-करते यह इरादा यकीन में बदल गया कि कल अवश्य चलना है। भोजनोपरांत यही विचार करते-करते सो गया। रात्रि के चार बजे इस सोए हुए बालक को कमरे में गूँजती हुई आवाज सुनाई दी

झालाघे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि।।
काहरा तुझै न बिआपई नानक मिटै उपाधि।। (पन्ना **255**)

सोया बालक चौंक कर उठ बैठा और सोचने लगा-कि शायद गुरु नानक ने मेरे लिए आदेश दिया है कि मैं यों ही सो-सो कर रातें न बिताऊं। भजन चिंतन करके मानव-जीवन को सफल बनाने का यत्न करुं। तदुपरांत उसने उठ कर शौच स्नानादि कर जितनी वाणी कंठस्थ थी उसका पाठ किया। इसके बाद आसा की वार का कीर्तन सुनने हेतु गुरुद्वारा साहिब चला गया। आसा की वार की समाप्ति पर रागियों ने गुरु अर्जुन देव का निम्नलिखित शब्द, प्रभुप्रेम में मग्न होकर गाया। यथा-

जैतसरी महला ५।।
हरि जन सिमरहु हिरदै राम।।
हरि जन कउ अपदा निकटि न आवै पूरन दास के काम।। १।। रहाउ।।
कोटि बिघन बिनसहि हरि सेवा निहचलु गोविद धाम।।
भगवंत भगत कउ भउ किछु नाही आदरु देवत जाम।। १।।
तजि गोपाल आन जो करणी सोई सोई बिनसत खाम।।
चरन कमल हिरदै गहु नानक सुख समूह बिसराम।। २।। (पन्ना **702**)

इस मनोहर गीत को सुन कर बालक के स्वच्छ हृदय में प्रभु-भक्ति के भाव और भी परिपक्व हो गए।

प्रातः चाय-पानादि के अनंतर बालक ने रात्रि की घटना, अपने समान विचार वाले साधु को सुनाई तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसी आश्चर्यमयावस्था में उसके हृदय में भी भक्ति-भाव के अंकुर उत्पन्न हो गए। इसी कारण से आगे चलने की उत्कंठा और भी तीव्र हो उठी। फलस्वरूप दोनों साथी, भाई की डरौली ग्राम को चल पड़े।

भगवान अंशुमाली अपनी स्वर्णमय रश्मियों के जाल को अपने अंतर हृदय में समेट रहे हैं। शायद वे भी इन युवक साथियों की तरह लोकालोक पर्वत के उस ओर की यात्रा करने की तैयारी कर रहे हैं। हमें तो अपनी-अपनी परंतु उन्हें समग्र संसार की चिंता करनी पड़ती है।

इसी समय ये दोनों युवक पथिक भी आ पहुँचे, तो गगनमय थाल रवि चंद दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती की, समवेत स्वर के साथ, झांज रणसिंह आदि बाजे गूँज उठे। इनकी मधुरतम,तार ध्वनि ने समीपस्थ समस्त श्रोता खींच लिए। देखते ही देखते श्रोताओं से सारा पंडाल खचाखच भर गया, मानो विष्णु भगवान के दर्शन के लिए सब देव समाज एकत्रित हो रहा है। अरदास के अनंतर वाक्य लिया तो शब्द भी वैसा ही आया। यथा-

आसा घरु ४ महला १
१ ओंकार सतिगुम प्रसादि।।
देवतिआ दरसन कै ताई दूख भूख तीरथ कीए।।
जोगी जती जुगति महि रहते करि करि भगवे भेख भए।। १।।
तउ कारणि साहिबा रंगि रते।।
तेरे नाम अनेका रूप अनंता कहणु न जाही तेरे गुण केते।। रहाउ।।
दर घर महला हसती घोडे छोडि विलाइति देस गए।।
पीर पेकांबर सालिक सादिक छोडी दुनीआ थाइ पए।। २।।

साद सहज सुख रस कस तजीअले कापड़ छोडे चमड़ लीए।।
दुखीए दरदवंद दरि तेरै नामि रते दरवेस भए।। ३।।
खलड़ी खपरी लकड़ी चमड़ी सिखा सूतु धोती कीन्ही।।
तूं साहिबु हउ सांगी तेरा प्रणवै नानकु जाति कैसी।। ४।।

(पन्ना **358**)

श्री गुरु ग्रंथ साहिब के सुखासन के अनंतर सब संत महात्माओं ने अनंत श्री विभूषित महंत बुड्ढा सिंह जी के चरणों में नमस्कार की और इन आगंतुक युवक पथिकों ने भी जो सिंघावाला ग्राम से इधर को चले थे वैसा ही किया। महंत महाराज ने कुठारी कारबारी को आज्ञा दी कि आगंतुक भक्तों के लिए भोजन शयनादि का प्रबंध यथा शीघ्र किया जाए। तदनंतर भोजनादि कर सब संत अपने-अपने आसनों पर जा विराजे।

अगले दिन प्रातः कालीन पूजनादि कार्य कलाप समाप्त कर सब संतों ने महंत जी महाराज को नमस्कार की और आदेश पाकर अपने-अपने काम में लग गए। इन नवागंतुक युवक पथिकों से महाराज ने पूछा कि बेटा तुम कैसे आए? तो पूर्व वर्णित बालक ने विनीत स्वर में कहा-महाराज! श्री चरणों में जीवन समर्पित करने आया हूँ। महाराज बोले बेटा, घर में रह कर काम धंधा करते हुए भी सेवा आदि उपकार के कार्य हो सकते हैं। अतः घर में रह कर माता-पिता आदि की सेवा करना अति श्रेयस्कर है। साधु के जीवन में तो बहुत कष्ट आते हैं। तुमने देखा ही है, सब संत जमीन पर ही सोते हैं। यहाँ चारपाई वगैरह का आराम हासिल नहीं होता। महाराज ने अति प्रेम से समझाया।

बालक तो दृढ़ निश्चय करके आया था कि

बहुत जनम बिछुरे थे माधउ इहु जनमु तुम्हारे लेखे।। (पन्ना **694**)

अतः उसने दृढ़ता से उत्तर दिया महाराज मैं तो घर न लौटने की प्रतिज्ञा करके आया हूँ, और घर में माता-पिता आदि की सेवा के लिए चार भाई हैं,

और घर में मोह जाल तो बारंबार संसार सागर में फेंकने वाला है। मैं तो मानव जीवन की सफलता हेतु आपकी चरण-शरण में आया हूँ। मैं बातें नहीं जानता मुझे तो बस अपने चरणों की सेवा में रख लीजिए। इतना कहकर बालक ने वाणी को विराम दिया पर साथ में बैठा हुआ संकीर्तन वाला रागी (गवैया) बोला- महाराज! बालक ठीक ही कहता है। घर में शारीरिक सुख तो उपलब्ध हो सकते हैं पर आत्मिक सुख-शांति तो गुरु जनों की कृपा से ही मिल सकती है। गुरु रामदास जी महाराज ने कितना सुंदर और निस्संदेह उद्घोष किया है

संतहु सुनहु सुनहु जन भाई गुरु काढी बाह कुकीजै।

जे आत्म कउ सुखु नित लोडहु तां सतिगुर सरनि पवीजै। (पन्ना **1326**)

और आप लोगों से सुना है कि वेद भी कहता है-उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्तया। दुर्ग पथः तत्कवयो वदन्तिइत्यादि, हाँ आप ठीक तो कहते हो पर जब तक दृढ़तर वैराग्य न हो तब तक संन्यास लेने की आज्ञा कोई शास्त्र नहीं देता। महाराज ने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया और कहा कि हाँ ! दृढ़ वैराग्य हो जाए तो वेद जरूर आज्ञा देता है संयास लेने की, उदाहरण के रूपमें आपने यह श्रुति सुनाई- ''यदहरेव विरजेत तदहरेव प्रंव्रजेत"। हाँ ठीक तो है महाराज। अब रख लीजिए इसे चरणों की पवित्र सेवा में, रागी ने सिफारिश करते हुए कहा। महाराज ने स्वीकृति प्रदान की।

ग्राम और नाम

महाराज की स्वीकृति के बाद बालक आज्ञा का पालन करता हुआ सेवा करने लगा। चार-पाँच दिन के बाद लड़के के ग्राम का एक व्यक्ति जिसका नाम सौदागर सिंह था, वह इस डरौली ग्राम में अपने रिश्तेदारों से मिलने आया। वह संत महात्माओं के दर्शन के लिए अखाड़े के पंडाल में आ निकला। उसने इस बालक को देख कर आश्चर्य भरे स्वर से कहा-ओ भान्यां? तूं कित्थे? बालक ने शिष्टाचारवश कहा-चाचा संजोग नाल मैं दमदमा साहिब तों एधर आ निकलिया

हाँ।

इन दोनों की गुफ़्तगू महाराज ने सुन ली और दोनों को अपने पास बुलाया और कहा-सरदार तेरा नाम क्या? जी मेरा नाम सौदागर सिंह है, आगत व्यक्ति ने उत्तर में कहा। तू इस बालक को जानता है? जी हाँ जानता हूँ । इसका नाम भानू सिंह है। यह मेरे ग्राम के नंबरदार का पुत्र है, सौदागर सिंह ने जवाब दिया। सौदागर सिंह तेरा ग्राम कौन सा है? जी ग्राम शौकीनों की पत्तो है। इसे हीरा सिंह की पत्तो भी कहते हैं। सौदागर सिंह वह ग्राम तो बहुत बड़ा है तू इसे कैसे जानता है ?

सौदागर सिंह ने नम्रता से कहना शुरू किया-महाराज मैं पत्तो का नाई सिक्ख हूँ । मुझे घर-घर में काम पड़ता है और इनके घर में तो बहुत ही ज्यादा क्योंकि इसका पिता ग्राम का नंबरदार है और मैं चौकीदार का काम भी करता हूँ। अतः बच्चों के जन्म की भी इत्तलाह (सूचना) देनी पड़ती है।

अच्छा तो इसके जन्म और खानदान के संबंध में विस्तार से बताओ, महाराज ने विशेष जानकारी के लिए कहा। अच्छा महाराज जो आज्ञा, सुनिए। इसके पिता का नाम सरदार प्रताप सिंह है। वह हमारे ग्राम के नंबरदार हैं और सिद्ध बराड़ गोत्र के जमींदार हैं। इसके दादा का नाम सरदार जवाहर सिंह था। वे बहुत नेक आदमी थे। लोगों को उनकी सच्चाई और ईमानदारी पर बहुत भरोसा था। किसी जमीन व खेत के बारे में झगड़ा होता तो जो आकर शिकायत करता उसे कहते जा भाई काम कर। मैं कल आकर जमीन नाप कर निशान लगा आऊंगा। बस वे जहाँ निशान लगा आते दोनों दल उसे बिना किसी हील-हुज्जत (ऐतराज़, आपत्ति) के मान लेते थे। मार-पीट आदि फौजदारी के झगड़े भी समझा बुझाकर सुलझा देते थे। किसी को थाने जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। खेत में उनके कुएँ पर कोई न कोई साधु महात्मा आकर टिके रहते थे। वे

सत्संग के बहुत प्रेमी थे, बोलते बहुत कम थे। गरीब लोगों की कन्याओं की शादिओं में भी बहुत सहायता किया करते थे । संवत् 1650 में उनका स्वर्गवास हुआ तो पत्तो ग्राम के अतिरिक्त आस पास के ग्राम निवासियों ने भी बहुत शोक मनाया था। इसका पिता सरदार प्रताप सिंह भी रिटायर्ड (सेवानिवृत्त) सूबेदार है। ग्राम में उसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा है। इस बालक भानु सिंह की भी शिकायत कभी सुनने में नहीं आई। यह संत महात्माओं का बहुत प्रेमी है। अब आपके सामने है।

उसके इतना कहने पर महाराज ने कहा तो अच्छा अब तुम इसे साथ ले जा कर घर वालों के हवाले कर दो। आज्ञा मान कर उसने भानु सिंह से साथ चलने को कहा तो उसने जाने से बिलकुल इनकार कर दिया और कहा कि मुझे मजबूर किया गया तो मैं अन्यत्र चला जाऊंगा। आखिर उसका अटल इरादा देख कर महाराज ने साथ रहने की आज्ञा दे दी और सौदागर सिंह अकेला ग्राम पत्तों को लौट गया।

❑

तरंग 12

स्वकीय सेवा में

महंत बुड्ढा सिंह जी की दूरदर्शी नज़रों से यह छिपा नहीं रहा कि बालक भानु सिंह सरल स्वभाव का किशोर है और बहुत ही विश्वास पात्र है। उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि वह अवश्य एक दिन उन्नति के शिखर पर पहुँचेगा। अतः उसे थोड़ा-थोड़ा पढ़ाने भी लगे। बालक में धारण शक्ति की कमी न थी, वह आशा से अधिक याद कर लेता। सेवा में उसकी रुचि अत्यधिक थी। उसका सरल स्वभाव, सेवा में रुचि, पढ़ने में प्रीति और अनन्य श्रद्धा देख कर महाराज ने उसे निजी सेवा में नियुक्त कर दिया। जमात यहाँ पच्चीस दिन तक सद्विचार और नामवाणी का प्रचार करके अमृत बरसाती रही क्योंकि बाबा बुड्ढा सिंह जी कथा बहुत सुंदर करते थे। आप व्यवहार में अति कुशल व्यक्ति थे, इसलिए जमात के साधु-संत उनके अनुशासन का पालन कर पूर्णतया संत मर्यादा में रहते थे और यहाँ की श्रद्धालु जनता पर अच्छा असर पड़ता था। यहाँ के भक्तों ने बहुत प्रसन्नता से सेवा की। खास कर साईंदास जो कि गुरु हरगोबिंद जी की कृपा दृष्टि से अति धन्य हो चुके थे, के खानदान वालों ने बहुत ही उदारता एवं श्रद्धा से सेवा की, अति आदर सत्कार से ग्राम निवासी जनता और स्थानीय महंतों ने पंच परमेश्वर को विदायगी दी।

❑

तरंग 13

गोदावरी गंगा की ओर

यहीं से अखाड़ा रम्मत ने त्रयंबक के कुंभ-स्नान की खातिर गंगा गोदावरी की ओर रुख किया। यात्रा की मंजिलें तय करती और गुरु नानक देव के मिशन का प्रचार करती हुई संतों की यह निर्मल जमात, गोविंद के गीत गाती गोदावरी गंगा के किनारे श्री त्रयंबक के कुंभ पर पहुँच गई। निर्मल महंतों ने श्री गुरु गोविंद सिंह जी की धर्मध्वजारोपण करके ऊँची बसंती पताका फहराई। धर्मध्वजा की यथा विधि पूजा की। निर्मल छावनी शिविर में पावन गुरुवाणी के कथा कीर्तन आदि की गूँजें पड़ने लगीं। मानव मात्र के लिए गुरु नानक देव का लंगर अन्न क्षेत्र जारी हो गया। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान वैराग्य और प्रेम की एक और धारा गोदावरी की गोद से फूट पड़ी। गंगा गोदावरी का तीर, नदी का निर्मल नीर और श्रावण के शीतल समीर से बने शांत वातावरण में इस किशोर बालक भानु सिंह ने बाबा बुड्ढा सिंह जी के पुनीत पदारविंदों में मस्तक धरकर विनय की–महाराज

किरपा करहु दीन के दाते मेरा गुणु अवगणु न बिचारहु कोई।।
माटी का किआ धोपै सुआमी माणस की गति एही।। (पन्ना **882**)

गुरु नानक प्रसन्न हों और नाम अमृत का घूँट पिलाकर चरणानुचर को कृतार्थ करो। गुरु-आज्ञा पालन की कसौटी पर कस कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके बालक सेवक की विनती स्वीकार की गई। बाबा जी ने माननीय महंतों और सहयोगी मित्रों से सम्मति कर और शुभ मुहूर्तादि देखकर निर्मल धर्मध्वजा की

पवित्र पताका की पावन छाया और निर्मल चंदोआ के नीचे सुयोग्य शिष्य का यथाविधि अमृत संस्कार सम्पन्न किया।

ग्रंथी को आज्ञा हुई कि गुरु महाराज का मुख्य वाक सुनाओ तो पहले यह श्लोक आया–

सलोकु।।
आतम रसु जिह जानिआ हरि रंग सहजे माणु।।
नानक धनि धनि धंनि जन आए ते परवाणु।। १।। पउड़ी।।
आइआ सफल ताहू को गनीऐ।।
जासु रसन हरि हरि जसु भनीऐ।।
आइ बसहि साधू कै संगे।।
अनदिनु नामु धिआवहि रंगे।।
आवत सो जनु नामहि राता।।
जा कउ दइआ मइआ बिधाता।।
एकहि आवन फिरि जोनि न आइआ।।
नानक हरि कै दरसि समाइआ।। १३।। (पन्ना **252**)

इसलिए नवानुशासित शिष्य का शुभ नाम आत्मा सिंह रखा गया। इसके बाद परम अनुगृहीत शिष्य के आनंद का कोई पारावार नहीं था, क्योंकि उसे पूर्ण गुरु से उपदेशामृत प्राप्त हो चुका था। तभी तो गुरु अर्जुन देव जी महाराज ने पूरे गुरु से उपदेश ग्रहण करने को कहा है ताकि ब्रह्म का साक्षात्कार हो सके। यथा–

पूरे गुर का सुनि उपदेसु।। पारब्रहमु निकटि करि पेखु।। (पन्ना **295**)

पूर्ण गुरु के बिना प्रत्यक्चैतन्याभिन्नत्वेन ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान नहीं हो सकता और बिना अपरोक्ष ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं।

श्रुति कहती है– 'ऋते ज्ञानन्न मुक्तिः'। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती और ज्ञान के बिना हर्ष, शोक, मोह के दुस्तर संसार सागर को तैर कर कोई पार नहीं

हो सकता। एक आत्मज्ञानी ही शोक सागर को तैर कर पार हो सकता है। श्रुति कहती है 'तरति शोकमात्मवित्'।

शिष्य के आनंद का कोई पारावार नहीं क्योंकि वह अमृत पी कर पूर्ण तृप्त हो गया है। पावन गुरुवाणी में आज्ञा है-

पी अंम्रितु आघानिआ गुरि अमरु कराइआ।। (पन्ना **808**)

यह ध्रुव सत्य है कि बिना सत्संग के ये दुर्लभ पदार्थ नहीं मिलते, साधु संत महात्मा ही से यह अलभ्य लाभ संभव है, अन्यथा नहीं। पावन गुरुवाणी कहती है-

हरि अम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु।। (पन्ना **134**)

यह इतना दुष्प्राप्य रत्न है जो बादशाहों के खजानों में भी नहीं मिलता। या तो यह महात्माओं की कृपा से मिलता है या भगवान की अनुकंपा से, पर भगवान की कृपा भी तभी होती है जब पहले संतों की कृपा होती है। संतों की कृपा तब होती है जब सेवा करता हुआ जिज्ञासु धूली के समान निर्माण हो जाए या चरणों की धूली में लेटता रहे, चरणों में पड़ा सेवा करता रहे। गुरुवाणी में हुकुम है-

धूड़ी मजनु साध खे साई थीए क्रिपाल।। (पन्ना **80**)

यथा-

माघि मजनु संगि साधूआ धूड़ी करि इसनानु।। (पन्ना **135**)

किसी फकीर ने भी सुंदर कहा है -

जो तू चाहे कि हो भगवान की तुझ पर नजर पहले।

तो उनके आशिकों की ख़ाक-पा में कर गुज़र पहले।

सतयुग के समय में एक बहुत बड़ा धर्मात्मा राजा हो गुजरा है। उसका नाम था राहुगण। वह विद्वान् भी था पर फिर भी बीतराग ज्ञानी महापुरुषों का बड़ा श्रद्धालु था। वह ऋषि मुनि तत्त्ववेता महापुरुषों के दर्शनार्थ जाया करता था। एक बार वह पुराणों में अति प्रसिद्ध जीवन-मुक्त महापुरुष जड़ भरत के दर्शन के लिए गया। उसने यथार्थ वक्ता महात्मा से पूछा-महाराज वह परमपद

रूपमोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है जिससे पुनः गिरने का भय न रहे। तब उत्तर में जड़ भरत ने कहा–हे राहुगण ! चाहे जितने यज्ञ कर ले, कितने कठिन जप कर ले, वेद पढ़ ले, संन्यास धारण कर अरण्यों में वास कर ले, घर में रह कर कर्मकांड करता हुआ जन्म बिता दे, पर जब तक महापुरुषों की चरणधूलि को मस्तक पर धारण नहीं करता तब तक कोई अविनाशी पद को प्राप्त नहीं कर सकता। यथा–

राहु गणैततपसान याति नचेज्यार्निवपणात गृहाद्वा
न छन्दसा नैवजलाग्नि सर्यो र्विनामहत पद–रजोभिषेकम्

इस प्रकार जहाँ संत आत्मा सिंह का स्वच्छ हृदय आनंदोलास से परिपूर्ण था, वहाँ सुयोग्य शिष्य को पाकर गुरुदेव और उनका मित्र मंडल भी अति प्रसन्न था।

संवत् 1956 में बीकानेर पर अकाल का असह्य वज्रपात हुआ था और बीकानेर का गरीब गुर्बा उजड़ कर पंजाब के दर–दर का भिखारी बन गया था। देश के एक भाग में भारी भुखमरी फैली हुई थी, पर सौभाग्यशाली आत्मा सिंह का भाग्य सूर्य की सुनहरी रश्मियों के साथ उदय हो रहा था। इस समय संत आत्मा सिंह की आयु सत्रह–अठारह वर्ष की थी।

❑

तरंग 14

लाल रंग

लाल रंगु तिस कउ लगा जिस के वडभागा।। (पन्ना **808**)

के अनुसार संत आत्मा सिंह जी की अभिलाषा देखकर इसके वस्त्र काशाय रंग में रंग दिए गए और मन को प्रभु प्रेम के रंग में रंग दिया।

किसको मालूम था कि यह भोला-सा कुमार गुरुजनों की सुश्रूषा, श्रद्धा एवं अदम्य इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास के बल उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ होकर उज्ज्वल यश की पताका आकाश में झुलाएगा। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह दरिद्र नारायण और दीन दुखियों के दर्द बाँट कर भूखे प्यासे प्राणियों की प्रेम से सेवा कर वैकुंठ के द्वार खोल कर वहाँ सदैव के लिए आसन जमाएगा।

भाद्र पद

त्रयंबक का कुंभ पूर्व श्रावण भाद्र पद में होता है। यह बंबई का इलाका होने के कारण यहाँ अत्यधिक वर्षा होती है इसलिए यहाँ का कुंभ मेला अति कष्ट प्रद होता है। यहाँ सब के मकान आदि का प्रबंध असंभव है। तंबू, झोपड़ी आदि में ही गुजारा करना पड़ता है। तंबू, झोपड़ी आदि टपकने लग जाते हैं। ईंधनादि के भीग जाने से रसोई की सेवा में बड़ी असुविधा होती है। भंडारी धुएँ के कष्ट से ऊब जाते हैं। अतः यहाँ बड़े धैर्यवान और सेवा कार्य में कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता होती है सो इस कुंभ पर इन सब कामों के लिए संत आत्मा सिंह जी सब से उपयोगी साबित हुए। रसोई बनाना, बनवाना और पंगति में परोसना

आदि कठिन कार्य होते हैं। इनसे भी अधिक कठिन काम होता है गुरुजनों की सेवा, वृद्ध महात्माओं को उनके आसनो पर दूध पहुँचाना। बीमार व्यक्तियों को दवा, भोजन और चाय आदि पहुँचाना। संत आत्मा सिंह जी ने यह सब आसानी से कर दिखाया।

रात्रि के दस बजे थे, शीतल झंझावात ने झोपड़ियाँ हिला डालीं। वृक्षों पर बैठे पंछी भयभीत होकर शोर मचाने लगे। सोए हुए सब संत जाग पड़े और सतनाम् श्री वाहिगुरु कहते हुए उठ बैठे। इतने जोर की बिजली कड़की कि मानो कहीं इंद्र का वज्रपात हो गया है। बादलों की गड़गड़ाहट के अनंतर मूसलाधार बारिश आरम्भ हो गई। वह कहती थी मैं प्रलय की बहन हूँ बिना विराम बरसूंगी, चाहे कोई कितना जोर लगा ले। कुछ ही मिनटों में चारों ओर जल ही जल हो गया। इस धुँआधार तूफान से एक वृद्ध साधु की झोपड़ी गिर पड़ी। वह कांपता हुआ आया और एक झोपड़ी के सामने रुक कर कांपती हुई ज़बान से बोला-भाई कौन है इसमें? करुणा भरी आवाज आई-महाराज! मैं आपका दास आत्मा सिंह हूँ। वृद्ध को विश्वास हो गया कि जगह मिल जाएगी। बोला-कितने व्यक्ति हैं इसमें? उत्तर मिला -हम तीन साधु हैं। इसमें तब तो जगह नहीं होगी, पर मैं तो मरा जा रहा हूँ कड़ाके की सर्दी से, वृद्ध ने दया की याचना करते हुए कहा। दयालु आत्मा सिंह को आज प्रातः भाषण देते हुए एक महात्मा की बात याद आ गई।

उसने कहा था-

गर चुभे कांटा किसी को दर्द तू महसूस कर।
मत तसव्वर गैर कर अपना बेगाना छोड़ दे।

वह बोला जगह तो नहीं है महाराज, पर आप आइए मैं और कहीं जाकर गुजारा कर लूँगा, कहते हुए आत्मा सिंह ने उठ कर उसे अपनी जगह पर बैठा दिया और स्वयं एक पेड़ के नीचे जाकर खड़ा हो गया। तूफान की मार वह कब

तक सह सकता था। अरुणोदय के समय तक शरीर जकड़ सा गया और छाती में दर्द होने लगा। तब तक महात्मा लोग झोपड़ियों से बाहर निकले, उन्होंने पास जाकर देखा तो आत्मा सिंह को बुखार हो रहा है। उन्होंने दो और महात्मा-संत हरनाम सिंह जी बलौंगी वाले और फुम्मन सिंह जी शौंकी को बुलाया और वे उन्हें उठाकर महंत बुड्‌ढा सिंह के तंबू में ले गए।

डॉक्टर बुलाया गया, उसने देखा, समझा और दवा पिला दी। डॉक्टर ने कहा-महात्माओं, अगर कोई वृद्ध शरीर होता तो कभी का ठंडा हो चुका होता। खैर, यह बलवान नौजवान है इसलिए कोई चिंता की बात नहीं। दवा की दो खुराक देकर डॉक्टर चला गया। उसे जाते देखकर कैंप में खलबली-सी मच गयी। सब पूछने लगे कौन बीमार है? जब यह पता चला कि संत आत्मा सिंह को रात निमोनिया हो गया तो सब चिंता में डूब गए। वृद्ध महात्मा कहने लगे कि उसके बिना तो हम बेसहारे और अनाथ हो जाएँगे परंतु वह दो दिन में अच्छा हो गया। कैंपवासियों की खुशी का कोई पारावार नहीं था। अब आत्मा सिंह, सब कैंप निवासियों की नजरों का केंद्र था। उसे स्वस्थ देख कर सबने भगवान का कोटिशः धन्यवाद किया। वृद्ध महात्मा ने तो कहा कि इसने मेरे लिए इतना कष्ट सहन किया है जो कि इतने घोर कलि काल में संतान व माता के लिए संभव नहीं। भगवान इसे यश और सुखी जीवन अवश्य प्रदान करेंगे। आगे चल कर शायद इसी महात्मा नारायण दास का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। इस प्रकार संत आत्मा सिंह संवत् 1956 के कुंभ का नायक बन गया।

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ।। ता दरगह बैसणु पाईऐ।। (पन्ना **26**)

❑

तरंग 15

श्री हज़ूर साहिब की यात्रा

कुंभ मेला की सफल समाप्ति के बाद निर्मल अखाड़ा की जमात अविचल नगर हजूर साहिब की यात्रा करके पंजाब लौटी। पंजाब के दुआब प्रदेश (जालंधर, होशियारपुर, कपूरथला) के दौरे में संत आत्मा सिंह जी एक साल तक साथ रहे। यहाँ से आप रीठा साहिब (जिला पीलीभीत) की यात्रा कर नेपाल की यात्रा पर चले गए। वहाँ से बनारस (काशी), अयोध्या और दिल्ली के गुरुद्वारों के दर्शन कर संवत् 1959 की गुरुपूर्णिमा के चार दिन पहले डेरा मस्तगढ़ जिला जालंधर में जमात में आ मिले। जमात यहाँ से रम्मत अखाड़ा अर्थात् निर्मल अखाड़ा की जमात मंज़िल व मंज़िल सिंध में पहुँच गई। संवत् 1959 की कार्तिक पूर्णमासी सिंध में मनाई। सिंध के इस दौरे में संत आत्मा सिंह की सेवा बहुत उपयोगी साबित हुई क्योंकि इसकी दृढ़ता और सौजन्यपूर्ण बर्ताव के कारण जमात के सभी संत पूर्णतया अनुशासन में रहे। किसी प्रकार की अभद्रता नहीं दिखाई। महंत बुड्ढा सिंह जी के कथा संभाषण, प्रभावशाली व्यक्ति व आदि के कारण आपका सिंध में बहुत यश और आदर सत्कार हुआ। इस सफल दौरे से महाराज वापस आए तो अखाड़ा के अन्य महंतों से मतभेद हो जाने के कारण महंत बुड्ढा सिंह जी ने अखाड़े की सेवा से त्याग-पत्र दे दिया।

❑

तरंग 16

अब बाबा बुड्ढा सिंह जी अखाड़े के झंझटों की चिंता से विमुक्त हो गए और आप के सामने एक ही काम था और वह था गुरु नानक जी के पवित्र मिशन का प्रचार।

मनुष्य न तो खाली बैठ सकता है और न ही उसे अकर्मण्य होकर बैठना चाहिये क्योंकि कर्म-धर्म के बिना मानव का न कल्याण हो सकता है और न उसे लौकिक जीवन की सुख-सुविधा की सुधा पीने को मिल सकती है। गरीयसी गुरुवाणी कहती है-

करम धरम की सार न जाणै सुरति मुकति किउ पाईऐ।। (पन्ना **437**)

गुरु गोविंद सिंह जी ने तो अकाल पुरुष से वर भी यही मांगा था कि कर्त्तव्य और सुकर्म करने से मैं कभी विमुख न हो जाऊँ। हे प्रभु ! मुझे यही वर दीजिये-देहि शिवा बर मोहि इ है शुभ करमन ते कबहूं न टरों।

भगवान कृष्ण जी ने भी गीता में यही उपदेश अर्जुन को दिया कि- कर्मण्येवाधिकारस्ते। मा फलेषु कदाचन माकर्मफल हेतुर्भूमा ते संगोस्त्वकर्मणि हे अर्जुन ! तेरा अधिकार कर्म करने तक ही सीमित है, उसका फल क्या होता है, इसकी चिंता तुझे नहीं करनी चाहिए। यदि तू कर्म-फल की इच्छा करेगा तो कर्म के फलस्वरूप जन्म का कारण तू बनेगा। जन्म के अनंतर मरण भी अब यंभावी हैं इसलिए जन्म-मरण के दुःखदायी चक्र में पड़ जाएगा जिससे छुटकारा पाना दुस्साध्य हो जाएगा। अतः फल की तृष्णा का परित्याग कर दे। यदि यह कहो कि कर्म हम करेंगे ही नहीं, तो कर्मफल की इच्छा छोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसलिए भगवान ने आगे कहा है कि ऐसा होना असंभव है-कर्म किए बिना तो एक क्षण भी किसी की स्थिति नहीं हो सकती-"नहि कश्चित् क्षणमपि जातु निष्ठत्यकर्मकृत" अतः फल की इच्छा को ही छोड़ देना श्रेयस्कर है। जब तक शरीर है तब तक कोई न कोई क्रिया तो होती ही रहेगी। यथा-उठना, बैठना, चलना, खाना, पीना, सूँघना, सुनना, सोना, जागना, मनन करना, संदेह करना, निर्णय करना, पूजा-पाठ, ध्यान आदि सभी कर्म ही के अंतर्गत हैं। जब तक जीवन है तब तक शरीर इंद्रिय आदि से कोई न कोई हरकत बनी ही रहेगी। कोई शरीरधारी बिना कर्म किए एक क्षण भी नहीं रह सकता। भगवान का यही आशय है।

अध्याय दूसरे के पचासवें श्लोक में भगवान ने बड़ा सुंदर उपदेश इसी प्रकार का दिया है-

बुद्धियुक्त जहातीह उभे सुकृत् दुष्कृते।।
तस्माद्योयोगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

अर्थात् सर्वत्र समता बुद्धिवाला पुरुष, पुण्य और पाप रूप दोनों किस्म के कर्मों को इसी लोक में छोड़ देता है इसलिए तू समत्व रूप योग में प्रवृत्त हो। बस यह समत्व योग ही कर्मों में कुशलता है।

श्रीमद्भगवद् गीता का यही सार है। कर्म करने की कुशलता का नाम ही तो योग है। कर्म तो हमें करने ही पड़ेंगे, पर उनमें कुशलता रखनी है कि वे कर्म बंधन का कारण न बनकर मोक्ष के हेतु बने, पर मुक्ति के कारण वे तभी हो सकते हैं जब वे प्रभु के निमित किए जाए, भगवान ही करने वाले हैं और वे ही हम से करवा भी रहे हैं। मैं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। यथा कबीर जी ने कहा है-

कबीर ना हम कीआ न करहिगे ना करि सकै सरीरु।।
किआ जानउ किछु हरि कीआ भइओ कबीरु कबीरु।। (पन्ना **1367**)

जब मैंने किया ही नहीं तो मुझे फल चाहने का क्या अधिकार है। समस्त फलों का सार रूप तो मेरा प्यारा प्रभु है, बस मुझे तो उन्हीं को पाने की अभिलाषा है। प्रभु प्रसन्नता के लिए ही मैं अपना फर्ज़ पूरा कर रहा हूँ। मैं तो एक यंत्र के समान हूँ। मेरे चालक भगवान स्वयं हैं। मैं तो उनके हाथ का यंत्र मात्र हूँ। वीणा चाहे कितनी ही कीमती क्यों न हो, वह स्वयं बज नहीं सकती है–

जिओं जिओ तंति बजावै जोगी तिओ तिओ बाजे वेणु।।

कोई भी इंजन ड्राईवर की इच्छानुसार ही चलता है। उसमें स्वतंत्र चलने की शक्ति नहीं होती। अगर ड्राईवर एक क्षण के लिए उसकी चिंता छोड़ दे, तो जंक्शन स्टेशन पर किस लाईन पर उसे (इंजन) जाना है वह स्वयं नहीं जानता। अतः एक्सीडेंट हो जाएगा। वह स्वयं भी टूट जायेगा और दूसरों को भी मौत के मुँह में ले जायेगा। उसे तो ड्राईवर की इच्छानुसार ही चलना है। गुरुवाणी का वचन है–

जिउ चलाए तिओ चालह भाई होर किआ को करे चतुराई।। (पन्ना **635**)

अतः इसको चाहिए कि कर्तृत्व का अभिमान छोड़कर ही कर्म करता रहे। आसक्ति छोड़कर, केवल कर्त्तव्य समझकर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए। मैं और मेरा सब कुछ भगवान के चरणों में अर्पित है, ऐसा विशुद्ध भाव रखना चाहिए तब कर्म बंधन के हेतु न बनकर मोक्ष के कारण बनेंगे। बस यही कर्म करने में कुशलता है।

इसलिए अब महंत बुड्ढा सिंह जी के लिये अकर्मण्य होकर बैठना न तो संभव ही था और न ही उचित। अतएव भक्तों के बुलावे पर उन्होंने पुनः सिंध जाने की तैयारी कर ली। संवत् 1959 के अंत में वे कराची पहुँच गए। संत आत्मा सिंह, संत जयमल सिंह जी अवधूत, संत संतोष सिंह आदि चेले और कई एक अन्य विरक्त साधु साथ में थे। इस प्रकार एक अच्छी मंडली बन गई।

बाबा बुड्ढा सिंह जी विद्वान् थे। वे अमृतसर में पर्याप्त समय तक रहने से

गुरुवाणी एवं इतिहास आदि के अच्छे ज्ञानी थे। वाराणसी (काशी) में रहकर उन्होंने संस्कृत का भी पर्याप्त अध्ययन किया था अतः वे अच्छे पंडित तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उनकी बुद्धि सूक्ष्मग्राही थी। धारण शक्ति के तो ये पुंज थे। अखाड़े में काम करने से वह लौकिक व्यवहार के तो विशेषज्ञ माने जाते थे। वार्तालाप में भी वह दक्ष थे। शारीरिक सौंदर्य के भंडार थे। उनका व्यक्तित्व आकर्षक था जिससे उनकी कथा का प्रभाव जनता पर बहुत पड़ता था, इसलिए वह जहाँ कथा करते, लोग उन्हें आगे जाने नहीं देते थे। चार-चार, छः-छः महीने वह एक शहर में ही रह जाते। पाँच माह कराची में कथा करके जब वह सक्खर को जाने के लिए तैयार हुए तो उनके वियोग के दुख से दुखित जनता की अपार भीड़ उन्हें स्टेशन पर गाड़ी में बैठाने आई।

सक्खर की ओर

सक्खर में आपका भव्य स्वागत हुआ। यहाँ आपकी कथा के माधुर्य की चर्चा घर-घर में होने लगी। जहाँ कथा करते पंडाल ठसा-ठस भर जाता। आप में किसी भी प्रकार के प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने की अद्‌भुत शक्ति थी जिससे समझदार, सयाने (बुद्धिमान) और पढ़े-लिखे लोग बहुत प्रभावित होते थे। आखिर अखाड़े के और अमृतसर के महंतों की ओर से पत्र आया, जिसमें आपसे तुरंत अमृतसर पहुँचने की प्रार्थना की गई।

सक्खर से अमृतसर की ओर

अखाड़े के लिए कुछ जायदाद खरीदने के बारे में आपसे कुछ परामर्श करना था। चूँकि आप निर्मल अखाडे की जनरल कमेटी के प्रधान थे अतः आपके लिए लाज़िमी (अनिवार्य) था कि वहाँ पहुँचें। अतः लाहौर में महंतों संतों से मिलकर और एक-दो सहयोगी मित्रों को साथ लेकर आप अमृतसर पहुँच गए। आपके आने से अमृतसरी निर्मल समाज में खुशी की लहर दौड़ गई। संत आत्मा सिंह आदि भी साथ पधारे थे। चूँकि डेरा ठाकुर बाबा बुड्‌ढा सिंह जी का

गुरु स्थान था अतः वे मंडली सहित यहीं आकर ठहरे थे। अगले दिन प्रातःकाल ही संपूर्ण मंडली सहित बाबा जी श्री दरबार साहिब के दर्शन करने गए। श्री हरिमंदिर साहिब के दर्शन करके सभी संत महात्मा खुश हुए। संत आत्मा सिंह आदि ने श्री दरबार साहिब के पावन दर्शन का पुण्य पहले पहल ही प्राप्त किया था, इसलिए आश्चर्यचकित होकर दर्शन करके अघाते नहीं थे।

यद्-यदाचरित श्रेष्ठः

बाबा बुड्ढा सिंह जी में गुरु बनने की योग्यता थी। वह जानते थे कि शिष्यों के प्रति गुरु के क्या कर्त्तव्य होते हैं। गुरु का काम केवल इतने से ही समाप्त नहीं हो जाता कि वस्त्र रंग दिये और कान फूँक दिए। प्रत्युत गुरु का सर्वोपरि कर्त्तव्य है कि शिष्य को व्यवहार और परमार्थ दोनों में कुशल बनाना। पूर्ण गुरु के बिना यह संभव नहीं। गुरु नानक देव जी ने बड़े सुंदर ढंग से इस बात को स्पष्ट किया है। गुरु भी ऐसा होना चाहिए जो इस दुनिया से भी वाकिफ़ हो और अगली दुनिया की भी जानकारी रखता हो। मौलाना रुम ने ऐसे गुरु का ही दामन पकड़ने को कहा है-

दामने उगौर ऐ यारे दलेर।
जो मुनज्रा बाशद अज बाला ओं ज़ेर।

अर्थात्-ऐ दलेर मर्द ! किसी ऐसे का दामन पकड़ जो वाकिफ़ हो इस दुनिया से और अगली दुनिया से भी। यहाँ भी उपदेश देकर किनारे न हो जाए जब अंत का समय आए तो सामने आ जाए, मर कर आगे जाए तो गवाही के लिए वहाँ भी सामने आ जाए सहायता के लिए। गुरु अर्जुन देव जी इसी भाव को अनूठे ढंग से कहते हैं-

नानक कचड़िआ सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ।।
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि।। (पन्ना **1102**)

ऐसे गुरुजनों का गौरव बताते हुए गुरु नानक जी ने कहा है-कि चाहे

हजारों सूर्य चाँद उदय हो जाए मगर गुरु के बिना मनुष्य का अज्ञान अंधकार दूर नहीं हो सकता यथा-

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।।
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार।। (पन्ना **463**)

इसलिए गुरु जो शिक्षा व जैसी शिक्षा देना चाहता है उसे वह अपने आचरण में ढाल कर दिखलावे क्योंकि वह जैसा आचरण करेगा शिष्य भी वैसा ही करेगा। गुरु द्वारा अपनाये गए मार्ग पर ही वह चलने का यत्न करेगा। इसी बात को श्री कृष्ण भगवान ने भगवत गीता में कहा है-

यद्यदाचरति श्रेश्ठस्ततदेवतरो जनः।
सःयत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।

महंत बुड्ढा सिंह जी शिष्योपशिष्यों को व्यवहार परमार्थ की शिक्षा देना चाहते थे इसलिये वे चेलों को गृहस्थ लोगों में एवं संत आश्रमों में साथ ले जाकर वहाँ कैसे बैठना, कैसे बोलना, कैसा बर्ताव करना चाहिए इत्यादि की शिक्षा अपने आचरण द्वारा देना चाहते थे, ताकि वे भविष्य में संत समाज, गृहस्थ भक्तों एवं देश के अन्य लोगों के साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिए- इसे भली-भांति जान लें, जो वह करते, उसी की शिक्षा देते थे। पावन गुरुवाणी कहती है-

प्रथमे मनु परबोधै अपना पाछै अवर रीझावै।। (पन्ना **381**)

तरंग 17

संत आश्रमों में

शाम को मंडली के सब संतों को बुलाया और कहा कि भाई कल प्रातः ही सब संत आश्रमों की यात्रा करेंगे। शिष्टाचार के नाते ऐसा करना आवश्यक है और न करने से दोष है। सो अगले दिन सभी संत प्रातःकालीन नित्य कर्म से निवृत्त होकर पहले बाबा मिशरा सिंह जी के डेरे महंत रत्न सिंह जी से मिलने गये। संत आत्मा सिंह जी आदि सभी संतों का सबसे परिचय करवाया। संत आत्मा सिंह जी के हाथ से फल-फूल आदि भेंट करवाया। इसी प्रकार सब संतों के आश्रमों में गए और यथायोग्य पूजा-अर्चना संत आत्मा सिंह के हाथों से करवाई। अमृतसरी महंतों तथा संतों ने भी महाराज का सेवा सत्कार किया।

बाबा जी महाराज को निमंत्रण

अगले दिन महंत रत्न सिंह जी की ओर से मंडली सहित बाबा जी को निमंत्रित किया गया। शहर के कुछ अन्य प्रतिष्ठित संतों महंतों को भी निमंत्रण भेजा। जब सब निमंत्रित महापुरुष आ गए तो महाराज से सिंध के दौरे के अनुभव सुनने के बाद, सभी संत मिले। यथा-

जब लगु दुनीया रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ।। (पन्ना **661**)

के अनुसार गंभीर विषयों पर विचार- विनिमय होता रहा। जब भोजन में कुछ ही समय बाकी रह गया तो महंत रत्न सिंह जी ने महाराज से कुछ भाषण सुनाने के लिये प्रार्थना की और समागत सब महात्माओं ने आप की बात का समर्थन किया।

महाराज का संभाषण

मंगलादि के बाद महाराज ने कहा-माननीय मनीषीमंडल आपके लिए जानने

योग्य कोई बात बाकी नहीं है फिर जिन्होंने गुरु नानक के उपदेश अमृत का पान किया हो, गुरु नानक के संसार सार उपदेश का श्रवण मननादि सम्यक् प्रकार से किया हो उनके सामने कोई क्या विशेष बात कह सकता है। गुरु अंगद देव जी ने कितना सुंदर कहा है–

तिन कउ किआ उपदेसीऐ जिन गुरु नानक देउ।। (पन्ना **150**)

अस्तु आदरणीय सज्जनों, आज हम मंडली के सभी संत अपने भाग्यों को अति उत्तम मानते हैं कि पावनतम गुरु नगरी में आकर

डिठे सभे थाव नही तुधु जेहिआ।। (पन्ना **1362**)

के अनुसार संसार में अनुपम हरिमन्दिर के दर्शन कर सके हैं। इस पर भी अपने समाज के सर्वमान्य महात्माओं के दर्शन से तो हमारे भाग्य रूपी सोने में सुगंध भी आ गई है। आनंद परिपूर्ण हृदय से कुछ ऐसा ही महसूस हो रहा है। सचमुच ही आपके दर्शनों से जिस आनंद का हम अनुभव कर रहे हैं, उसे शब्दों द्वारा व्यक्त कर सकना संभव नहीं है। अस्तु! प्यारे सज्जनों, जिस जगह हम एकत्रित हो रहे हैं, यह मातृ-भूमि भारत के विशाल भूभाग पंजाब की हृदय स्थली है। पंजाब की यह पावन धरती, जहाँ गेहूँ, चना आदि पुष्टिकर अनाज, संतरा, मालटा और केला आदि उत्तम फलों के रूप में सोना उत्पन्न करती है, वहाँ महामानवरूपी रत्नों को भी जन्म देने वाली उर्वरा भूमि है। उदाहरण के लिये शौर्य और धैर्य में अद्वितीय हरि सिंह नलुआ जैसे बेजोड़ सेनानी, महाराजा रणजीत सिंह जैसे दूरदर्शी, धैर्यवान, राजनीतिज्ञ, महाराजा कल्लू किक्कर सिंह और गामा जैसे अतुल बलशाली मल्लराज यहाँ तक कि गुरु नानक, गुरु अर्जुन देव जैसे अमृत वर्षा करने वाले आध्यात्मिक सत्साहित्य के स्त्रष्टा, अदम्योत्साही गुरु हरिगोबिंद जैसे दल-भंजन सूरमा, महाबली अद्वितीय योद्धा धर्म की बलि वेदी पर प्राण न्यौछावर करने वाले हिंद की चादर गुरु तेग बहादुर जैसे हिंदू-धर्म के रक्षक, अवतारी महापुरुषों का आविर्भाव भी इसी धरा-धाम के अंदर हुआ।

सर्व सिद्धियों के स्वामी बाबा बुड्ढा सिंह जैसे भजनानंदी, जड़्भरतोपम बाबा रामकुंवर जैसे हस्तामलकवत् आत्मदर्शी महामानव, इसी भव्य भू-खंड की देन हैं। सन्निकट अतीत में भी लासानी आलिम पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ स्वामी रामतीर्थ जैसे महात्यागी महात्मा भी इसी धर्मधुरीण धराधाम के जाज्वल्यमान रत्न थे। यहाँ तक कि सुदूर अतीत में भी इसी प्रांत की पवित्र नदियों की उत्ताल तरंगों को छूती हुई पावन पवन के स्पर्श से शांत हृदय ऋषिमुनियों ने वेदों की ऋचाओं की रचना भी यहीं की थी। बहुना इस पवित्र पृथ्वी का कण-कण सूर्य के समान है जिनकी बिखरी हुई किरणों ने समस्त संसार का जाड्यान्धकार दूर कर ज्ञानरूप प्रकाश पुंज प्रदान करके संसार का महान् उपकार किया है। अतः हमें भी उच्च सिद्धांतों का संदेश दुनिया को देने वाली इस पावन स्थली पर बैठ कर उच्च सिद्धान्तों पर ही विचार करना उचित है। सो सुनिए।

जीवन का उद्देश्य

मानव जीवन का परम उद्देश्य है सत्- चित-आनंद स्वरूप आत्मा का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना। इतना जान लेना ही पर्याप्त नहीं है कि आनंद स्वरूप या परम कारुणिक भगवान हैं और मैं उनकी आज्ञा में रहने वाला जीव हूँ, प्रत्युत प्रत्येक चैतन्याभेदेन जो ब्रह्म का ज्ञान है, वही यथार्थ ज्ञान या सम्यक् ज्ञान है-वही ज्ञान मोक्ष के प्रति कारण है।

सत्चित्तआनंद स्वरूप ब्रह्म है, इस प्रकार के परोक्ष ज्ञान से कुछ विशेष लाभ नहीं है। केवल इतना जान लेने से कि पृथ्वी के अंदर पानी है, पानी मिल नहीं जाता। हाँ इतना लाभ अवश्य है कि धरती के पानी के ज्ञान से, पानी प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है और जिस वस्तु की इच्छा होती है, उसकी प्राप्ति के लिये यत्न करना संभव है। जब मनुष्य उसकी प्राप्ति के साधन पृथ्वी खनन आदि के औज़ार लेकर ज़मीन को परिश्रम से खोदता है, तभी मधुरतर जल से प्यास बुझाकर शांति एवं आनंद का अनुभव करता है।

इसी प्रकार परमेश्वर के परोक्ष ज्ञान से, जिज्ञासु को अपरोक्ष ज्ञान यानी प्रत्यक्ष ज्ञान की इच्छा होती है, तब वह जिज्ञासु कहलाता है। जब जिज्ञासु मोक्ष के चार साधन जुटा लेता है, यानि साधन चतुष्ट्य संपन्न होता है तब अपरोक्ष ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है। वे चार साधन ये हैं-विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति और मुमुक्षा। षट्सम्पत्ति में छः साधन आते हैं यथा-साम, दाम, श्रद्धा, समाधान, तितिक्षा, उपरति। जब उक्त साधन संपन्न जिज्ञासु ब्रह्मश्रोत्रीय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाता है तब परम दयालु गुरु उस साधन संपन्न जिज्ञासु को ज्ञान का अधिकार जानकर उसे तत्त्वमसि आदि महावाक्य का उपदेश देते हैं तब श्रवण के अनंतर मनन निदिध्यासन आदि द्वारा हृदयंगम करता है, तब जाकर कहीं अपरोक्ष ज्ञान होता है।

प्रश्न उठता है कि इतने झंझट और क्लेश उठाकर ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता ही क्या है? उत्तर-इसलिए कि बिना ऐसे ज्ञान के दुखों की आन्त्यन्तिक निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति रूप मोक्ष संभव नहीं है। प्रश्न-क्या इसके लिये कोई प्रमाण है? हाँ अवश्य है-गुरुणांगुरु परम गुरु नानक देव जी का वचन है-

मुकित नही बिदिआ बिगिआनि (पन्ना **903**)

अर्थात् सम्यक ज्ञान, यानि ज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती तथा श्रुति भी इसी बात को कहती है ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः भाव कि बिना अभेद ज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है।

तपःपत कृशकाय एक वैदिक ऋषि तो प्रतिज्ञा करते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान के सिवा आत्म कल्याण के लिये दूसरा कोई उपयुक्त साधन नहीं है। शुक्ल यजुर्वेद में महर्षि कहते हैं-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेवबिदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽप्रयनाय।

भावार्थ–मैं इस महान पुरुष आनंदस्वरूप आत्मा को प्रत्यक्ष रूप से स्वाभिन्नतया जानता हूँ जो अज्ञान रूप अंधकार से अति दूर, सूर्य के समान स्वयं प्रकाश है, ज्योति स्वरूप है। उस आत्मतत्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य दुःख और भय आदि का कारण अज्ञान रूप मृत्यु पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकता है, शाश्वत् आनंदस्वरूप कैवल्य प्राप्त करने का अपरोक्ष आत्म-ज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है। शाश्वत् आनंद स्वरूप परमपद की प्राप्ति के लिए गुरू अर्जुन देव जी भी प्रत्यक्ष दर्शन को ही कारण मानते हैं–

अनदो अनदु घणा मै सो प्रभु डीठा राम।।
चाखिअड़ा चाखिअड़ा मै हरि रसु मीठा राम।। (पन्ना **452**)

परंतु यह याद रखने की बात है कि आनंदसागर में, इस नित्यसुख स्वरूप शांत सागर में डुबकी लगाना तभी संभव है जब साधक अपने शरीर की इंद्रियों और चंचल मन के ऊपर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर ले। यह एक अकाट्यसत्य है कि जितना ही कोई मन, वाणी आदि पर कंट्रोल (नियंत्रण) कर ले उतना ही वह सुखी है और समाज में सम्मानित हो सकता है, उसी के हृदय-मंदिर में आत्म ज्ञान का प्रकाश हो सकता है। पावन गुरुवाणी कहती है–

दस इन्द्री करि राखै वासि।। ता कै आतमै होइ परगासु।। (पन्ना **236**)
जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहूं गुरमुखि जाना।। (पन्ना **219**)

के अनुसार यह इंद्रियादि पर विजय पाना कठिन काम है, अतः करोड़ों में कोई इस खेल में विजय पा सकता है। गुरु अर्जुन देव जी फुरमाते हैं–

इंद्री जित पंच दोख ते रहत।। नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस।।
(पन्ना **274**)

चाहने वाला वह मुनि-महात्मा जिसने अपने मन, बुद्धि एवं अति प्रबल इंद्रियों को जीत लिया है और जिसकी इच्छाएँ निवृत्त हो गई हैं, जिसने क्रोध आदि को परास्त कर दिया है, वह सदा मुक्त एवं सुखी है।

आगे महाराज ने कहा कि विस्तार भय से भाषण के इस अंश को हम यहीं विराम देते हैं।

अब मुझे एक बात आपसे और कहनी है, वह यह है कि काल का चक्र तेज़ रफ्तार से चल रहा है। अपने तीव्र वेग से चलता हुआ समय किसी की परवाह नहीं करता। कोई उसके साथ चल सके तो भली बात, वह आगे बढ़ जाएगा और जो रुकने की भूल करेगा वह उखड़ जायेगा। जो समय का अनुसारी होकर चलेगा, उसकी उन्नति में कोई अड़चन नहीं आएगी। जो सुस्ती की नींद में ऊँघता रहेगा, उसे परेशानियां उठानी पड़ेंगीं।

आज का ज़माना संगठन का ज़माना है। दुनिया की कौमें आज श्रोणि-बद्ध होकर अर्थात् सुसंगठित होकर आगे बढ़ रही हैं। सब किसी ने अपनी-अपनी सोसाईटियाँ कायम कर ली हैं पर जिनकी सोसाईटी में जितना अधिक अनुशासन है, जिस संस्था में जितना कठोर अनुशासन है, जितनी कठोरता के साथ अनुशासन का पालन कराया जाता है, वह संस्था उतने ही तीव्र वेग से उन्नति के शिखर की ओर आगे बढ़ती है। अतः हमें भी चाहिए कि हम भी अपने अंदर अनुशासन में चलने का स्वभाव बनाए या अनुशासन में चलने का अभ्यास करें। अगर हम अपनी संस्था में अनुशासन लाने में सफल हो गए तो हम भी किसी से पीछे नहीं रहेंगे।

एक बात हम आपसे और कहना चाहते हैं। वह यह है कि हमारा दुनिया के प्रति भी कर्त्तव्य और अपना परम-कर्त्तव्य यानि संतों का कर्त्तव्य भजन सिमरन, सेवा, ईश्वर चिंतन, सदाचार, सादगी और संतोष वृत्ति को धारण करना।

भजन चिंतन तो हम जानते हैं कि अमृतसरी महात्मा, गुरु रामदास की कृपा से बहुत करते हैं

उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रित सरि नावै।। (पन्ना **305**)

के अनुसार स्नान, ध्यान और पूजा-पाठ, विधि-विधान के अनुसार करते हैं।

यह ठीक है, स्तुत्य है, काबिले तारीफ है पर जिस देश का अन्न, जल, फल आदि खाकर हम पुष्ट होते हैं, जिस देश की हवा पानी से जीकर हम भजन चिंतन करके अगली दुनिया को संवारते हैं, उसी तरह इस दुनिया के प्रति इस देश की जनता के प्रति भी हमारा कुछ कर्त्तव्य है। वह कर्त्तव्य हम जनता की सेवा करके ही पूरा कर सकते हैं। यह ठीक है कि अमीरों को आपकी सेवा की जरूरत नहीं है। पर हमारे देश में तो गरीबों की संख्या ही ज्यादा है, अतः हमें गरीबों की सेवा की ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

कुछ लोग भगवान को खोजते हैं, गिरि, कंदराओं में, और कुछ ढूँढते हैं उन्हें पर्वत श्रेणियों के ऊँचे शिखरों पर, कोई तलाशते हैं रत्न जड़ित मंदिरों में, और कोई उनकी तलाश करते हैं मंदिरों के घन्टा घड़ियाल और झांज आदि के घनघोर शोर में, सर्वत्र पूर्ण होने से वे होंगे वहाँ भी, मगर नित्यनिवास तो उनका है गरीबों की झोपड़ियों में, वहाँ प्रसन्नता से निवास करते हैं। यही कारण है कि कबीर, नामदेव, तुकाराम और रविदास आदि की झोंपड़ियों में प्रत्यक्ष दर्शन देते रहे हैं, पर किसी अमीर की अटारी में किसी ने देखा है उनको ?

हाँ ! रत्न जड़ित मंदिरों और ऊँची अटारियों में लक्ष्मी का निवास तो निस्संदेह माना जा सकता है, पर भगवान का नहीं, कारण लक्ष्मी श्रृंगार और विलास प्रिया है, पर प्यारे प्रभु तो प्रेम के पुजारी हैं। गरीबों की सेवा हम कई प्रकार से कर सकते हैं यथा बीमारों को दवादारू देकर, भूखों को अपने लंगरों से भोजन खिलाकर और अनपढ़ लोगों को साक्षर बना कर, कुछ धार्मिक शिक्षा देकर हम जनता के प्रति अपना जो कर्त्तव्य है उसे भली प्रकार पूरा कर सकते हैं।

सद्धर्म, भगवत् भक्ति, और सदाचार के प्रचार से उनका आचार-विचार सुधार कर अमीरों की सेवा भी कर सकते हैं।

इतना कहते हुए महाराज की नज़र भोजन बनाने वाले संतों पर पड़ी जो

रसोई के काम से खाली होकर सभा में आ बैठे थे, तो आपने कहा कि भंडारियों की यहाँ उपस्थिति सूचित करती है कि भोजन तैयार हो चुका है। अतः हम भाषण को यहीं विराम देते हैं।

इतना कह कर आपने –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकशिचद्दुःख भाग्भवेत्।

का आशीर्वाद देते हुए भाषण समाप्त किया और संतों के साथ भोजन पाने को चले गए।

भोजनोपरांत महंत रत्न सिंह जी ने महाराज का उचित सेवा सत्कार किया, और सब महंतों ने अपने नेता महंत रत्न सिंह जी और बाबा बुड्ढा सिंह जी को सत्संग का सुअवसर प्रदान करने के लिए धन्यवाद दिया और महंत रत्न सिंह जी ने अपनी सफेद घोड़ी वाली बग्घी पर बिठाकर महाराज को डेरा ठाकुरां में पहुँचाया। ❑

तरंग 18

गुण ग्रहण

संत आत्मा सिंह जी अपने गुरु महापुरुष महंत बुड्ढा सिंह जी के साथ चलकर और पास बैठकर उनके वार्तालाप और संभाषणों को ध्यानपूर्वक सुनते रहते। किसी के साथ मुलाकात के समय जो कुछ वे कहते और उनकी उक्ति के उत्तर में दूसरा जो कुछ कहता सब को हृदयंगम करते जाते थे। महाराज के पूर्वोक्त भाषण को तो इन्होंने बहुत सावधानी से एक चित्त होकर सुना था और संक्षेप में मुझे कई बार सुनाया था पर मैंने तो पहली ही बार यानि संवत् 2002 में ही मुख्य बातें नोट कर ली थीं।

यह कहना और भी ज्यादा ठीक होगा कि संत आत्मा सिंह जी बाबा बुड्ढा सिंह जी के मुखारविंद से निकली हुई समयानुकूल बातें सुनकर और दूसरों के प्रति उनके यथायोग्य व्यवहार को देखकर ही व्यवहार तथा परमार्थ में इतने अधिक दक्ष हो गए थे। यद्यपि बाबा जी ने आपको बहुत कुछ पढ़ाया भी और कई अन्य महात्माओं से भी आप पढ़े, पर आपके जीवन को सफल बनाने में अधिक सहायता बाबा जी के योग्यतापूर्ण वार्तालाप और कुशलतापूर्ण व्यवहार आदि ने पहुँचाई। ❑

तरंग 19

ऋषिकेश में

अमृतसर में ग्यारह दिन रहकर बाबा जी ने हरिद्वार की तैयारी की तो महंत रत्न सिंह जी बग्घी लेकर डेरा ठाकुरां में पहुँच गए और कई एक प्रतिष्ठित महंतों को साथ बिठाकर बाबा जी को गाड़ी में चढ़ाने स्टेशन पर गए। आश्विन सुदी 14 चतुर्दशी संवत् 1960 को हरिद्वार होते हुए महाराज ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ आप डेरा ठाकुरां में ही रहे। कभी-कभी आप वयोवृद्ध महापुरुषों से मिलने झाड़ी में भी जाया करते थे।

शिष्टाचार और अनुशासन

यद्यपि महाराज का स्वभाव, हिमालयवत शांत एवं सागरवत गंभीर था तो भी अनुशासन पालन कराने में वे काफी कठोरता से काम लेते थे। सभी संतों के लिए प्रातः चार बजे उठना और नित्य प्रातःकाल गंगा स्नान करना अनिवार्य था। इसके बाद नित्य नियम का पाठ, बिना नागा करना होता था। शिष्टाचार में उनकी निष्ठा थी, अशिष्ट बर्ताव की उन्हें आशंका भी हो जाए तो वह क्षमा नहीं करते थे। संत आत्मा सिंह से उनका अधिक स्नेह था। उन्हें वह एक योग्यतम व्यक्ति बनाना चाहते थे क्योंकि वे उन्हें भविष्य में अपना उत्तराधिकार सौंपने का विचार पक्का बना चुके थे। अतः वे उनकी जरा-सी लापरवाही को भी माफ नहीं करते थे, जैसे-सोने को तपाए जाने पर ही उसकी कालिमा आदि खोट दूर होकर वह कुंदन बनता है। उसके गुण-दोष भी अग्नि में तपाए जाने पर ही प्रकट होते हैं। ठीक ही कहा है-

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामि कापि वा।

साँझ का समय था। एक उज्जड़ स्वभाव का साधु डेरे में आया। उसे अपने बल का बड़ा घमंड था। उसने आकर किसी को नमस्कार आदि शिष्टाचार भी नहीं किया। रौब से डपटते हुए कहा-मुझे एक कुटिया दो, मैं यहाँ एक महीना टिकूंगा। संत आत्मा सिंह जी ने नम्र शब्दों में स्पष्ट बात कह दी-स्वामी जी! यहाँ कोई कमरा खाली नहीं है। अच्छा! तुम्हारे लिए तो खाली है पर मेरे लिए नहीं है, उसने रौब के साथ फिर कहा। जी हाँ ! आप ऐसा ही समझ लीजिए, संत आत्मा सिंह जी ने उसी के स्वर में कहा। अच्छा! मैं समझने नहीं, समझाने आया हूँ, मुझे कौन निकाल सकता है यहाँ से? साधु ने निरंकुशता के साथ डाँटते हुए कहा। नवयुवक संत आत्मा सिंह को उसकी गर्वोक्ति पर क्रोध आ गया। उसने कहा-मैं ही निकालूँगा तुझे और किसने निकालना है। इतना सुनते ही वह आग बबूला हो गया, और वह धप से खाट पर बैठ गया और बोला-लो, यहाँ बैठा हूँ, किसकी मजाल है जो मुझे हटाने की हिम्मत करे। युवा आत्मा सिंह को उसका यह अभद्र व्यवहार सहन न हुआ। उसने उसे बाँह से पकड़ा और अर्ध चंद्रिका देकर दरवाजे से बाहर कर दिया। सड़क की दूसरी ओर स्थित मकान तक धकेलता हुआ ले गया और वहाँ पटक कर वापस आ गया। फिर उस उज्जड़ ने कभी आने की हिम्मत न की। उसका तो फिर पता नहीं चला कि कहाँ गया पर संत आत्मा सिंह जी घूमने के लिए गंगा की ओर चले गए। इस घटना के बाद महाराज आए, उन्होंने सारी बात सुनी तो वे बहुत नाराज हुए। सूर्यास्त के अनंतर संत आत्मा सिंह आए तो उन्हें देखते ही महाराज ने क्रोध पूर्ण ढंग से कहा-आत्मा सिंह, तुमने धक्के मारकर साधु को निकाला है। संत आत्मा सिंह ने सारी घटना यथावत् कह सुनाई। सारी बात सुनकर महाराज ने कहा-अच्छा तुमने यह अभद्र व्यवहार किया है, जो संत मर्यादा के विरुद्ध है, अतः अभी मकान से बाहर हो जा। संत आत्मा सिंह ने महाराज के चरणों में

गिरकर कहा-महाराज ! मुझ से गलती हो गई, क्षमा कर दो। महाराज ने डाँटते हुए कहा-तुम हमारी प्रतीक्षा कर लेते तो हम आकर उसे समझा-बुझाकर निकाल देते। उस उज्जड आदमी के साथ तूने भी उज्जडों जैसा ही अभद्र बर्ताव किया इसलिए तुझे सजा भुगतनी पड़ेगी, तुझे क्षमा नहीं किया जा सकता, इसी वक्त बाहर हो जा मकान से। गुरुदेव की नाराजगी देख आत्मा सिंह की आँखों में आँसू भर आए और महाराज के चरण छूकर जो आज्ञा, कहते हुए बाहर चले गए। ठीक ही कहा है गुरुवाणी में-

गुर पीरां की चाकरी महां करड़ी सुख सारु।। (पन्ना **1422**)

और अन्य विचारवानों ने भी कहा है-

सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

संत आत्मा सिंह जी इन उक्तियों पर विचार करते हुए और ''आज्ञा सम नहीं साहिब की सेवा'' की उक्ति पर अमल करते हुए, सामने आँवले के पेड़ के नीचे जा बैठे और गुरु-मंत्र का जाप करते हुए आखिर निंद्रा देवी की सुखद गोद में सो गए।

बादल की गड़गड़ाहट की आवाज से आँख खुली तो देखा कि बूँदाबाँदी हो रही है। बादल तो हवा से टल गया पर पवन का गमन लगातार जारी रहा, उससे सर्दी तो महसूस होती रही पर वह असहन नहीं थी। प्रभात हुई तो महाराज ने संत संतोष सिंह से कहा-पता है कुछ आत्मा सिंह का तुझे? नहीं महाराज! मुझे तो मालूम नहीं कि कहाँ हैं। संत संतोष सिंह ने सहमी सी आवाज में उत्तर दिया अच्छा, बाहर जाकर तलाश करो कि कहाँ है वह, महाराज ने उसे आदेश दिया। संतोष सिंह बाहर निकला तो, गंगा-स्नान करके आते हुए संत आत्मा सिंह जी पास ही दिखाई दिए। संतोष सिंह ने हर्ष व्यक्त करते हुए कहा-अच्छा हुआ मिल गए, महाराज ने तुम्हें अभी याद किया था।

संत आत्मा सिंह ने जाकर दंडवत प्रणाम करते हुए अपराध के लिए क्षमा

माँगी। महाराज ने उसे समझाते हुए कहा-अच्छा भविष्य में किसी साधु का अनादर नहीं करना और पूछा कि तुम्हारा गला भारी-सा मालूम होता है क्या बात है? जी कुछ सर्दी सी लग गई थी संत ने आँखें नीचे करते हुए कहा। अच्छा तब तो सिर में दर्द भी होगा? संतोष सिंह इसे चाय बनाकर पिला दो, ठीक हो जाएगा। संत संतोष सिंह ने संत संता सिंह से आनंद भैरव की दो गोलियाँ लेकर चाय के साथ दे दीं। पसीना आया और संत जी स्वस्थ हो गए। इस घटना के बाद तीस वर्ष तक संत आत्मा सिंह ने महाराज को नाराज होने का अवसर नहीं दिया।

अब तक संत आत्मा सिंह जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ भली-भाँति शुरु कर लिया था। सूक्तावलि, वैराग्य शतक, अध्यात्म प्रकाश, अध्यात्म रामायण, तुलसी-कृत रामचरित मानस आदि ग्रंथ भी पढ़ लिए थे। अब महाराज ने गीतादि प्रस्थानत्रयी पढ़ाना आरंभ कर दिया था।

यह क्रम चल ही रहा था कि आधा मार्गशीर्ष बीतने में तीन-चार दिन ही शेष थे कि कराची से दो सेवक महाराज को लेने ऋषिकेश आ पहुँचे।

फिर सिंध की ओर

आगत सिंधी श्रद्धालुओं ने, महाराज से साथ चलने का अनुरोध किया। महाराज की इच्छा जाने की नहीं थी और वह यहीं रहकर संत आत्मा सिंह जी को व्याकरण पढ़ाना चाहते थे, पर भक्तों ने उन्हें मजबूर कर दिया। एक भक्त के लड़के की शादी थी और दूसरा नव-निर्मित भवन का उद्घाटन महाराज के हाथों से करवाना चाहते थे और दोनों ने ही तारीख भी तय कर रखी थी। रिश्तेदारों को शुभ दिन और तारीख की सूचना भी दोनों परिवार भेज चुके थे। अतः आपने भक्तों का अनुरोध स्वीकार करके चलने की तैयारी की। मार्गशीर्ष सुदी 5 संवत् 1964 को आपने ऋषिकेश से कराची को प्रस्थान किया।

कराची में आपका भव्य स्वागत किया गया। आप में कुछ प्रकृति प्रदत्त

अद्‌भुत शक्तियाँ थीं। सुंदर गौर वर्ण, मधुर वाणी और विद्या का भरपूर खज़ाना आपके पास था। शादी में जितने मेहमान आए थे उनमें से अधिकांश आपके शिष्य हो गए क्योंकि शादी के समय महाराज ने वर-कन्या को जो शिक्षा दी और इसके बाद वर-वधू को जो आशीर्वाद दिया, वह इतना भावपूर्ण था कि इससे पहले लोगों ने कभी सुना नहीं था। आशीर्वाद के अनंतर माता-पिता और बंधु-वर्ग के कर्त्तव्य पर प्रकाश डाला तो वे सभी आश्चर्य-चकित रह गए। आपकी उपदेश देने की शैली आश्चर्यजनक थी।

कराची में जिस सुंदर कोठी में आपको निवास करवाया गया था, वह स्नान, शयन आदि की सभी सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण थी। उसमें आपके अभिभाषण का भी प्रबंध था। आपकी अद्‌भुत कथा सुनने के लिए इतने लोग आने लगे कि बैठने के लिए जगह नहीं मिलती थी। अत्यधिक भीड़ के कारण श्रोताओं को कष्ट होता था अतः भाषण के लिए अलग मकान लिया गया। इस बार आपका इतना प्रभाव हुआ कि शहर के बड़े-बड़े अमीर, सेठ साहूकारों के अतिरिक्त बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर और जजों तक ने आप से गुरु-दीक्षा ली। साल के आखिरी दिनों में सक्खर के प्रेमियों ने आपको कराची छोड़कर अपने साथ चलने के लिए मजबूर कर दिया। उनके प्रेम में बंधे सक्खर पधारे। वर्ष के आरंभ में चैत्र के महीने

चेति गोविंदु अराधीऐ होवै अनंदु घणा।। (पन्ना **133**)

की पहली कथा सक्खर में की। यहाँ भी आपके बहुत से शिष्य बन गए। अब आप हरिद्वार जाकर बैसाखी का स्नान करना चाहते थे, पर फिर भी तीन माह तक प्रेमियों ने जाने नहीं दिया। श्रावण के शुरू में कुछ प्रेमी आपको शिकारपुर ले गए। संवत् 1965 की दीवाली आपने यहीं मनाई। यहाँ से हैदराबाद के प्रेमी आकर ले गए। यहाँ पाँच माह तक आपने अमृत वर्षा की। फाल्गुन के मध्य

आप हरिद्वार आ गए। यहाँ दस-बीस दिन बिताकर ऋषिकेश पहुँच गए। वहाँ संत आत्मा सिंह को पंचदशी आदि वेदांत के कई ग्रंथ पढ़ाए। कुछ दिन आराम किया और संतों को पढ़े हुए ग्रंथों को मनन करने की आज्ञा दी। कुछ दिन आराम करने के बाद सक्खर वालों की विनती स्वीकार करके संवत् 1966 की दीवाली पर सक्खर चले गए।

आपके अंदर प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देने की अद्‌भुत क्षमता थी। किसी का कैसा भी जटिल प्रश्न हो यह महापुरुष उचित उत्तर देकर प्रश्नकर्ता का संदेह दूर कर उसे संतुष्ट कर देते थे। एक बार टोपनदास वगैरा भक्त और कई एक जज, वकील पढ़े-लिखे लोग आपको और यहाँ के अति प्रतिष्ठित एक महंत महोदय को नौका में बैठाकर दरिया की सैर कराने ले गए। यहाँ बैठे हुए एक वकील ने धर्म संबंधी कोई प्रश्न किया तो वे स्थानीय महंत महोदय जो अच्छे पढ़े-लिखे थे, प्रश्न का उत्तर देने लगे तो टोपनदास ने कहा-महाराज! आप कष्ट न करें, हम अपने महाराज के मुखारविंद से ही उत्तर सुनना चाहते है। तब आपने संक्षिप्त शब्दों में ही यथार्थ उत्तर देकर सवाल करने वालों की तसल्ली कर दी। जज, वकील आदि आपके ज्ञान की गंभीरता देखकर हैरान हो गए। आपका उत्तर देना ऐसा लग रहा था, जैसे ज्ञान-रत्नों से परिपूर्ण कोई योगी, महर्षि अपने विद्यार्थियों को कोई रहस्य की बात समझा रहे हैं। यह देखकर उनकी इतनी श्रद्धा हुई कि उन सब ने महाराज से उपदेशामृत पान किया और तृप्त हो गए।

सक्खर में तीन माह रह कर आपने बहुत लोगों को सत्यधर्म की शिक्षा-दीक्षा दी और कई श्रद्धालुओं को जिन्होंने अमृत छकने की अभिलाषा की थी उन्हें अमृत पान कराया। बीसियों लोगों के घरों में श्री अखंड पाठ आदि महानुष्ठान कराए। इसी दौरान कराची से कई एक भक्त आपको कराची ले

जाने के लिए आ गए। सक्खर वालों की अभिलाषा थी कि महाराज और कुछ दिन यहीं दर्शन दें पर कराची वालों के आग्रह से आपने चलना स्वीकार कर लिया तो कुछ सक्खर वाले प्रेमी भी साथ कराची गए। यहाँ कराची वालों ने हर्षोल्लास के साथ आपका स्वागत किया। कथा आदि आरंभ करने से पहले ही सक्खर वालों को लौट जाना था इसलिए उन्होंने कराची वालों के साथ विचार किया कि ऋषिकेश में आश्रम बनाने के लिए महाराज से प्रार्थना की जाए क्योंकि हमारे गुरु दूसरों के मकानों में जाकर रहें, इसमें हमारी हानि है। हमारे लिए नमोशी की बात है। ऐसा हो जाने से हमें भी तीर्थ स्नानादि के समय रिहायश आदि की सुविधा रहेगी। कराची वाले तो पहले ही सोच रहे थे। सो दोनों शहरों के प्रेमियों ने मिलकर महाराज के चरणों में साग्रह विनय की, कि ऋषिकेश में एक अच्छा संत आश्रम आपकी रिहायश के लिए बनाया जाए। यह सुनकर महाराज ने कहा कि हमारे लिए तो एक झोंपड़ी ही काफी है और यह भी ये संत लोग बना लेंगे तब लोगों ने फिर आग्रह पूर्वक कहा-कि नहीं महाराज, आप सक्खर, कराची वालों के पूज्य गुरुदेव होकर, टूटी-फूटी झोपड़ियों में रहें, यह हमारे लिए लज्जा की बात है। आश्रम तो अवश्य बनाना है। तो महाराज ने कहा कि, भाई! महापुरुषों के वचन हमें आज्ञा नहीं देते, वे कहते हैं-

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए।।
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए।। (पन्ना **1380**)

यथा-

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चितु।।
मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मितु।। (पन्ना **1380**)

यथा-

रंग तमासे बहु बिधी चाइ लगि रहिआ।।
चिति न आइओ पारब्रहमु ता सरप की जूनि गइआ।। (पन्ना **70**)

इत्यादि अनेक वचन झूठे आडंबरों से मना ही करते है। पर प्रेमी पीछा छोड़ने वाले नहीं थे। उन्होंने फिर दृढ़ इरादे से कहा-महाराज, जहाँ तक छोड़ जाने की बात है, बहुत ठीक है पर झोंपड़ियों वाले भी तो छोड़ कर चले ही गए। चले तो सबको ही जाना है, बल्कि झोंपड़ियों वालों को बनाने करने के नित्य नए-नए क्लेश उठाने पड़ते हैं। आश्रम बनाने का कार्य तो एक ही बार होगा। अतः इतनी विनती तो आपको अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी। तब महाराज ने कहा कि तुम लोग नहीं मानते तो कुछ ठहरना पड़ेगा और सोचना पड़ेगा। किसी भी काम को अति शीघ्र नहीं करना चाहिए।

अविवेक ही सब विपत्तियों का स्थान है। अतः इसके सब पहलुओं पर विचार करने की जरूरत है। प्रेमियों ने पुनः अपना दृढ़ विचार दोहराया और कहा कि हमने सब पहलुओं पर विचार कर लिया है। अब केवल आपकी स्वीकृति की ही देर है। तब महाराज ने कहा तो आप लोगों को ऋषिकेश चलकर जगह तलाश करनी पड़ेगी। अगर कोई जमीन पसंद आ गई तो बनवा लेना।

सब भक्तों ने खुशी मनाई कि एक प्रकार से महाराज की आज्ञा मिल ही गई है। संवत् 1966 का सारा साल महाराज ने सिंध ही में गुजारा और आखिर

चेति गोविंदु अराधीऐ होवै अनंदु घणा।। (पन्ना **133**)

की कथा करके संवत् 1967 की बैसाखी का स्नान हरिद्वार में करके दो (2) बैसाख को ऋषिकेश पहुँचे। ❑

तरंग 20

ऋषिकेश पुनरागमन

बैसाख, जेठ और आषाढ़ आदि तीन मास में संत आत्मा सिंह आदि संतों को श्री जपु जी साहिब, अर्थों सहित पढ़ाया। संत राम सिंह और संत विश्वेश्वर सिंह को अमरदासी उपनिषदें पढ़ाईं। श्रावण के शुरू में मथुरा वृंदावन की यात्रा को चले गए। वहाँ एक मास, भगवान की चरणांकित ब्रज भूमि के प्राकृत सौंदर्य की छटा देखकर, राजस्थान के संत आश्रमों की यात्रा करते हुए कार्तिक में कुलायत के मेले पर पहुँच गए। राजस्थान का यह प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ बहुत से साधु महात्मा भी यात्रा करने जाते हैं। यहाँ से चलकर महाराज हरिद्वार होकर ऋषिकेश पहुँच गए। संत आत्मा सिंह ने सिंध से आई हुई चिट्ठियां दिखलाई तो महाराज उनके अनुसार आधा मार्गशीर्ष बीतने पर कराची पहुँच गए। यहाँ फिर आश्रम-निर्माण की बात चली। भक्तों ने महाराज से अनुरोध किया कि गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी कहीं अन्यत्र जाने का कष्ट न करना। महाराज ने मुस्कराते हुए कहा-अब तो तुम्हारी माँग स्वीकार है, ''अग्रे ईश्वरोवेति''। यहाँ आप सक्खर, शिकारपुर आदि में सद्धर्म गुरुवाणी का प्रचार करते हुए 27 चैत्र संवत् 1969 को हरिद्वार पहुँच गए। बैसाखी का स्नान करके आप ऋषिकेश पधारे।

❑

तरंग 21

आश्रम के लिए परामर्श

ऋषिकेश में आकर महाराज ने कुछ विरक्त महापुरुषों-पंडित नारायण सिंह जी, पंडित मूल सिंह जी प्रपंची, पंडित हरि सिंह जी कथा वाले, सोम जी महाराज, गुरु जी महाराज और पंडित गणेशा सिंह जी अवधूत, आदि से विचार विमर्श किया तो सब महापुरुषों ने सहमति दी कि आश्रम बन जाए तो अच्छा है। यहाँ निर्मल संप्रदाय का कोई आश्रम नहीं है। जो संत सर्दी के कारण यहाँ कष्ट मानते हैं, या वृद्ध हैं उन्हें सर्दी के मौसम में कष्ट होता है, ऐसे महात्माओं के लिए आश्रम बनाया जाना उचित है। संत आत्मा सिंह से महाराज ने कहा- क्यों भाई तेरी क्या राय है। क्या आश्रम बनाया जाए ? आत्मा सिंह ने नेत्र नीचे करके कहा- महाराज सर्व समर्थ हैं जो भी निर्णय करेंगे वह उचित ही होगा, मैं तो आपकी आज्ञा में चलने वाला यंत्र हूँ। जैसे महाराज चलाएंगे वैसे चलता जाऊंगा। महाराज के सामने कोई राय कायम करना योग्यता और अधिकार के बाहर की बात है, अतः अनुचित है। तो अच्छा, यदि निर्माण कार्य आरंभ कर दें तो तुझे ही सब कार्यभार संभालना होगा, महाराज ने अपना निश्चय बताते हुए कहा। काम करने की जितनी सामर्थ्य आप प्रदान करेंगे उसके अनुसार मैं आज्ञा का पालन अवश्य करूंगा, आत्मा सिंह का विनीत उत्तर था।

अब सब की पूर्ण सहमति हो गई। इसके 14 दिन के बाद सक्खर, कराची से प्रतिनिधि भी पहुँच गए। संत नत्था सिंह के बाड़ा के पास, गंगा जी के अतिसंनिकट खाली पड़ी जमीन सबको पसंद आ गई। सबकी सहमति से यह

खाली पड़ी भूमि खरीद ली गई। संत नत्था सिंह का बाड़ा भी संत मंगल सिंह जी ने बमय (साथ) अपनी कुटिया के बाबा जी को सौंप दिया, दोनों जगह की रजिस्ट्री भी हो गई। संत मंगल सिंह जी बाड़ा और कुटिया सौंप कर स्वयं उत्तरकाशी चले गए। यह महात्मा बाबा बुड्ढा सिंह जी के गुरुभाई लगते थे।

आधारशिला

संवत् 1969 का यह पावनतम दिन था जब जगद्वंदनीय श्री सोम जी महाराज के करकमलों द्वारा गुरु नानक नाम की धवल-कीर्ति का सौरभ, दिग्दिगंत में फैलाने वाले इस निर्मलाश्रम रूपी कल्पतरु का शिलान्यास किया गया।

पहले गुरु मंदिर और दो कमरे बनाए गए और चार दीवारी कर दी गई। निर्मल महात्मा और गुरु-चरणानुरागी प्रेमियों के लिए यह अति हर्षोल्लास का दिन था।

चार दीवारी के अंदर कुछ झोंपड़ियां संत महात्माओं के निवास के लिए तैयार करा दी गईं। साथ ही साथ संतों के लिए अन्न क्षेत्र भी जारी कर दिया। इतना काम तो तुरंत कर दिया गया। आगे के लिए नक्शे के अनुसार निर्माण-कार्य जारी रहे, इसका सुंदर प्रबंध कर दिया गया। यानी ईटें, चूना और इमारती लकड़ी भी थोड़ी बहुत खरीद ली गई। ऐसा सुचारू प्रबंध कर दिया कि इस निर्मली नदी का प्रवाह अखंड रूप से जारी रहे। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि यह दिन, महंत बुड्ढा सिंह जी के भव्य भाग्य के सूर्योदय का पहला दिन था, और संत आत्मा सिंह के भाग्य की यह सुनहली प्रभात थी।

आज के दिन से महंत बुड्ढा सिंह जी जिधर भी गए उनकी धवल कीर्ति की उज्ज्वल पताका ऊँची ही उड़ती गई। छोटा-बड़ा, गरीब-अमीर, सेठ-साहूकार, सरदार सभी का सिर महाराज की चरण-पादुका पर बरबस झुक जाता था। अति चंचल लक्ष्मी भी विष्णु भगवान के समान शांत गंभीर स्वभाव वाले महंत

बुड्ढा सिंह जी के चरणों की चेरी बन गई थी।

यह भी एक प्रिय सत्य है कि जब से संत आत्मा सिंह जी महंत बुड्ढा सिंह जी के संपर्क में आए तभी से उनके भाग्य का सितारा चमका और इसका तेज दिनों दिन तीव्र होता गया। पर इसके साथ यह भी उतना ही सत्य है कि जब से संत आत्मा सिंह जी, महाराज की चरण-शरण में आए, इनकी तकदीर की तसवीर के धुंधले रंगों पर निखार आता गया और चमक भी बढ़ती गई। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि दोनों महात्माओं का प्रारब्ध परस्पर सापेक्ष्य था, जो एक दूसरे के सहारे से तीव्रतर होता गया। ठीक वैसे ही जैसे स्वतंत्र बहती हुई जल की दो धाराएं एक स्थान में संगम से, शक्तिशाली महानद की महिमा को पा लेती हैं। बस इसी प्रकार इनकी भाग्य धाराएं मिलकर महा महिमामय बन गई। अस्तु कुछ भी हो, पर

दिनु दिनु चड़ै सवाइआ नानक होत न घाटि।। (पन्ना **300**)

के गुरुवचनानुसार यह प्रिय सत्य तो सूर्य के समान देदीप्यमान है कि इन भाग्यवान गुरु शिष्यों का यशोधन उत्तरोत्तर उज्ज्वलतम होता गया, विकसित होता गया।

❑

तरंग 22

शुभारंभ

महानतम कार्य का शुभारंभ हो चुका था। इसके प्रबंध की ओर ध्यान देना आवश्यक था। इस सबके बावजूद, अपनी साधना और शिष्यों के अनुशासन के प्रति बाबा जी सदा सजग रहते थे। सूर्यास्त के साथ सब संतों को डेरे में उपस्थित हो जाना अनिवार्य था। संध्या के समय सब संत एक साथ बैठकर रहिरास साहिब का पाठ करते थे। महाराज जी बीच में बैठते थे। नंबर वार सब संतों को जुबानी पाठ सुनाना पड़ता था। जहाँ गलती होती वहाँ टोक कर महाराज ठीक करा देते थे। संतों का पाठ स्पष्ट और शुद्ध होता जाता था। भोजनानंतर सब संत महाराज के पास बैठ जाते। महाराज सब संतों से, पढ़ाए गए ग्रंथों में से प्रश्न पूछते। जहाँ गलती होती वहाँ ठीक करा देते थे। नाना प्रकार की कथा कहानियां जो मानव जीवन को पवित्र और सफल बनाने में उपयोगी होती थीं, सुनाते थे। भजन, चिंतन संबंधी रहस्य की बातें बताते जाते थे। दस बजे रात को सब अपने-अपने आसनों पर जाकर कुछ काल भजन सिमरन कर सोते थे। सूर्योदय के दो घंटे पहले सबको उठ जाना पड़ता था। कुछ भजन चिंतन के अनंतर गंगा-स्नान कर नित्य नियम का पाठ अवश्य करना पड़ता था। इस प्रकार सब संतों को सदा साधना में संलग्न रहना होता था।

कभी-कभी सबको बैठाकर शांति से समझाया करते कि देखो भाई ! तपःपूत, साधना संलग्न, नित्य निरंतर ब्रह्म-चिंतन परायण, महात्यागी, वीतराग, भजनानंदी, विरक्त, महापुरुषों की लीला स्थली है। यह ऋषिकेश,

ब्रह्मवेता मुनिजनों के चरण स्पर्श से पवित्र हुए यहाँ के कण-कण में अध्यात्म लोक की कितनी विभूतियां छिपी हैं, यह बताना किसी के लिये संभव नहीं है। इसलिए यहाँ रहकर चरित्र निर्माण, भजन, पूजन, सेवा स्मरण करना, शरीर इंद्रियादि और मनवाणी पर नियंत्रण रखना, काम क्रोधादि पशु-धर्मों का त्याग करना, किसी के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करना, बड़ों का आदर सत्कार करना, स्थान में आए अभ्यागत् की आदर के साथ सेवा करना सबका सर्व प्रथम कर्त्तव्य है।

सुभ चिंतन गोबिंद रमण निर्मल साधू संग।। (पन्ना **522**)

के अनुसार, ईश्वर चिंतन करना, भले बुरे सबका शुभ चिंतन करना, किसी की बुराई का चिंतन कभी नहीं करना और संतोष वृत्ति धारण करना, अध्यात्म महल पर पहुँचने का प्रथम सोपान है। जन्नत का जीना है या रूहानियत की राह पर पहला कदम है, इत्यादि सद् उपदेशों को अनेक विध प्रमाणों और कथाओं के द्वारा दोहराते थे।

शांत और गुरु गंभीर स्वभाव के होने पर भी अनुशासन पालन कराने में वज्रसमान कठोर थे। आश्रम के नियमों के विरूद्ध आचरण करने वालों को अपराध का दंड भोगना ही पड़ता था। हाँ ! अपराध के अनुसार दंड कठोर और कोमल हो सकता था। संत संतोष सिंह स्वभाव के अनुसार कभी-कभी किसी के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग कर बैठते थे और साथ ही प्रमादवश अनुशासन पालन में भी शिथिलता दिखाते थे। उसे अपराध के अनुसार डाँट-डपट कर और कभी कुछ सजा देकर आदत सुधारने हेतु हिदायत कर देते थे। पर एक दिन संध्या-समय विलंब से आने पर इतना बिगड़े कि संत आत्मा सिंह और अवधूत जयमल सिंह के विनय करने पर भी उसे माफ नहीं किया और तुरंत आश्रम से बाहर निकल जाने का हुक्म दिया और उसे तुरंत रात को ही आश्रम

से बाहर हो जाना पड़ा। उसे छः मास इसी प्रकार इधर-उधर घूमकर बिताने पड़े। छः मास के बाद आकर क्षमा माँगी तो अवधूत जयमल सिंह की सिफारिश पर उसे आश्रम में रहने की आज्ञा मिल सकी।

वह परम दयालु थे, पर अनुशासन हीनता को बहुत बड़ा अपराध मानते थे, इसीलिए अनुशासन भंग के अपराधी को क्षमा मिल सकनी असंभव थी। दंड देते समय उनके स्वभाव की कोमलता नामालूम कहाँ विलीन हो जाती। इस महामानव के स्वभाव की कोमलता, मधुरता एवं कठोरता को देखते हुए, संस्कृत की एक सूक्ति का स्मरण हो आता है। यथा-

बज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।।

एक ओर तो आप स्वयं साधना रत रहकर अपने शिष्यों और सहचर संतों में यम-नियम सत्-संतोष और निरंतर ईश्वर-चिंतनादि दैवी संपत् के सद्गुणों का संचार करते हुए आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे थे, दूसरी ओर सत्साहस और अनवरत परिश्रम से, स्वावलंबी बनकर जीने का उपदेश देने के लिए निर्माण कार्य को भी तेजी से चला रहे थे। कठिन परिश्रम से साध्य निर्माण कार्य के अग्रणी थे- अति-बलवान जवान संत आत्मा सिंह जी, तथा आध्यात्मिक साधना के नायक थे- अवधूत जयमल सिंह जी। स्वयं महाराज दोनों के कार्य का निरीक्षण करते थे।

इस प्रकार श्रेय एवं प्रेय यानि अध्यात्म-उन्नति और लौकिक अभ्युदय का कार्य सुचारू रूप से चल रहा था। इस तरह आठ-नौ महीने यहाँ लगातार रहकर बिना नागा अविश्रांत परिश्रम से स्थान को इस योग्य बना दिया कि सिंध आदि के दौरे से लौटकर फिर और जगह न तलाश करनी पड़े। इसी में ही सब के समुचित निवास का उचित प्रबंध हो सके।

❑

तरंग 23

पुनः सिंध की ओर

रोड़ी सक्खर और कराची के भक्तों की ओर से दर्शन देने के लिए बहुत-सी चिट्ठियां आ रही थीं। सो आपने सिंध के सफर की तैयारी कर ली। पर इसके पहले ही देहरादून के प्रेमियों के आग्रह से आपको देहरादून जाना पड़ा। वहाँ दो दिन के सत्संग के बाद 2 पौष संवत् 1969 को कराची पहुँच गए। इस बार महाराज ने गुरुवाणी का प्रचार बहुत किया। प्रेमियों को मोक्ष-प्रदान अमृतवाणी श्री जपु जी साहिब कंठस्थ कराया और जपु जी साहिब की कथा करते रहे।

इन दिनों वे कथा तो कभी-कभी करते, अक्सर प्रश्नोत्तर के रूप में ही उपदेश देते रहते थे। कभी आप गद्दी पर बैठे रहते और सिंधी भक्तगण गुरुवाणी का कीर्तन करते रहते, भजन गाते रहते। आपके मुखारविंद से गुरुवाणी, गुरु-घराने की कथा-कहानियां एवं प्राचीन ऋषि-मुनियों की विचित्र जीवनियां सुनाते रहते ताकि जनता की धार्मिक भावना को जीवित रखा जाए। आपके वचनों से लोगों को शांति मिलती थी, अतः वे सुनते अघाते नहीं थे, उकताते नहीं थे, आपके वचनामृत का पान करते हुए यहाँ पौष का महीना समाप्त हो चला था कि रोड़ी सक्खर के प्रेमी लेने आ गए। 28 पौष को आप सक्खर पहुँच गए। यहाँ आपके आने की खुशी में 29 को अखंड पाठ का प्रारंभ कर दिया।

मकर-सक्रांति में यानि माघ मास में प्रयाग संगम पर स्नान दानादि का बहुत माहात्म्य लिखा है। यह भी ठीक हो सकता है, पर असल प्रयाग तो सत्संग है। सत्संग का अर्थ सत्पुरुषों की संगति, साधु-संतों का सानिध्य यानि साधु महात्माओं के पास बैठकर सद्उपदेशों का श्रवण करना, मनन करना इत्यादि से जिज्ञासु-जनों का कल्याण होना संभव है। शास्त्रों में कहा गया है कि तीर्थ-स्नान का तो न जाने फल कब होगा पर सत्पुरुषों का सत्संग तो उनके उपदेश अमृत का पान करने से तुरंत मिलता है। यथा-

साधनां दर्शनं पुण्य तीर्थभताः ही साधवः।।
कालेन फलते तीर्थ सद्यः साधु-समागमः।।

महात्मा तुलसीदास ने भी सत्संग को ही प्रयाग और वहाँ का त्रिवेणी संगम कहा है-

मुद मंगलमय सन्त समाजू,
जिमि जग जंगम तीरथ राजू।।
राम-भक्ति जहि सुरसरि धारा,
सरसई ब्रह्माविचार प्रसारा।।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी,
कर्म-कथा रविनन्दनी वरनी।।
बढ विस्वास अचल निज धर्मा,
तीर्थराज समाजु सुकर्मा।।
सबहि सुलभ सबदिन सबदेसा,
सेवत सादर ामन कलेसा।।
बिनु सत्संग विवेक न होई,
राम-कृपा विन सुलभ न सोई।।
सठ सुधरहि सत्संगत पाई,
पारस परस कुधात सुहाई।।

गुरु अर्जुन देव जी ने तो इसे और भी अधिक महत्व प्रदान किया है-

नानकु मंगै दानु प्रभ रेन पग साधा।। (पन्ना **678**)

सांसारिक लोग ढूँढ़ते हैं-हीरे-मोती, लाल-जवाहर, सोना-चांदी, धन-संपत्ति, पुत्र-पौत्र, राज-भोग और रूप-जवानी जिनका चार दिन का भी भरोसा नहीं।

पर धन्य हैं गुरु अर्जुन देव जी जो दान माँगते हैं-संतों की चरण का। साधुओं की चरण-धूलि में अवश्य कोई करामात होगी जिससे गुरुदेव चरण-धूलि की याचना करते हैं।

इस प्रकार माघ मास की कथा 21-22 दिन तक की। यहाँ बहुत से प्रेमियों को गुरुमुखी की वर्णमाला सिखला कर गुरुवाणी का पाठ करने लायक बनाया। कथा सुनाकर खाली समय में प्रश्नों का उत्तर देते और प्रेमियों से कीर्तन व गुरु-इतिहास की किताबें सुनते रहते। इस भाँति तीन माह तक गुरुमत्-सद्धर्म का प्रचार कर संवत् 1969 की बैसाखी का स्नान करके ऋषिकेश पहुँच गए। यहाँ 5 मास संतों को गुरुवाणी तथा अन्यान्य ग्रंथों का अध्ययन करवाया। संत आत्मा सिंह जी को गीता पढ़ाई।

उदय-कालीन सूर्य की कोमल किरणें भले ही पहले-पहल सामने वाले दृश्य पर ही पड़ती हों और उसे ही प्रकाशित करती हों पर उसके अनंतर तो समस्त विश्व में फैलकर समग्र संसार को आलोकित करती हैं। इसी प्रकार बाबा बुड्ढा सिंह के सुयशरूपी सूर्य की किरणें भी सोए हुए समस्त सिंध को जगाने में समर्थ हो गयीं। हैदराबाद, शिकारपुर आदि शहरों में भी आपकी कीर्ति की महिमा के गीत सुनाई देने लगे। सब ओर से बाबा जी को बुलावे आने लग गए थे।

❑

तरंग 24

वाक्-सिद्धि

मैं हठात् यह कहने का साहस तो नहीं करता कि आप पूर्ण योगी थे, पर प्रत्यक्षदर्शियों की बताई हुई घटनाओं से निस्संदेह होकर डंके की चोट से कहता हूँ कि आप में वाक्-सिद्धि की शक्ति अवश्य थी। उदाहरण के लिए कुछ घटनाओं का दिग्दर्शन कराना उचित समझता हूँ।

संवत् 1979 की बात है-कराची वाले दीवान बूलचंद ने पुत्ररत्न के अभाव का जिक्र किया और साथ ही नम्रतापूर्ण विनय की कि केवल कृपा-कटाक्ष का आकांक्षी हूँ। आपने आर्त भक्त की दुःखपूर्ण विनती सुनकर कहा-गुरु से माँगना हो तो एक का क्या माँगना, दो माँगो। आपके आशीर्वाद से प्रभु ने कृपा की। यथा समय दो दुर्लभ रत्न प्राप्त हुए। बड़े हुए तो आपने अमृत संस्कार करके एक का नाम ईश्वर सिंह रखा, जिसने आगे चलकर वकालत से पर्याप्त धन और यश पैदा किया। दूसरे का नाम तारा सिंह रखा, उसने भी अपने कारोबार में अच्छी सफलता प्राप्त की थी।

इसी प्रकार आपके सेवक सरदार सेवा सिंह जी सिंध हैदराबाद वाले अपनी कथा सुनाया करते थे। यह सरदार नहरी विभाग में हेड-क्लर्क थे। संवत् 1985 में नहरी विभाग में एक नया एग्जिक्यूटिव इंजीनियर अंग्रेज़ नियुक्त हुआ। एक दिन उसने दीवान सेवा सिंह को कहा कि कल को हमारे साथ दौरे पर जाने की तैयारी कर लो। सेवा सिंह ने अर्ज़ (विंती) की कि हुजूर! हमारे गुरुदेव हरिद्वार से पधारे हुए हैं, बहुत कृपा होगी यदि आप और किसी क्लर्क

को सेवा में ले जाएं। अंग्रेज़ ने कहा कि नहीं तुझे ही जाना पड़ेगा। सेवा सिंह हताश होकर बाबा जी के पास आया और सब समाचार सुनाया। कहने लगा-मुझे तो दौरे पर नहीं जाना, भले ही इस्तीफा देना पड़ जाए। यह कदापि संभव नहीं कि आप के चरणरुपी कल्पतरु को छोड़कर अन्यत्र चला जाऊं। महाराज ने कहा-सेवा सिंह ! घबराने की जरूरत नहीं, गुरु महाराज अच्छा ही करेंगे। बाबा जी का अमोघ वाक्य सुनकर श्रद्धालु सेवक सेवा सिंह घर जाकर निश्चिंत सो गया। प्रातः 10 बजे कार्यालय में गया तो आफीसर ने उसे बुलाया। वह डरता हुआ पास पहुँचा कि क्या पता वह क्या हुक्म दे डाले। सामने होते ही साहब ने कहा कि सरदार बहादुर ! तुम्हें हमारे साथ जाने की जरूरत नहीं। तुम अपने गुरु की सेवा करो। सेवा सिंह ने कारण पूछा तो साहब ने बताया कि रात हमें सफेद दाढ़ी वाले बूढ़े बाबा जी मिले थे। उन्होंने कहा कि सेवा सिंह को मत ले जाना। मैं उसी समय से चकित हो रहा हूँ। इसलिए तुम को साथ ले नहीं जा सकता। हाँ पर एक बात मानो, अपने गुरु के दर्शन मुझे जरूर कराओ।

चार बजे सेवा सिंह आया और कुल हाल महाराज को सुनाया। प्रतिदिन की भाँति बाबा जी सैर को निकले। अंग्रेज की कोठी पर गए तो अंग्रेज ने दूर से ही टोपी उतार कर सलाम की और कहने लगा कि हाँ ! यही बाबा जी हैं जिनके स्वप्न में दर्शन हुए थे। अंग्रेज ने बहुत सत्कार से महाराज को कुर्सी पर बिठाया और स्वयं गलीचे पर बैठा रहा। यह घटना सेवा सिंह ने महंत आत्मा सिंह जी व संत देवा सिंह जी को स्वयं सुनाई थी।

तीसरी बात संवत् 1986 की है। उन दिनों आप कथा वार्ता इत्यादि नहीं करते थे। बहुत समय भजन-पाठ और प्रभु-चिंतन में ही बिताते थे। बाकी समय में प्रेमी भक्तों को सद्उपदेश, शिक्षा-दीक्षा आदि आसन पर बैठकर ही दिया करते थे।

दीवान जेठूमल हैदराबाद वाले के शरीर में व्याधि हो गई थी। अंडकोश पर कष्टप्रद फोड़ा निकला। डॉक्टरों ने रोग को कष्ट-साध्य कहकर ऑपरेशन करने की सलाह दी। पर साथ ही किसी किस्म की गारंटी देने में असमर्थता प्रकट की। परिवार वाले सभी घबरा गए। उसी समय बाबा जी को तार भेजकर विनती की कि दया करो ! बर्बाद हो रहे घर को बचा दो ! उत्तर में बाबा जी ने श्रद्धालु सेवकों पर विपत्ति समझ कर आश्वासन दिया कि ऑपरेशन मत कराओ।

चिंता छडि अचिंतु रहु नानक लगि पाई।। (पन्ना **517**)

नानक चिंता मति करहु चिंता तिस ही हेइ।। (पन्ना **955**)

और सगल रोग का औषद नाम के अनुसार सतनाम् श्री वाहिगुरु का नाम जपो! गुरु भला करेंगे। महाराज का तार गया तो सब को विश्वास हो गया और धैर्य आ गया। धीरे-धीरे सेठ जेठूमल तो रोग-मुक्त हो गए, पर इधर आश्चर्य की बात है कि दूसरे ही दिन बाबा बुड्ढा सिंह जी के अंडकोश पर फोड़ा हो गया, पर कुछ दिन कष्ट देकर धीरे-धीरे यह भी अच्छा हो गया। जिसने भी यह अद्भुत बात सुनी वह चकित रह गया। इस प्रकार की कई एक विचित्र घटनाएं हैं जो आपकी आध्यात्मिक शक्तियों का परिचय देती हैं।

संवत् 1966 में निर्मल भेष की एक जनरल कमेटी संगठित की गई, जिसके प्रेजीडेंट आप को बनाया गया था और 12 वर्ष तक आपने इस पद को सुशोभित किया।

गुरु-पूर्णिमा के पुण्य पर्व पर

शुभ संवत् 1969 की आषाढ़ की पूर्णमासी जिसे गुरुपूर्णिमा भी कहते हैं पर, सक्खर और कराची से बहुत से सेवकजन आ गए जिन्होंने इस पावन त्योहार पर आपके चरणों में बहुत दक्षिणा अर्पण की। बहुत से श्रद्धालु भक्तों ने मनीआर्डर द्वारा दक्षिणा भेज दी। जो आपके श्रद्धालु आए थे उन्होंने जब नव-निर्मित कमरों की मजबूती और खूबसूरती को देखा और निर्माणाधीन सुंदर

गुरु-मंदिर एवं विशाल पाकशाला को देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उनमें से बहुत प्रेमियों ने घर जाकर और माया भेजने का वचन दिया। अगले दो दिनों में सब लोगों ने वीतराग विरक्त महात्माओं, कैलाश आश्रम और स्वर्गाश्रमादि संत आश्रमों और लक्ष्मणझूला आदि भगवती भागीरथी की दिव्य दृश्यावली के दर्शन किए। इनमें बहुत से सिंध हैदराबाद और शिकारपुर के प्रेमी थे। जिन्होंने श्री बाबा जी की महिमा कानों से सुनी थी, अब आँखों से देखने की भावना से आए थे। उन्होंने विनम्र निवेदन किया कि महाराज ! हमारे शहरों के लोग भी अति उत्कंठा से आपके दर्शनों की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। अतः अब पहले हमें दर्शन देकर कृतार्थ करें।

वे सब श्रद्धालु महाराज से आने का आश्वासन लेकर सिंध को रवाना हो गए।

❑

तरंग 25

शिष्यों को उपदेश

इस बार महाराज ने गृह-निर्माण की ओर कम, किंतु शिष्यों के चरित्र-निर्माण और आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर करने की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने सब शिष्यों को बुलाया और सामने बैठाकर प्रेम के साथ हितकर उपदेश देने लगे-संतों! सुनो और कान लगाकर अच्छी तरह सुनो, तुम्हें इस बात का ध्यान रखना है कि तुम यहाँ किस लिए आए हो। तुम यहाँ व्यापार करने नहीं आए। तुम यहाँ मानव जीवन को सफल बनाने के लिए आए हो। अतः तुम्हारा मुख्य प्रयत्न उसी दिशा में होना चाहिए। सबसे पहली बात यह है कि ''अथान्या वाचा विमुन्चथ'' के अनुसार ऐसी बातें करना छोड़ देना चाहिए जो अनावश्यक हों, जिनका सभ्य-समाज में कोई मूल्य न हो, जो निरर्थक हों। व्यर्थ के बाह्याडंबर से बखेड़े ही खड़े होते हैं। अतः शास्त्र सम्मत बातें ही कहनी चाहिएं। प्रभु-भक्ति की बातें होनी चाहिएं। परस्पर प्रेम बढ़ाने वाली बातें होनी चाहिएं। मानवहित की बातें करो, महापुरुषों की सूक्तियाँ याद करो। ऐसी कड़वी बात मुँह से न निकालो जिससे किसी के दिल को ठेस पहुँचे, जिससे किसी का दिल दुखे। कड़वी तो रही दर किनारा, गुरु नानक तो फीके वचन बोलने का भी निषेध करते हैं-

नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ।।
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ।।

फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ।।
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ।। (पन्ना **473**)

जिसका अपनी ज़बान पर जितना ज्यादा वश होगा वह समाज में उतनी ही ज्यादा प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। सत्य बोलने का उपदेश भी हमें वाक्संयम की प्रेरणा प्रदान करने के लिए दिया गया है। क्योंकि संसार में सत्य बहुत कम है, हम सत्य बोलेंगे तो कम बोलने की आदत पड़ जाएगी। इस तरह अनायास ही हम वाक्-संयम रूपी गुण के अधिकारी बन जाएंगे। वेद कहता है ''सत्यं वद प्रियं वद'' तथा गुरुवाणी में बारंबार सत्य संभाषण का ही उपदेश है। झूठ बोलने की निंदा की गई है-

कूड़ी रासि कूड़ा वापारु।। कूड़ु बोलि करहि आहार।।
सरम धरम का डेरा दूरि।। नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि।।
(पन्ना **471**)

सत्य बोलने का स्वभाव दृढ़ हो जाने से वाक्संयम का गुण स्वतः आ जाएगा और वाणी के संयम से हमारी मनोवृत्ति अंतर्मुखी होने में सहायता मिलेगी और चितवृत्ति अंतर्मुखी होने से हम आत्म-चिंतन में प्रगति कर सकेंगे। अतः सत्य एवं प्रिय बोलने का पवित्र गुण धारण करो।

संक्षेप में समझना हो तो यों समझिए, झूठ मीठी शराब है जो नर्क के गहरे गड्ढे में गिराती है और सत्य मधुरतम अमृत है जो स्वर्गारोहण की स्वर्णमयी सीढ़ी है। ❑

तरंग 26

सत्य का साधन

प्रश्न-महाराज, प्रिय एवं सत्य बोलने का शुभ गुण कैसे धारण करें ? इसका साधन क्या है? समाधान-प्रिय आत्माओं, तुम परम प्रियतम परमेश्वर को पाना चाहते हो वह तुम्हें अति प्रिय है। उसको पाने के लिए ही उसकी भक्ति करते हो, उसकी वंदना करते हो। दिन रात उसका चिंतन करते हो, इसलिए कि वह आनंद निधि है, तुम्हें अति प्रिय है, यह ठीक है ? हाँ महाराज यह बिलकुल सत्य है और सोलह आने सत्य है। तो बताओ तुम उसे असत्य, अप्रिय और कड़वा बोल सकते हो ? बाबा जी ने पूछा। नहीं महाराज ! यह कैसे हो सकता है, वह तो हमारा आराध्य है। स्वयं तो क्या उसे कोई गैर भी कड़वा बोले तो सहन नहीं हो सकता, जिज्ञासुओं ने जवाब दिया। महाराज बोले-अच्छा तो यह बताओ जिस में तुम्हारा प्रिय प्रभु रहता हो जिसमें उसका निवास हो उसे कड़वा बोल सकते हो? नहीं महाराज यह भी संभव नहीं। क्यों नहीं संभव? महाराज! जैसे जिस महल में स्वयं सम्राट रहता हो तो उसे गिराने की मूर्खता कौन कर सकता है। महाराज ने कहा-बेटा ठीक कहते हो। जैसे राजा के निजी महल को गिरा कर उसका कोप-भाजन बनकर स्वयं मौत के मुँह में जाने की मूर्खता करना है, उसी तरह भगवान अंतर्यामी का मंदिर है यह शरीर। बल्कि यों कहना और भी ठीक है कि यह सारा संसार ही उसका स्वर्ण-मंदिर है। यथा-जगद्गुरु नानक का वचन है-

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु।। (पन्ना **463**)

तथा-सब घट मेरे साईयां, सूनी सेज न कोय।। के अनुसार यह सारा संसार और संसार के प्राणी भगवान के रहने का मंदिर है। ईश्वर रूपी सम्राट् के रहने का महल है। हर प्राणी का हृदय और यह शरीर है उसका कोट, इसलिए कड़वा बोल कर किसी के दिल को दुखाना भगवान के मंदिर को हथोड़े मारकर तोड़ने के समान जघन्य अपराध नहीं तो और क्या है? शिष्यों ने कहा-हाँ महाराज ! यह तो अकाट्य सत्य है। इस पर और भी कोई प्रमाण है जिससे यह परम सत्य हमारे हृदयों में भी बद्ध मूल हो जाए? यानि जड़ पकड़ जाए आपसे युक्ति युक्त और प्रमाण-पूर्ण रीति से श्रवण करके हमारा रोम-रोम हर्ष से खिल उठा है। महाराज ने कहा सुनो-जितना जी चाहे सुनो। इस परम सत्य रूपजल से वेद-शास्त्र रूपसमुद्र भरे पड़े हैं। भगवान, गीता में कहते हैं-

मन्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव।।

भावार्थ-हे अर्जुन ! मुझ से भिन्न दुनिया का कोई पदार्थ नहीं है। जितना यह दृश्यमान संसार है वह सब मुझ में उसी तरह ओत-प्रोत है जैसे माला के मनके धागे में ओत प्रोत रहते हैं। मोती की माला में यह भली-भाँति घटित नहीं होता किंतु पंजाब में जो ऊन की माला बनती है उसमें यह दृष्टांत ठीक तरह से घटित होता है। क्योंकि सूत्र के सिवा उसमें कोई वस्तु उपलब्ध नहीं होती। संसार के समस्त पदार्थों में मैं सर्वत्र ओत प्रोत हूँ, मुझ से अतिरिक्त यहाँ कुछ भी नहीं। इतना ही नहीं प्रत्युत वे कहते हैं सर्व वस्तु मुझ में है और सब वस्तुओं के अंदर मैं हूँ, ऐसा जो देखता है मैं उससे कदापि दूर नहीं हूँ और वह महात्मा मुझ से दूर नहीं, तथा-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। (गीता)

यथा-

फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि।।
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि।। (पन्ना **1381**)

इतना ही नहीं बल्कि श्रुति तो यहाँ तक कहती है कि आत्मदर्शी महात्मा न केवल भगवान को ही देखता है किंतु अपनी आत्मा को भी सब में देखता है और सब को अपने भीतर देखता है। वे किसी से घृणा नहीं करते, किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाते–

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्स्मे।।

इसलिए भाई न किसी को पीड़ा पहुँचाओ और न किसी से घृणा करो, सर्वत्र अपने प्रियतम के दर्शन करो। उसी का हर श्वास-प्रश्वास में स्मरण करो। उसी की याद में मस्त रहो। ''यादे-इलाही व हजार बादशाही''। इसलिए भाई बड़-बड़ करके किसी से न बोलो, न किसी का दिल दुखाओ, भगवान का नाम जपो।

बंदा बड़-बड़ क्या कर ले भगवान का नाम।।
जगत-तमाशा चार दिन आखिर धूल तमाम।।

भगवान का नाम जपो, सब की सेवा करो, सब से प्रेम का बर्ताव करो, सब से मिलकर रहो। रोगियों की, दुखियों की यथा संभव सेवा सहायता करो। सादा खाओ, सादा पहनो, सुख दो तो सुख पाओगे। अतः सब के लिए सुख की कामना करो। किसी की बुराई के ख्याल को दिल में जगह न दो।

पर का बुरा ना राखहु चीत।।
तुम कउ दुखु नही भाई मीत।। (पन्ना **386**)

फूल जैसा जीवन बनाओ। देखो फूल स्वयं हँसते हैं और तुम्हें हँसाते हैं, काँटा किसी के पैर को बेधन करता है ओर स्वयं टूटकर खत्म हो जाता है। तुम किसी के लिए काँटा मत बनो, वरन् फूल बनो। अपने हृदय को सदा सद् विचारों का और पवित्र भावनाओं का मंदिर बनाओ। ब्रह्ममुहूर्त से पहले उठ

जाओ, हो सके तो नित्य नदी-स्नान करो वरना दूसरे जल से नहाओ। नित्य-नियम का पाठ करके ही अन्न-जल ग्रहण करो, पहले नहीं। आज का काम कल पर कभी न छोड़ो, प्रभु-प्रेम के रंग में रंगे हुए महात्माओं का सत्संग करो। कुत्सित जनों की कुसंगति में भूलकर भी न बैठो।

देखो पत्थर को हाथ से छोड़ो वह नीचे गड्ढे में जा गिरता है। पंछी को हाथ से मुक्त आकाश में छोड़ो तो वह ऊँची उड़ान लगाकर दिलकश नजारों को देखने का लुत्फ़(मज़ा/आनंद) लेता है। अतः निम्न विचारों को पास में फटकने मत दो। सदा उच्च्च विचारों को, पवित्र भावनाओं को हृदय में स्थान दो, ऊँचे उठो, निम्न गड्ढे में अपने को न गिराओ। यह जीवन को सफल बनाने का अनुभूत मार्ग हैं।

इसी शबोरोज़ में उलझकर न रह।
जा तेरे लिए कोनों मकां और भी हैं।
तू शाही है परवाज़ है काम तेरा।
तेरे लिए आसमां और भी हैं।

अच्छा विलंब हो रहा है, अब जाओ आश्रम के काम को आगे बढ़ाओ। यह कहते हुए महाराज ने अपने उपदेशात्मक भाषण को समाप्त किया।

❑

तरंग 27

चतुरमास की समाप्ति पर

महाराज की आज्ञा पाकर संत आत्मा सिंह ने भक्तों को चाय पिलाई। भोजनांतर उनके कमरों में आसन लगा दिए। शाम की चाय पीकर भक्तों ने महाराज से विनय की–महाराज ! कार्तिक पूर्णमासी के पर्व में थोड़े ही दिन बाकी हैं। सिंध हैदराबाद के प्रेमी भक्त, महाराज के दर्शन की अति उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं। महाराज ने स्वीकार करते हुए संत आत्मा सिंह जी को आदेश दिया कि कल को जाने का प्रबंध शीघ्र कर दो।

❑

तरंग 28

पुनः सिंध की ओर

कार्तिक सुदी दसवीं संवत् 1969 को महाराज, अवधूत जयमल सिंह आदि चार शिष्यों को साथ लेकर सिंध हैदराबाद पहुँच गए। कार्तिक पूर्णमासी का गुरु-पर्व बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। लगभग 20 हज़ार लोगों ने महाराज का भाषण सुना और धन्य गुरु नानक धन्य बाबा बुड्ढा सिंह जी कहते हुए घरों को लौटे। चार माह बाद शिकारपुर चले गए। शिकारपुर के प्रेमी तो चरणामृत लेने में एक दूसरे से आगे बढ़कर श्रद्धाभाव व्यक्त करते थे। यहाँ सात मास के निवास से हजारों भक्तों ने महाराज से नामामृत पीकर जन्म सफल किया। इसी प्रकार अलग- अलग शहरों में दो साल तक सद्विचारों और सद्धर्म का प्रचार करके महाराज बाबा जी आश्विन शुक्ल एकादशी संवत् 1971 को ऋषिकेश पहुँचे तो यहाँ खुशी की लहर दौड़ गई। आश्रम के संतों को तो मानो पर से लग गए थे। वे उड़ते से फिरते थे। हृदय गत हर्ष को व्यक्त करने के लिए उन्होंने श्री गुरु-ग्रंथ साहिब का अखंड पाठ प्रारंभ करने की महाराज से आज्ञा माँगी। महाराज ने उनके उत्साह को देखते हुए सहर्ष आज्ञा दे दी और आदेश दिया कि आज और कल मकान की सफाई कर लो और त्रयोदशी को शुभारंभ करेंगे।

आप एक यशस्वी महान् पुरुष और शिष्टाचार की मनोरम मूर्ति थे। अतः महान् आत्मा जब कभी बाहर का दौरा करके ऋषिकेश में आते तो झाड़ी में बड़े वृद्ध महात्माओं से मिलने अवश्य जाते थे। इसके साथ ही कभी खाली हाथ नहीं

प्रत्युत फल-फूल आदि भेंट करने के लिए जरूर लेकर जाते थे। सो बड़ों की मर्यादा के अनुसार फल-फूलादि सामग्री शिष्यों से उठवाकर 'झाड़ी' में विरक्त लहण सिंह जो 'गुरु जी' के नाम से प्रसिद्ध थे व महाराज चंदा सिंह जी जो 'सोम जी' के नाम से पुकारे जाते थे, के दर्शन के लिए गए। झाड़ी में सब महात्माओं से मिले और सब का यथायोग्य सत्कार किया और साथ ही शरद्-पूर्णिमा के दिन पाठ की समाप्ति पर भंडारे का निमंत्रण सब महात्माओं को दे आए। झाड़ी के महात्माओं ने भी आपका बहुत आदर सम्मान किया। झाड़ी में महात्माओं की यात्रा करके वापस आए तो आश्रम वासी संतों ने आश्रम के गुरुद्वारा को धोकर भली-भाँति साफ और स्वच्छ बना दिया था और सुंदर वस्त्र फूल-माला आदि से सजा रहे थे। महाराज उनकी श्रद्धा-भक्ति को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और रात्रि को बादाम, किशमिश आदि डालकर खीर बनाने का आदेश दिया। संत आत्मा सिंह जी दूध लेने गए तो कई एक अन्य मित्र संतों को निमंत्रण दे आए। इस प्रकार रात्रि-भोजन में दस-बारह संत शामिल हो गए। इस तरह (प्रकार) संत आत्मा सिंह जी का संत समाज के साथ प्रेम देखकर महाराज के हृदय-सागर में आनंद की लहरें उठने लगीं। उन्होंने संत आत्मा सिंह जी की तथा अन्य समाज-सेवी संतों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और कहा कि हमारी इच्छा भी यही है कि हमारे आश्रम में महात्माओं का आना-जाना बना रहे और साधु- संत-महात्माओं की सत्कार सहित सेवा होती रहे, क्योंकि संत-महात्माओं के सतसंग और सेवा से मन निर्मल होता है पर यह सब होना चाहिए निष्काम भाव से जो कुछ भी सेवा, भजन, चिंतन, पूजा-पाठ आदि शुभ कार्य हैं, भगवान के निमित्त ही होने चाहिएं। जो कुछ भी करो वे सब कुछ भगवान के चरणों में समर्पण कर दो। आनंदकंद भगवान कृष्ण जी ने अर्जुन को आज्ञा दी कि-

यत्करोषि येदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।।
यतपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।
गुरु महाराज ने भी कहा है-
मन निरमल करम करि।। (पन्ना **678**)

भगवान के निमित्त कर्म करने से मन निर्मल होता है। याद रहे कि विशुद्ध निर्मल मन में ही ज्ञान होता है। अन्यत्र भी कहा है-"ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां विशुद्धे निर्मल चेतसि।" सच तो यह है कि मनुष्य का मन ही मित्र है और मन ही शत्रु है। मन ही देता है और मन ही मित्र बंधनकारी है। अर्थात बंधन, दुख, क्लेशादि भी मन ही देता है और मन ही मोक्ष का कारण है। अथवा दुख-क्लेश को दूर कर शाश्वतानंद में नित्य निरंतर सुख-सरोवर में डुबकी लगाने वाला है। यथा-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयो।।
विशुद्धं मनो मोक्षाय बन्धनाय मलिनं मनम्।।

अर्थात् मलिन मन बंधन और निर्मल मन मोक्ष का हेतु है।

वस्त्र जितना मलिन होता है वह उतना ही भारी होता है और जितना भारी उतना ही उसको उठाना और ओढ़ना कठिन है। अतः मन जितना मलिन है, भारी है, उसका जीतना उतना ही कठिन है। निर्मल होकर हलका हुआ मन जीतना आसान है। इसीलिए गुरु नानक साहिब ने कहा है-

भरीऐ मति पापा कै संगि।। ओहु धोपै नावै कै रंगि।। (पन्ना **4**)

मन, बुद्धि पर लगी हुई पाप-कर्मों की मैल नाम रूपी निर्मल जल से धोई जा सकती है। इस प्रकार धोकर हलका किया मन ही मोक्ष का कारण बनता है। हलका-फुलका किया हुआ मन जीता जा सकता है। मन अगर जीत लिया जाए तो सारे संसार पर ही विजय संभव है। गुरु नानक का वचन है-

मन जीते जग जीत।। (पन्ना **6**)

भक्त प्रहलाद ने अपने पिता हिरण्यकश्यप की गर्वोक्तियाँ सुनकर कहा

था-पिता जी अगर अपने छोटे-से शत्रु मन को नहीं जीत सके तो बाहर के शत्रुओं को जीत लेना कोई मायने नहीं रखता। अगर किसी के किले में आकर शत्रु घुस जाए तो यह समझो कि फिर उसकी खैर नहीं। यह मनरूपी शत्रु तो आपके किले में बैठा है तो आपकी जीत का क्या अर्थ ? ठीक ही कहा है किसी ने- मन रिपु जीता सब रिपु जीते।

अतः मनोमार्जन का मसाला है भगवान का भजन और निष्काम कर्म। इसलिए जो कुछ करो उसे भगवान के चरणों में अर्पण कर दो और कहो कि हे भगवान !

त्वदीयं वस्तु गोबिन्द तुभ्यमेव समर्पये।'

इस प्रकार निर्मल किए गए मन में ही ज्ञान ज्योति का उज्ज्वल प्रकाश होता है। उसी नित्य सुख स्वरूप परम पद की प्राप्ति होगी, जहाँ पहुँच कर मनुष्य पुनः संसार-चक्र में नहीं फँसता। वही भगवान का परम धाम है जिसके लिए श्री कृष्ण जी ने प्रतिज्ञा की है-''यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।'' इस प्रकार महाराज अपने शिष्यों को यथा समय शिक्षा देते रहते थे। समय निकाल कर डेरे के हिसाब-किताब की जाँच भी कर लेते। किए हुए काम की खूबियाँ और नुक्स देखते जाते थे। सब कुछ ठीक था पर जहाँ कुछ त्रुटियाँ थीं उन्हें ठीक करवाया। क्योंकि वे भली-भाँति जानते थे कि यदि काम करने वाले मनुष्य से गलतियाँ हो ही जाती हैं। जो यह कहता है मुझे गलती नहीं हुई तो यह समझो कि उसने कभी कुछ किया ही नहीं। यह मानव कि स्वभाव की कमी है कि वह कुछ न कुछ भूल ही जाता है। कुछ गलती भी कर ही जाता है। गुरु नानक देव जी ने कितना सुंदर कहा है-

भुलण अंदरि सभु को अभुलु गुरू करतारु।। (पन्ना **61**)

गुरु तेग बहादुर जी ने भी फुरमाया है -

कहु नानक प्रभु बिरदु पछानउ तब होउ पतित तरउ।। (पन्ना **685**)

कबीर जी भी इसकी पुष्टि करते हैं-

राखि लेहु हम ते बिगरी।।
सीलु धरमु जपु भगति न कीनी
हउ अभिमान टेढ पगरी।। (पन्ना **856**)

जब आपने गलतियों और त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाया तो संत आत्मा सिंह जी ने नम्रता के साथ क्षमा माँगी। जहाँ गलती किसी दूसरे संत की थी उसकी जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ली और उसके लिए भी हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और चरण छूते हुए कहा-

राखि लेहु हम ते बिगरी।।
कहि कबीर इह बिनती सुनीअहु मत घालहु जम की खबरी।।
(पन्ना **856**)

दंड देने के विचार से नहीं, आप तो त्रुटियाँ दूर करने की वजह से जाँच पड़ताल करते। वह इस राज़ (रहस्य) को खूब जानते थे कि कर्मचारी काम भले ही अच्छा करता हो और वह मालिक से भी ज्यादा जानकारी रखता हो तब भी उसके काम की जाँच या देख रेख अवश्य करनी चाहिए। जो मालिक इस प्रकार कर्त्तव्य का पालन नहीं करता वह गलती पर है क्योंकि कर्मचारी जब जान लेता है कि मेरे काम की देख-रेख करने वाला कोई नहीं है तो वह कभी बेपरवाही या प्रमाद भी कर सकता है, और प्रमाद वश नुकसान हो ही जाता है। इसलिए मालिक का फर्ज़ है कि मातहत (आधीन) काम करने वालों के काम की जाँच अवश्य करे। जो मालिक ऐसा नहीं करते वे भूल करते हैं और ख़ास करके वे बड़े लोग जिनकी जिम्मेदारियाँ खुदा जितनी बड़ी हों।

इस प्रकार बाबा जी महाराज, जहाँ किसी से मिलने जाते वहाँ संत आत्मा सिंह जी को अवश्य साथ ले जाते थे। इस तरह संत आत्मा सिंह जी को बीतराग विरक्त महात्माओं और ब्रह्मनिष्ठ सर्वत्र समदर्शी महापुरुषों के सारभूत अमृत सरीखे वचनों को सुनने का और उनके दिव्य जीवन को सन्निकट से देखने का

अवसर मिल जाता। इस प्रकार उनके पवित्र जीवन चरित्र, पवित्र चित्रावलि की रंगीन झाँकी की तसवीर को अपनी अंतर-आत्मा में उतार लेते और उनकी रंगीन तसवीर से अपनी तकदीर की तामीर करते रहते। यही वजह थी संत आत्मा सिंह जी के इतने अधिक सूझवान और दूरदर्शी होने की। वे बोलते बहुत कम थे, सोचते बहुत ज्यादा थे। वे कथन की अपेक्षा मनन अधिक करते थे, इसी विशेष गुण के कारण समय-समय पर बोले हुए महात्माओं के सार गर्भित वचनों को वे हृदयंगम कर लेते। इसीलिए वे वचन उन्हें सदा सर्वदा अपने स्मृति-पटल पर प्रत्यक्ष दीखते रहते और वह उनके धन्य जीवन की रंगीन झांकियाँ उन्हें सदा सामने दिखाई देती रहती थीं। इससे उनकी अंतरात्मा अधिकाधिक धुलती गई और दिनोंदिन निखरती गई जिससे वे दुर्लभ वस्तु, आत्मज्ञान के अधिकारी बन कर धन्य हो गए।

❑

तरंग 29

शरद पूर्णिमा पर अखंड पाठ और संत समागम

शरद ऋतु की शीत रातें, सत्संग से भक्त जनों की भक्ति के समान दिनों-दिन बढ़ रही है। गंगा की धवलधारा, तीर-तरु तले समाधि-लीन तपस्वियों की कृश काया के समान सूखती जा रही है। कहीं कहीं तो वह विरहिणी की वेणी के समान पतली दिख रही है। चाँद की चाँदनी ने धरती आकाश दोनों पर मानों चाँदी की पॉलिश चढ़ा रखी है। इसी से तारों की आँखें चुन्धिया सी गई हैं। शायद वे सभी रजनी माँ की गोद में जाकर सो जाना चाहते हैं। उषा रानी ने रक्ताभ ललित मुखारविंद से काली चुनरिया का घूँघट हटा दिया है। मंदिरों के घंटा घड़ियालों की घनानुकरण-कारिणि ध्वनि ने सोई नगरी की सुखद नींद में मानो चिंगारी सी लगा दी है। कोई कोई प्रभु-प्यारा भक्त गंगा स्नान के लिए जा रहा है। सूर्य नारायण की सुनहरी किरणों ने संसार को सुनहरे रंग में रंगना शुरू कर दिया तथा प्रभात के शीतल पवन में मीठी आवाज़ गूँज उठी-

बाबीहा अंम्रित वेलै बोलिआ तां दरि सुणी पुकार।।
मेघै नो फुरमानु होआ वरसहु किरपा धारि।।
हउ तिन कै बलिहारणै जिनी सचु रखिआ उरि धारि।।
नानक नामे सभ हरिआवली गुर कै सबदि वीचारि।। (पन्ना **1285**)

हैं ! कहाँ से आ रही है यह मधुर ध्वनि? एक संन्यासी ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा। श्री गुरु ग्रंथ साहिब का अखंड पाठ हो रहा है, स्वामी जी और आज ही उसकी समाप्ति होने वाली है। एक स्नानार्थी निर्मल संत महात्मा ने बताया अच्छा। तब तो शायद भंडारा भी होगा, परम हंस ने यह जानने की इच्छा से

पूछा। निर्मल संत ने जवाब देते हुए कहा-हाँ, स्वामी जी ठीक बारह बजे पंक्ति लग जाएगी। इस वार्तालाप को भंग करती हुई, हारमोनियम-तबला की ध्वनि में मिली हुई आवाज़ आई-

जैतसरी महजा ५।।
हरि जन सिमरहु हिरदै राम।।
हरि जन कउ अपदा निकटि न आवै पूरन दास के काम।। १।। रहाउ।।
कोटि बिघन बिनसहि हरि सेवा निहचलु गोविद धाम।।
भगवंत भगत कउ भउ किछु नाही आदरु देवत जाम।। १।।
तजि गोपाल आन जो करणी सोई सोई बिनसत खाम।।
चरन कमल हिरदै गहु नानक सुख समूह बिसराम।। २।। (पन्ना **702**)

संगीतकारों ने इसे भैरवी में प्रेम से गाया।

इस पावन ध्वनि के साथ ही इधर उधर से काषाय वस्त्रधारी महात्मा निर्मल आश्रम की ओर आने लगे। झाड़ी के विरक्त संतों की मंडली, महान् विद्वान् महापुरुष बाबा प्रेम सिंह जी के नेतृत्व में आश्रम की ओर रवाना हो गई। उन त्यक्त सर्वस्व महात्माओं को देखकर ऐसा लगता था जैसे भगवान बुद्ध के नेतृत्व में बौद्ध भिक्षुओं की टोली किसी सम्राट के महलों की ओर जा रही है। निर्मल आश्रम चहुँ (चारों) ओर से लाल रंग से रंगा गया था। झाड़ी वाले विरक्तों की जमात (श्रेणी) आश्रम में पहुँची तो आश्रम के सब संतों ने आगे आकर फूलमालाओं से स्वागत किया। सब महात्माओं को यथायोग्य स्थान में आदर-सत्कार से बैठाया। संगीतकारों ने कीर्तन समाप्त किया। पौने ग्यारह का समय हो चुका था। महाराज ने सादर प्रार्थना की कि विरक्तों में से कोई महात्मा प्रवचन करने की कृपा करें। तब विद्वान् समाज के भूषण श्री 108 पंडित राम सिंह जी ने पंद्रह मिनट तक ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' पर भाषण देकर महंत बुड्ढा सिंह जी से प्रार्थना की कि हम तो आपसे गुरुवाणी की कथा सुनने आए

हैं अतः आप कथा सुनाने की कृपा करें।

तब बाबा जी महाराज ने निम्नलिखित शब्द की बड़ी ही सुंदर व्याख्या कीः-

टोडी महला ५ घर ५ दुपदे
१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि।।
ऐसो गुनु मेरो प्रभ जी कीन।।
पंच दोख अरु अहं रोग इह तन ते सगल दूरि कीन।। रहाउ।।
बंधन तोरि छोरि बिखिआ ते गुर को सबदु मेरै हीअरै दीन।।
रूपु अनरूपु मोरो कछु न बीचरिओ प्रेम गहिओ मोहि हरि रंग भीन।।१।।
पेखिओ लालनु पाट बीच खोए अनद चिता हरखे पतीन।।
तिस ही को ग्रिहु सोई प्रभु नानक सो ठाकुरु तिस ही को धीन।। २।।

(पन्ना **716**)

मंगलादि शिष्टाचार के अनंतर आपने कहा-त्रिगुणातीत, तपस्वी, तत्वातत्व- विवेचक, विरक्त महापुरुषों! गुरुचरणानुरागी, सद्गृहस्थ प्रेमियों! आज हम अपने अहोभाग्य समझते हैं, जबकि अतीव विरक्तात्मा महात्माओं ने हमारी प्रार्थना स्वीकार करके आश्रम को चरण रेणु से पवित्र करने की बहुत कृपा की है। पंडित राम सिंह जी महान् विद्वान् हैं, अच्छा होता यदि वे स्वयं शास्त्र के गूढ़ रहस्य को समझाते पर उन्होंने मुझे ही विचार व्यक्त करने को कहा है। अस्तु गुरुवाणी, सांप्रदायिक विचारों से सर्वथा दूर रह कर प्राणी मात्र के हित का उपदेश करती है। मानव हृदय को निर्भय, निर्दोष, निर्मल और पवित्र बनाकर श्रेय-मार्ग पर चलाना गुरुवाणी का परम उद्देश्य है। वह ईश्वर भक्ति और मानव-सेवा रूपसद्धर्म में लगाकर जन मानस को सांसारिक वासनाओं से विमुक्त करना चाहती है ताकि मनुष्य आत्म कल्याण का अधिकारी बन सके। गुरुवाणी एक फ्यूज़ की तार है जो हृदय रूपी बल्ब को महापावर हाउस, आनंदनिधि परम दयालु परमात्मा के साथ जोड़कर प्रकाशित करना चाहती है।

गुरुवाणी एक इलाही रोशनी है जो इंसान की धुँधली राहों को रोशन करना चाहती है जिससे वह उस दुनिया की पाक (पवित्र) हवा में सुख की साँस ले सके, जहाँ दुई का दुख दर्द और नफरत का नामोनिशान न हो।

संक्षेप में भारतीय साहित्य शास्त्र के नियमानुसार गुरुवाणी वह सत्साहित्य है जो मानव को सारे संसार में ''सत्यं शिवं सुंदरम्'' का दर्शन कराकर सुख स्वरूप विश्वात्मा में विलीन कर देना चाहती है।

गुरु अर्जुन देव जी महाराज ने अमर साहित्य (वाणी) की सर्जना कर, सद्विचार, ईश-भक्ति और आत्म-ज्ञान की वह शीतल धारा प्रवाहित की है जो सदा सर्वदा मानव हृदय के पापों को धोकर उसे निर्मल बनाती रहेगी।

दुनिया के हर इंसान को पाँच ऐबों (दुराचार) ने हैवान-सा बना रखा है। ये सिर्फ छोटे वर्ग के मनुष्यों के हितों को ही तंदूर की तरह तपाते हों, ऐसी बात नहीं है, बल्कि अमीरों, सरदारों, शाहों और शहनशाहों को भी कबाब की तरह भूनते रहते हैं। यहाँ तक कि बड़े-बड़े पीरों, फ़कीरों, सादिक, मुल्लाओं और बड़ी-बड़ी अज़मत रखने वालों के दिलों को भी अछूता नहीं छोड़ते। ये इनके दिलों में भी ऐसी बुराइयों को पैदा करते हैं जो इंसान को भगवान से कोसों दूर फेंक देती हैं। ये हज़रत कहने को पाँच हैं, मगर इन में से एक-एक हज़ारों बुराइओं को जन्म देता है। जैसे खसखस का एक अदना-सा दाना (नन्हा सा दाना) अपने डोडे के अंदर हजारों दाने पैदा कर देता है। इतना ही नहीं वह उस डोडे में से ज़हर के मानिंद कड़वी अफीम को भी पैदा करता है जो इंसान की तमाम खूबियों को खत्म कर डालती है। इंसान के जिस्म (शरीर) से तमाम खून पी जाती है और वह हड्डियों का ढाँचा-सा रह जाता है। दर-दर का भिखारी बन जाता है या बेगिनत गुनाहों का भार सिर पर लाद कर आखिर जहन्नुम (नरक) की राह लेता है। इनसे बचने का एक ही रास्ता है, वह है खुदा की

पनाह, भगवान की शरण।

बाबा फरीद कहते हैं-

तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी।।
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी।। (पन्ना **488**)

सच्चे दिल से भगवान से विनती करो कि हे दयामय भगवान, हे दीन दयालु! मैं तेरी शरण में हूँ, इन नीचों से मुझे बचाओ। अधमों से छुटकारा दिलाओ जिससे मैं आपकी भक्ति करके मानव जीवन को सफल बना लूं। हे दुःख-भंजन स्वामी ! मुझ असहाय अनाथ की रक्षा करो। तुम पवित्र पावन हो, दया के सागर हो, समदर्शी हो, दया-जल के दो छींटे मारकर मेरे पापों को धो डालो, मेरा बेड़ा पार हो जाए, पार उतारा हो जाए।

सूरदास ने कहा है-

प्रभु जी मेरे औगुन चित्त ना धरो।।
समदर्शी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो।।

इस प्रकार आतुर बनकर जब प्रभु-चरणों में विनती की जाती है तो अशरण-शरण भगवान, दया करके किसी पीर-फकीर से भेंट करा देते हैं तो वह महात्मा परमात्मा से मिलने का रास्ता बना देते हैं। वह उपदेश रूपी अमृत का घूँट पिलाकर हमारे हृदय के पापों को धो डालते हैं। नाम अमृत रूपी जल से हमारे मन की मैल को धोकर ऐसा शुद्ध पवित्र और निर्मल बना देते हैं, तो निर्मल मन के शीशे में दीखने लग जाती है उस अति सुंदर मनमोहन की सुंदर झाँकी। तो वह आ विराजते हैं निर्मल मन के शुभ सिंहासन पर, बस शर्त यही है कि सच्चे दिल से विनती की जाए जैसे-

किरपा करहु दीन के दाते मेरा गुणु अवगणु न बीचारहु कोई।।
माटी का किआ धोपै सुआमी माणस की गति एही।। (पन्ना **882**)

अनेक भक्तों ने इसी तरह प्रार्थना की है जैसे भक्त रविदास जी कहते हैं, हे

प्रभु जी ! इन पाँचों ने मेरे मन को बिगाड़ दिया है और आपके चरणों से दूर ले जाकर फेंक दिया है-

इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ।।
पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ।। (पन्ना **710**)

परिणाम यह हुआ है, चहुँ (चारों) ओर से दुःखों से घिर गया हूँ-

जत देखउ तत दुख की रासी।। अजौं न पत्याइ निगम भए साखी।।
गोतम नारि उमापति स्वामी।। सीसु धरनि सहस भग गामी।।
इन दूतन खलु बधु करि मारिओ।। बडो निलाजु अजहू नही हारिओ।।
कहि रविदास कहा कैसे कीजै।। बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजै।।

इसी बात को गुरु नानक जी ने बहुत ही सुंदर शब्दों में कहा है-

अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बारु मना।।
मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगै करी पुकार जना।।
स्री राम नामा उचरु मना।। आगै जम दलु बिखमु घना। (पन्ना **155**)

इसी बात को गुरु अर्जुन देव जी भी कहते हैं- मैंने उस परम दयालु भगवान की शरण ली है तो उन्होंने पाँचों दोष मेरे हृदय से निकाल कर दूर फेंक दिए हैं और मेरा अहंता ममता का असाध्य रोग निकालकर मेरे तन और मन को पवित्र बना दिया है-

ऐसो गुनु मेरो प्रभ जी कीन।।
पंच दोख अरु अहं रोग इह तन ते सगल दूरि कीन।।(पन्ना **716**)

कोई भी अच्छी चीज़ जिसमें विरोधी तत्व मिल जाए, वह दूषित होकर लाभ की बजाय हानि ज्यादा करती है। जैसे दूध उत्तम पदार्थ है, पर उसमें अगर थोड़ी कांजी मिला दी जाए तो वह किसी काम का नहीं रहता। इसी प्रकार दही भी आरोग्यता बढ़ाने वाली शक्तिवर्धक अमृत वस्तु है, अगर उसमें गोबर मिला दिया जाए तो उसमें बिच्छू पैदा हो जाते हैं। अंगूर एक अमृत फल है, पर उसे सड़ा दिया जाए तो वह अनर्थकारी शराब बन जाती है। गंगा जी के पवित्र

निर्मल जल में मिट्टी मिला दी जाए तो वह दूषित होकर रोग उत्पन्न करने वाली खराब चीज बन जाएगी। इसी प्रकार बिगड़े हुए जल में फिटकरी डालकर टिका दिया जाए तो मिट्टी तले बैठ जाएगी और वह जल पीने के योग्य बन जाएगा। इसी प्रकार अगर मानव हृदय को टिका दिया जाए तो वह भी निर्मल होकर, आत्मज्ञान पाने के योग्य बन सकता है अर्थात् उसमें चंचलता विक्षोभ उत्पन्न करने वाले राग और द्वेष है। वही बड़े दोष हैं जो हमारे मन को विक्षुब्ध और मलिन बनाते हैं, इसलिए राग-द्वेष से बचना चाहिए। सबसे बड़े विध्नकारी ये ही हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं-

इंद्रियस्य इंद्रियार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्मस्य परिपन्थिनौ।।

आँख, कान आदि हर एक इंद्रिय के विषय में राग और द्वेष नियत है अर्थात् आँख का विषय है-रूप। पुत्र, मित्र आदि की प्यारी शक्लोसूरत को देखकर हमारा दिल खुशी में उछल पड़ता है पर शत्रु आदि को देखकर हम क्रोध और घृणा की आग से जल उठते हैं। यानि पुत्र, मित्र आदि के प्रति राग ने और शत्रु आदि में द्वेष ने, दोनों ने ही हमारे हृदय को दूषित बनाया है। अतः ये दोनों ही त्याग देने चाहिएं।

पतंगा दीए के रूप में राग होने से उसकी आग में जल मरता है। आँख का दास बना हुआ मनुष्य भी कभी इसी तरह मौत के मुँह में जा गिरता है। इसी प्रकार अन्य इंद्रियों के बारे में समझ लेना। अगर इनसे राग और द्वेष न हो तो हमें दुःखाग्नि में जला नहीं सकते पर यह तभी होगा जब हमारी सर्वत्र समदृष्टि होगी। यानि जब हम सब में एक आत्म-तत्व को ही देखेंगे तो हम राग-द्वेष की आग से बच सकते हैं और सुखी बन सकते हैं।

जब तक हम इंद्रियों के दास हैं तब तक जीवन को सुखी नहीं बना सकते, यह एक निश्चित सिद्धांत है।

शास्त्रों में अन्यत्र कहा है-

आपदां कथितःपन्था इंद्रियाणामसयमः।।

तज्जयः सम्पदां मार्गःयेनेष्ट तेन गम्यताम्।।

इंद्रियों पर कंट्रोल (नियंत्रण) न रखना अर्थात् इंद्रियों के गुलाम बन जाना यही दुःख और मुसीबतों का रास्ता है। इंद्रियों पर विजय पा लेना ही सुख-संपदाओं का मार्ग है, जिसे जी चाहो चुन लो। इसी प्रकार मनु महाराज ने भी कहा है-

इंद्रियाणां हि विचरितां विषयेष्वपकारिषु।।

संयमे यत्नमातिष्ठेत विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।।

भावार्थ-दुःखदायी विषयों के कंट्रोल जंगल में घूमने वाले इंद्रियों पर नियंत्रण, यानि कंट्रोल रखने का यत्न विद्वान् को हमेशा करते रहना चाहिए; जैसे हाँकने वाला सारथी चंचल घोड़ों को यत्न से वश में रखकर चलाता है, वरना वे चंचल घोड़े किसी गड्ढ़े में गिरा सकते हैं। इसी प्रकार साधक को इंद्रियों पर नियंत्रण रखने का यत्न हमेशा जारी रखना चाहिए तभी साधक अध्यात्म मार्ग में प्रगति कर सकता है।

उक्त प्रकार के शत्रुओं पर विजय पाने का एक साधन सत्संग है। सत्संग से इन पर विजय पाने का यत्न शुरू हो जाता है। प्रभु कृपा से सफलता मिल जाती है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं-सत्संग को लेकर हम इनके शिकार को चढ़े, तो बिना ही घोड़े आदि की सवारी की सहायता के और बिना किसी नेज़ा, भाला व तीर-तलवार आदि शस्त्रों के, इन हिंसक पशुओं को पकड़ लिया है यानि इनको वश में कर लिया है। इंद्रिय रूपी दस शत्रुओं को पकड़ने में आसानी से सफल हो गए हैं।

गुरु जी का पावन वचन है-

दस मिरगी सहजे बंधि आनी।

पांच मिरग बेधे सिव की बानी।। (पन्ना **1136**)

शिव के तीक्ष्ण बाणों से मृगों को बींध डाला है। सत्संग ही इन पर विजय पाने का प्रधान साधन है क्योंकि बिना सत्संग के प्रभु-चरणों में प्रेम नहीं होता और प्रेम के बिना परमे वर की भक्ति संभव नहीं। भक्त शिरोमणि रविदास जी कहते हैं-

साधसंगति बिना भाउ नही ऊपजै भाव बिनु भगति नही होइ तेरी।।

(पन्ना **694**)

भक्ति से प्रभु प्रसन्न होते हैं और इतना प्रसन्न हो जाते हैं कि मित्र बन जाते हैं। ठीक वैसे ही जैसे श्री कृष्ण जी, अर्जुन सुदामा आदि के मित्र बन गए थे। जब भगवान मित्र बन गए तो फिर मुझ को किस का डर, किससे जलन व ईर्ष्या-द्वेष, प्रभु कृपा से वे सभी ठग जो दुनिया को ठगा करते हैं, उन सब को मार भगाया है। उनका पवित्र मुख वाक् है-

पवड़ी।।
हरि जीउ जा तू मेरा मित्रु है ता किआ मै काड़ा।।
जिनी ठगी जगु ठगिआ से तुधु मारि निवाड़ा।।
गुरि भउजलु पारि लंघाइआ जिता पावाड़ा।।
गुरमती सभि रस भोगदा वडा आखाड़ा।।
सभि इंद्रीआ वसि करि दितीओ सतवंता साड़ा।।
जितु लाईअनि तितै लगदीआ नह खिंजोताड़ा।। (पन्ना **1097**)

प्रबल शत्रुओं को जीतने के लिए युक्ति, प्रयत्न और अदम्य मनोबल की आवश्यकता होती है। युक्तियाँ गुरुजनों से मिला करती हैं। यथा-मध्य प्रांत का एक छोटा-सा रजवाड़ा था। रजवाड़ों की भाँति उसे भी एक विनोद सूझ गया दिल बहलाने को। उसे बकरियों का दूध बड़ा प्रिय था। अतः उसने अच्छी किस्म की कुछ बकरियाँ पाल रखी थीं। चरवाहा अहीर उन्हें वन में चरा लाता था।

राजा ने अपने मनोविनोद के लिए घोषणा कर रखी थी कि जो मेरी बकरियों को पेट भर कर तृप्त कर देगा उसे मैं अपने राजभाग का उत्तराधिकारी बना दूँगा।

उसका कोई पुत्र नहीं था। अतः उसे यह चिंता नहीं थी कि अगर कोई इस कार्य में सफल हो गया तो क्या करेंगे क्योंकि वह जानता था कि बकरियों को तृप्त करना असंभव है। गुरु मिल जाने से यदि कोई सफल हो गया तो उसे उत्तराधिकारी बना देंगे क्योंकि इस धराधाम को एक दिन छोड़कर जाना ही पड़ेगा। धन-संपत्ति को कोई साथ तो ले जा नहीं सकता। इस राज-घोषणा को सुनकर एक देहाती जवान आया कि यह कौन-सी बड़ी बात है। इससे आसानी से राजा बन जाएंगे।

आया और आकर कहा कि यह काम मुझे सौंपा जाए। राजा ने आज्ञा दे दी और वह बकरियों को जंगल में ले गया और उन्हें अच्छी-अच्छी घास और पेड़-पत्तियाँ खिला। बकरियों की कोख निकल आई तो वह खुशी-खुशी बकरियों को ले आया और गर्व के साथ कहा देखो मैंने बकरियों के पेट कैसे भरे हैं। वह बेचारा इस रहस्य को नहीं जानता था कि घोड़े और बकरियों को खाने के साथ ही साथ सब हजम होता जाता है। उन्हें दस मिनट के बाद भी खाना दिख जाए तो खाना देखकर उन्हें तुरंत खाने की इच्छा हो जाती है। सो इस भेद को जानने वाले राजा ने हरी-हरी घास दिखाई तो बकरियाँ टूट पड़ीं। उस देहाती को राजा ने डपटते हुए कहा-बेवकूफ ! बकरियां तो भूखी पड़ीं हैं। देखो घास देखकर खाने के लिए कैसे भागकर आई हैं। भाग यहाँ से। वह बेचारा शर्मिंदा होकर चला गया। राजा ठहाका मारकर खूब हँसा।

इसी प्रकार कितने मनचले आए और फेल होकर बैरंग हो गए। आखिर एक दिन एक उम्मीदवार इसी तरह हार और डाँट-डपट से शर्मिंदा होकर, आशा भंग से दुखी होकर मुरझाया-सा जा रहा था। रास्ते में एक महात्मा मिल गए। उन्होंने पूछा बेटा! तू उदास-सा क्यों दिख रहा है? क्या तेरा कुछ छीन

लिया किसी ने? तो उसने सारी कहानी संत जी को कह सुनाई। महात्मा ने कहा-बेटा, बकरियाँ इस तरह खाने से कभी बाज़ नहीं आ सकतीं, चाहे उन्हें कितना खिलाते रहो। हम तुम्हें एक तरकीब बताते हैं, तू उस पर ठीक तरह से अमल करेगा तो तुझे सफलता अवश्य मिलेगी। उसने स्वीकार किया तो महात्मा ने एक पतली-सी छड़ी उसके हाथ में देते हुए कहा बकरियों को खूब पेट भरकर खिला। जब तुझे मालूम हो जाए कि बकरियों का पेट भर गया है और ये खूब अघा गई हैं, 10 मिनट उन्हें झाड़ियों से दूर कर फिर घास दिखा। फिर खाने को आए तो दो-दो, चार-चार छड़ियाँ कसकर जमा दे। इस प्रकार दो-चार दिन कर, इस प्रकार बकरियों को छड़ी का डर बैठ जाएगा और वे छड़ी देखकर मारे डर के खाने की ओर मुँह नहीं करेंगी तो राजा को तुम्हें सफल समझकर इनाम देना पड़ेगा।

महात्मा की बतलाई युक्ति कारगर साबित हो गई तो बकरियों को राजा के पास ले गया। राजा ने हरी घास दिखाई तो उसने लंबी पतली छड़ी दिखा दी। बस डर की मारी बकरियों ने उधर देखा भी नहीं। इस प्रकार उसे पूर्ण सफलता मिल गई। घोषणा के अनुसार राजा को उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना पड़ा।

यह तो है दृष्टांत और दृष्टांत में यह समझिए मनुष्य की कुल इंद्रियाँ ही बकरियाँ हैं। बकरियों की तरह ये कभी तृप्त नहीं होतीं। भाई गुरुदास जी कहते हैं-

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे।।
उसतति निंदा कंनि सुणि रोवणि तै हासे।।

कान नाना विधि के गीत-संगीत सुनकर तृप्त नहीं हुए। जिहवा इस प्रकार खा-पीकर नहीं अघाई। गुरु अर्जुन देव जी ने कितना सुंदर कहा है-

बिखिआ महि किन ही व्रिपति न पाई।।
जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै बिनु हरि कहा अघाई।। (पन्ना **672**)

सभी इंद्रियां अपने विषयों के रसों में मगन हैं। बकरियों की तरह इनको विविध विषयों के रस अर्पण करके तृप्त नहीं किया जा सकता। इन्हें तो दोष-दृष्टि ही विषयों से विमुख करने के लिए कारगर छड़ी है। दोष-दृष्टि विषयों में दोष देखने, जैसे कि विषयासक्त रहकर मनुष्य जितने भोगों को भोगता है उतने ही रोग शरीर में पैदा हो जाते हैं। शराबी-कबाबी, अफीमची और वे यागामियों को कई एक असाध्य रोग हो जाते हैं। किसी को दमा, किसी को टी० बी०, किसी को उपदंश आदि नामुराद बीमारियाँ लग जाती हैं जिनसे वह इसी दुनिया में नरक के दुःख भोगकर मर जाते हैं। गुरु नानक देव जी कहते हैं-

दुखी दुनी सहेड़ीऐ जाइ ता लगहि दुख।।
नानक सचे नाम बिनु किसै न लथी भुख।। (पन्ना **1287**)
रूपी भुख न उतरै जां देखां तां भुख।।
जेते रस सरीर के तेते लगहि दुख।। (पन्ना **1287**)

यथा-

मनमुख भोगहि भोग दुख सवाइया।।
भोगहु उठे रोग उपादु खपाइआ।।

गुरु नानक देव जी ने अनेक उदाहरण भी दिए हैं-

गोतमु तपा अहिलिआ इसत्री तिसु देखि इन्द्रु लुभाइआ।।
सहस सरीर चिहन भग हूए ता मनि पछोताइआ।। (पन्ना **1344**)

एक महापुरुष ने हिरन, हाथी, पतंग, भृंग और मछली आदि जीवों का उदाहरण देकर समझाया है कि ये एक विषय के दास होकर दुःखाग्नि में जलकर मर जाते हैं पर जो पाँचों का गुलाम है उसके जीवन में सुख की आशा कैसे की जा सकती है? तथाहि-

कुरंड़ मातंड़ पतंग भृंग मीनाः हताः पंच भिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंच भिरेव पंच।।

यह निश्चित है कि विषय भोगों के रास्ते जाकर कोई भी मनुष्य सुखों के

देश नहीं पहुँच पाया।

इसीलिए गुरु बाबा ने मन को संबोधन करते हुए हिरण के दृष्टांत से समझाया है। यथा-

तूं सुणि हरणा कालिआ की वाड़ीऐ राता राम।।
बिखु फलु मीठा चारि दिन फिरि होवै ताता राम।।
फिरि होइ ताता खरा माता नाम बिनु परतापए।।
ओहु जेव साइर देइ लहरी बिजुल जिवै चमकए।।
हरि बाझु राखा कोइ नाही सोइ तुझहि बिसारिआ।।
सचु कहै नानकु चेति रे मन मरहि हरणा कालिआ।। १।। (पन्ना **438**)

इसलिए विषय भोगों की तृष्णा और अहंता ममता आदि रोग तन-मन से निकल जाए तो पवित्र मन लेकर मनुष्य प्रभु के सम्मुख होकर ज्ञान वैराग्य के द्वारा मोक्ष का अधिकारी बन सकता है।

आगे व्याख्या न करके शब्द को समाप्त करते हुए महाराज ने कहा-विरक्त महापुरुषो! हमारी प्रार्थना स्वीकार करके आपने जो यहाँ पधारने की कृपा की है उसके लिए हम आपका हार्दिक धन्यवाद करते हैं। समय कुछ अधिक हो गया है, आशा है आप हमें क्षमा प्रदान करेंगे। अब आप पंगत लगाएं। भोजनानंतर महाराज ने सब महात्माओं को सेब-संतरा आदि फल दक्षिणा के रूप में अर्पण किए।

प्रेमपूर्ण भंडारा और कथा से महाराज जी की सर्वत्र जय-जयकार हुई।

❑

तरंग 30

निर्माण कार्य की ओर

अब चूँकि सन् 1915 का कुंभ पर्व समीप आ रहा था इसलिए महाराज ने आश्रम के निर्माण-कार्य की ओर विशेष ध्यान दिया। संत आत्मा सिंह आदि सब संतों को बुलाकर कहा कि आत्मा सिंह ! सब मिलकर तेज़ी से काम को आगे बढ़ाओ, समय कम रह गया है और काम बहुत पड़ा है। कुंभ मेला शुरू होने से पहले कमरों की आधार-शिला रखी जा चुकी है, उन सभी पर छतें डाल देनी हैं, बाकी पलस्तर आदि का काम फिर होता रहेगा। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि कुंभ मेले के बाद संत लोग ऋषिकेश में भी दर्शन करने आएंगे। विशेष कर निर्मल संप्रदाय के साधु संत यहीं ठहरेंगे, क्योंकि सिवा झाड़ी के और कोई अपना स्थान नहीं है। झाड़ी में भी अपनी-अपनी झोंपड़ी है सबकी, उसमें दूसरों के रहने की गुंजायश नहीं है। अतः निर्मल साधु तो सब यहीं आएंगे। इसलिए नीचे के कुल कमरे तैयार हो जाने चाहिएं, इसके लिए काम पूरी तनदेही के साथ करना पड़ेगा। संत आत्मा सिंह ने हाथ जोड़कर कहा-महाराज, आपका वरद हाथ सिरपर होना चाहिए, गुरुभाइयों का सहयोग है ही, तब काम को पूर्ण कर लेंगे। मुझे आपके आशीर्वाद से ऐसा विश्वास है।

बहुत अच्छा! गुरु नानक देव तुम्हें सफलता प्रदान करें इस कठिन कार्य में, महाराज ने आशीर्वाद देते हुए कहा। तदनंतर काम बहुत तेज़ी के साथ आरंभ हो गया। मिस्त्री मजदूर पहले से दुगने कर दिए गए। सब गुरुभाई संत मिलकर, एक दूसरे से आगे बढ़कर हौसले से काम करने लगे और मजदूरों आदि से

तेजी से काम लेने लगे।

महाराज ने कहा आत्मा सिंह जिस चीज की कमी हो बताओ, माया की कमी हो तो धन ले जाना। कहीं ऐसा न हो कि किसी चीज की कमी के कारण काम में सुस्ती आ जाए। बाबा जी ने हौसला बढ़ाते हुए कहा तो संत आत्मा सिंह जी ने तुरंत भट्‌टे वालों को ईंट, चूना के लिए कह दिया। ईंट, पत्थर आने लग गया तो देहरादून से गार्डर, सरिया और इमारती लकड़ी आदि भी दनादन आनी आरंभ हो गई। संत आत्मा सिंह, संतोष सिंह आदि संतों ने जी तोड़ कर काम किया। फाल्गुन के अंत तक कमरों पर छतें डाल दी गईं। मिस्त्री मजदूरों को यथायोग्य ईनाम देकर काम मुल्तवी (स्थगित) कर दिया। संत आत्मा सिंह, संतोष सिंह आदि के अथक परिश्रम से सालों का काम महीनों में हो गया। लोग हैरान होते और कहते कि कोई भूत आदि बाबा जी के बस में है, वरना इतना काम इतने अल्प समय में कैसे हो सकता है। कुछ भी हो, पर इतना सत्य है कि तमाम काम अति तीव्र गति के साथ किया गया और बिना विघ्न बाधा के सम्पूर्ण हो गया। संत आत्मा सिंह आदि गुरुभाईयों की श्रद्धापूर्ण निष्काम सेवा की सराहना सर्वत्र हुई। महाराज तो बहुत ही प्रसन्न हुए।

❑

तरंग 31

अखाड़े से निमंत्रण

इधर महाराज को श्री महंत राम सिंह जी का बुलावा आ गया कि शीघ्र पधारने का कष्ट करें, ताकि कुंभ मेले का कार्यक्रम बना लिया जाए। कुल कार्यक्रम तैयार कराकर महाराज ऋषिकेश लौट आए और संत आत्मा सिंह को भरपूर राशन खरीद लेने का आदेश दिया। महाराज के आदेश के अनुसार संत आत्मा सिंह जी ने रसोई के काम में उपयोगी सब वस्तुएं खरीद कर रख लीं।

निर्मल अखाड़े का कनखल में आगमन

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार, चैत मास की कृष्णा एकादशी सन् 1914 को ज्वालापुर से निर्मल अखाड़े का शाही जुलूस निकलना था। निर्मल छावनी में भेष के शाही जुलूस को प्रवेश करना था। बाबा बुड्ढा सिंह जी एक दिन पहले दशमी के दिन ही पहुँच गए थे। इन दिनों निर्मल समाज में बाबा बुड्ढा सिंह जी का सर्वाधिक सम्मान था। भेष संबंधी किसी भी काम में आपकी राय को प्रमुखता दी जाती थी। श्री महंत जी के बाद आप ही को सर्वोच्च स्थान मिलता था। शाही जुलूस ने 10 बजकर 15 मिनट पर ज्वालापुर से प्रस्थान किया। श्री महंत जी महाराज के हाथी के पीछे सोने-चाँदी के हौदे और नक्काशीदार झूल से सजा आपका हाथी झूम-झूम कर चल रहा था। कुल 51 हाथी थे। इस शोभा यात्रा में घोड़े, पालकियाँ,नालकियाँ आदि से इस जुलूस की शोभा अकथनीय बन गई थी। ज्वालापुर एवं हरिद्वार के अपार जन समूह से भरे बाजारों से होता हुआ यह शाही जुलूस सवा-सात बजे निर्मल छावनी में प्रविष्ट हुआ, तो

आगमन की खुशी में छोड़े गए गोलों से दशों दिशाएं गूँज उठी थीं। अगले दिन द्वादशी को निर्मल धर्मध्वजा की पूजा हुई। सब से पहले उस समय की सर्वाधिक पूजा 101 रुपए से आपने की और पहले दिन का भंडारा भी आपकी ओर से हुआ। इसके बाद अगले दिन त्रयोदशी को गुरु नानक देव जी के चंदोआ के तले पावन गुरु-वाणी का कीर्तन गुरु-शब्द की कथा और विद्वान् महात्माओं के संभाषण शुरू हो गए जो लगातार महीना भर चलते रहे और गुरु का लंगर सर्व साधारण जनता के लिए जारी रहा।

❑

तरंग 32

ऋषि भूमि में पुनरागमन

सन् 1915 के कुंभ की बैसाखी का स्नान करके आप पुनः ऋषिकेश निर्मलाश्रम में आ गए और चलते समय श्री निर्मल अखाड़ा की रमता जमात को ऋषिकेश पधारने का निमंत्रण भी दे आए। इधर संत आत्मा सिंह जी ने आश्रम के कुल कमरों की सफाई करा ही रखी थी और जिस वस्तु की कमी थी वह पूरी कर ली थी। पहाड़ी प्रदेश के चार लड़के रसोई के काम के लिए एक महीने के वास्ते तनख्वाह पर रख लिए अब कोई चिंता न थी, जमात चाहे किसी दिन भी आ जाए।

निर्मल जमात (रम्मत अखाड़े) का आगमन

दस दिन हरिद्वार रहने के बाद रम्मत अखाड़ा शुभ संवत् 1972 में ऋषिकेश गया। बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज ने बाजे-गाजे के साथ निर्मल अखाड़े का शानदार जुलूस निकाला और भरत मंदिर के महंत साहिब से अखाड़े की दस दिन की रिहायश के लिए जो जगह माँग रखी थी उसी में रम्मत अखाड़े को ठहरा दिया गया। उन दिनों ऋषिकेश में निर्मल संप्रदाय का कोई स्थान नहीं था। जमात का कुल खर्चा बाबा जी ने स्वयं उठाया। 24 बैसाख 1972 को श्री अखंड पाठ का शुभारंभ किया गया।

चूँकि कुंभ-स्नान करके बहुत से विरक्त संत इधर-उधर चले गए थे और कुछ 'झाड़ी' में जा विराजे थे, संतों की उपस्थति ज्यादा नहीं थी। निर्मल, उदासीन सभी को निमंत्रण था। 'झाड़ी' से श्री 108 बाबा प्रेम सिंह जी और उनका विद्यार्थी मंडल, जिसमें स्वामी संत सिंह जी वेदांताचार्य, श्री 108 पंडित

सुच्चा सिंह जी, श्री महंत साहिब एवं स्वामी संतोष दास जी आदि प्रमुख थे, निर्मल आश्रम में पहुँच गए थे जिनको देखकर ऐसा लगता था जैसे स्वर्गलोक से देवर्षि-आश्रम पृथ्वी पर उतर आया हो। श्री बाबा प्रेम सिंह जी की मंडली के स्वागत में, रम्मत अखाड़े के रण सिंघे जंगल में सिंह-नाद की भाँति आकाश को गुँजाने लगे।

काशी की ओर का एक वैष्णव साधु गंगा-स्नान करके लौट रहा था। उसे संगम-गली में इधर से गंगा की ओर जाता हुआ दूसरा पूर्विया कबीर पंथी साधु मिला तो तत्काल यह गगन-भेदी ध्वनि उनके कानों में पड़ी तो दोनों में इस प्रकार बातें होने लगीं। कबीर पंथी-अरे ई का ! ई सोर कै सन वाय। बैरागी-अरे, तोके नाहि मालूम कि बुड्ढा बाबा के मकनवा में नानक-पंथी साधुअन कै अखाड़ा आयल बाय। कबीर-पंथी-अरे, के बुड्ढ़ा बाबा ! एठिन तो हजारन बुड्ढा घमत होई हैं। बैरागी-अरे ! एसन बुड्ढ़ा नाहि, उनकर नमवै बुड्ढासिंह बाबा हाउ। कबीर-पंथी-अरे, हाँ-हाँ अब याद भवा, सुनली तो हमउ हुई कि कौनो महंत बुड्ढा सिंह असंमवां बनौले बाटन। बैरागी- हाँ-हाँ भईया ! उनही के मकनवां में बाबा लोगन कै भंडरा बाया। क० पंथी-अच्छा ! अरे तब तो हलवा भी बांटल जाई। बैरागी-अरे अकेल हल्वै नाही। ओठिन तो सुनली है कि भारी भंडारा भी महात्मा लोग कै होई। क० पंथी-अरे तब चलल जाये ओहीठिन। बैरागी-अच्छा ठहरा तनी ! भरत मंदिलवा में गीला गमछवा डाल आई रसरी पर, तब स्वच्छ होकर चलल जाई। क० पंथी-अच्छा, जैसन तुहार इच्छा, देखे कहीं देर न लग जाय। बैरागी-देर कैसन हो जाई, तनिका तो कमवैं बाय। गमछा डारि कै तुरंतै लौटव।

लौटते हुए बैरागी ने कहा-निर्मल साधुओं के स्थान में जाय के बाय, सिरै पर कौनो पगड़ी गमछवा रख लेवे के चाहि। क० पंथी-अच्छा कहत होउआ भैया! गुरु नानक मंदिर में सिर ढ़के बगैर नाहि जाये के चाही। बैरागी-अच्छा,

होउरा जिन करा, कौनो भिखारी सुनी तो साथ हो जाई। इस प्रकार चुपचाप चलते हुए निर्मल आश्रम के समीप जा पहुँचे तो कबीर-पंथी साधु ने कुछ अनादर होने का संदेह व्यक्त करते हुए कहा-अरे बाबा ! बिना बुलौले जात हुई हम लोग, कौनो बेइज्जती कै देई तब? बैरागी-अरे कौनो डर नाही नानक पंथी बाबा एसन नाही कै सकत, कौने तरह घुस जैबै। कबीर पंथी-घुस तो जैबै अगर कोई अर्धचंद्रिका दैकै फेंक देई तब? बैरागी-ऐजी नाही, नानक पंथी समदर्शी होत हैं, ऐसन नाही कै सकत। क० पंथी-हाँ भईया ! ठीक हउ ई बतीआ। तभी तो बाबा नानक अपने ग्रंथ में कबीर साहिब कै बानी लिखले बाटन। बैरागी-ठीक तो बाय। कबीर साहब, गुरु नानक के घर में समदृष्टि देखकर ही तो लिखले हउयें-कबीर !

कबीर जिह दरि आवत जातिअहु हटकै नाही कोइ।।
सो दरु कैसे छोडीऐ जो दरु ऐसा होइ।। (पन्ना **1367**)

इस प्रकार दोनों साधु बातें करते हुए आश्रम में पहुँचे तो उन्हें आदर के साथ उचित स्थान पर बिठाया गया। कथा आरती हो ही चुकी थी, अरदास के बाद रणसिंघे की घनघोर के साथ पंगतें लगाई गयीं। भोजनोपरांत संत आत्मा सिंह जी ने सब संतों को सत्कार के साथ विदा किया। इस प्रकार निर्मल अखाड़ा, जो यहाँ पहली बार आया था आशातीत पूजा-प्रतिष्ठा पाकर वापस हरिद्वार 4 ज्येष्ठ संवत् 1972 को पहुँच गया।

इस कुंभ मेले में बाबा बुड्ढा सिंह जी की प्रतिष्ठा निर्मल संत समाज और भक्तों में बहुत बढ़ी और संत आत्मा सिंह जी की प्रसिद्धि भी बहुत हो गई।

❑

तरंग 33

फिर निर्माण की ओर

कुंभ-मेले के सामाजिक कार्यों से छुट्टी पाकर बाबा जी महाराज ने निर्माण कार्य की ओर पुनः ध्यान दिया। संत आत्मा सिंह और सब शिष्यों को सावधान करते हुए अपने काम का ध्यान दिलाया। सब संतों को संबोधित करते हुए महाराज ने कहा- देखो भाई ! दुनियादार लोग कहते हैं कि धन-दौलत और पुत्र आदि सब से प्यारे हैं, पर शास्त्र कहते हैं कि ''वितातुं प्रियः पुत्रः पुत्रात्वात्मा प्रियः'' भाव-धन-सम्पत्ति से पुत्र प्यारा है और पुत्र से भी आत्मा यानि अपना आप प्यारा है। महर्षि याज्ञवल्क ने भी अपनी साध्वी पत्नी मैत्रेयी को उपदेश करते हुए यही कहा है कि-

न पुत्र कामाय पुत्रः प्रियो भवति।
आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति।।
न भार्या कामाय भार्या प्रिया भवति।
आत्ममनस्तु कामाये भार्या प्रिया भवति।।

इसी प्रकार बेअंत वस्तुएँ गिनाकर अंत में कहा है-

न सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति
आत्ममकनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।।

पर हम तो कहते हैं कि आत्मा के लिए सब की अपेक्षा अपना कर्त्तव्य ही अति प्यारा होना चाहिए और यह बात है भी सही। सब प्रकार पूर्व पर का विचार करते हुए हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि सब से प्रिय अपना कर्त्तव्य है। अपना कर्त्तव्य पालन करते रहने से आत्मा में निर्मलता आती है। निर्मल आत्मा

ही परमात्मा के साथ अभेद हो सकती है, मलिन आत्मा नहीं। मलिन आत्मा तो परमात्मा का चिंतन भी नहीं कर सकती, मिलना तो दूर की बात है। प्रभु-चिंतन के द्वारा हम परमात्मा से जुड़ जाते हैं। बस यही तो योग है और इससे आत्मा में बल की वृद्धि होती है। बलवान् आत्मा ही परमात्मतत्व को जान सकती है। श्रुति कहती है-''वीर्यवान् पुरूषो वेदः'' इस प्रकार विचार करने पर यही सिद्धांत स्थिर होता है कि कर्त्तव्य पालन ही आत्मा का अधिक हितकारी एवं अति उपकारक होने से यही सब से अधिक प्रिय है। अतः मानव का अधिक ध्यान कर्त्तव्य पालन की ओर ही होना चाहिए।

जब सब भक्तों और विरक्तों की इच्छा से हमने आश्रम-निर्माण का कार्य आरंभ कर लिया है तब इसे सर्वांग सुंदर एवं पूर्ण किए बिना विश्राम की इच्छा को भी छोड़ देना चाहिए।

इस प्रकार महाराज के उपदेश से संत लोगों ने भजन चिंतन और जन-सेवा आदि पुनीत कार्य करते हुए निर्माण-कार्य को द्रुतगति से आगे बढ़ाया।

❑

तरंग 34

सिंहावलोकन

अब अपने स्नेही मित्र पाठकों को हम सिंहावलोकन न्याय से निकट अतीत की झाँकी दिखाना चाहते हैं। सन् 1895 (संवत् 1952) में महंत बुड्ढा सिंह जी के गुरु बाबा धर्म सिंह जी ब्रह्मलीन हो गए तो आप उदास होकर तीर्थ-यात्रा के लिए अमृतसर से हरिद्वार होकर इलाहाबाद पहुँचे तो श्री श्री 108 श्री महंत ऊधव सिंह जी ने योग्य साधु समझकर उन्हें आगे जाने से रोक लिया। उनके प्रेम पूर्ण बर्ताव से इनका मन वहाँ टिक गया। आखिर हर तरह योग्य साबित होने पर उन्हें अखाड़ा का मुखिया महंत नियुक्त कर दिया। सन् 1896 (संवत् 1953) के गोदावरी के कुंभ पर अखाड़ा लेकर आप त्रयंबक पहुँचे। वहाँ से लौटकर पंजाब-सिंध होते हुए सन् 1903 (संवत् 1960) में हरिद्वार के कुंभ पर पहुँचे। इस कुंभ पर आपने मुखिया पद से इस्तीफा दे दिया पर आपकी योग्यतापूर्ण सेवा को देखते हुए अस्वीकृत कर दिया गया।

ग्वालियर में

अनुनय विनय करने पर आपने कार्यभार संभाल लिया। सन् 1903 (संवत् 1960) के कुंभ से आप उत्तरप्रदेश में घूमते हुए ग्वालियर पहुँचे। यहाँ अखाड़े ने अच्छी प्रतिष्ठा पाई। यहाँ के लोगों ने अच्छी आव-भगत व सेवा की। बाबा जी और उनके अनेक साथी संतों की प्रशंसा राज-भवन तक पहुँची। एक दिन महाराजा ने उच्चाधिकारी द्वारा निमंत्रण भेजा जो स्वीकार कर लिया गया। नियत दिन अखाड़े को भंडारा दिया गया। महाराजा ने बाबा जी के साथ दो घंटे तक वार्तालाप किया। बाबा जी के साथ हुए वार्तालाप से महाराज बहुत प्रभावित

हुए और किसी वर्ष चातुर्मास लगाने की प्रार्थना की तो बाबा जी ने कहा-भले ही अगर संयोग बना तो आप से भेंट होने पर मुझे बड़ी खुशी होगी।

महाराजा और उनकी प्रजा ने, निर्मल अखाड़े की पूजा-प्रतिष्ठा की और श्रद्धापूर्ण रीति से विदा किया। वहाँ से दिल्ली होते हुए पंजाब आ गए। हरिद्वार पहुँच कर महंत बुड्ढा सिंह जी ने फिर त्यागपत्र दे दिया। बहुत अनुनय विनय किए जाने पर भी आपने असमर्थता प्रकट करते हुए सेवा से बिलकुल इनकार कर दिया।

ग्वालियर से पुनः बुलावा

इसके अनंतर आप तो मंडली लेकर सिंध में और कभी पंजाब में घूमते रहे और ग्वालियर के महाराजा बात भूल गए या कोई सुअवसर न मिलने के कारण से न बुला सके। पर आखिर उन्हें बात याद आई तो उन्होंने हरिद्वार अखाड़ा में चातुर्मास लगाने की प्रार्थना की तो श्री 108 श्री महंत राम सिंह जी ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। तदनुसार पंचायती अखाड़ा की जमात ने पंजाब से ग्वालियर की ओर प्रस्थान कर दिया। कुछेक दिन पटियाला राज्य में गुरु नानक मिशन का प्रचार करती रही और आषाढ़ के आरंभ में ग्वालियर पहुँच गई।

चूँकि निर्मल अखाड़ा कुंभ आदि के अवसर पर मुल्लां-मुदारी के बाग में ध्वजारोपण किया करता है अतः इस अवसर पर भी अखाड़े ने उसी बाग में उतारा किया। श्री महंत साहिब व श्री श्री 108 पंडित राम सिंह जी भी पहुँच गए। पंडित मूल सिंह जी (खैराबाद वाले), पंडित अतर सिंह जी (भूतां वाले), पंडित अवतार सिंह जी (काशी वाले), पंडित सुच्चा सिंह जी (संगतपुरा वाले), पंडित गुरुमुख सिंह जी (ननकाना वाले), पंडित राम बसन्त सिंह जी (पटियाला वाले), पंडित भानु सिंह जी (कोकरी वाले) , पंडित हरनाम सिंह जी (लाहौर वाले), आदि दिग्गज विद्वान् और अनेकों विरक्त महात्माओं से निर्मल अखाड़ा शोभायमान था। निर्मल चंदोए के नीचे श्री गुरु ग्रंथ साहिब की हजूरी में भारी

सभा लगती। विद्वान् महात्माओं के सारगर्भित भाषणों से जनता बहुत प्रभावित होती थी। महाराजाधिराज ग्वालियर की ओर से लंगर का अच्छा प्रबंध था। चौथे दिन स्वयं महाराजझ महात्माओं के दर्शन के लिए निर्मल चंदोआ के नीचे सुसज्जित पंडाल में पधारे थे। विद्वान् महात्माओं के भाषण सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। सभा समाप्ति के अनन्तर महाराजा साहब ने श्री महंत पंडित राम सिंह जी के चरणों को छूकर प्रणाम किया। परस्पर कुशल प्रश्नानंतर, महाराज ने विनीत भाव से पूछा–महाराज जी, महंत बुड्ढा सिंह जी महाराज के दर्शन नहीं हुए। वे पधारे हैं कि नहीं? उत्तर में श्री महंत जी ने कहा–उनसे प्रार्थना तो की थी, पर वे आ नहीं सके। महाराजा साहिब ने फिर विनीत स्वर में कहा– महाराज! उन्हें तो अवश्य बुलाना चाहिए। श्री महंत जी महाराज ने कहा–वह आश्रम बनवा रहे हैं, शायद वह न आ सकें। यहाँ बहुत बड़े-बड़े विद्वान् दर्शन दे रहे हैं। कोई कमी भी नहीं है तो महाराजा साहब ने कहा–यह सब ठीक है, विद्वान् और ऋषि तुल्य ज्ञानवान और वीतराग तपस्वी महात्मा हैं। उनकी योग्यता में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। अतः हमारे लिए सभी नमस्य हैं। पर फिर भी महंत बुड्ढ़ा सिंह जी के बिना तो ऐसा लगता है जैसे चंदन तरु बिना सुंदर उपवन। इस संदर्भ में मुझे किसी सुकवि की सूक्ति याद हो आयी है–

शील विना श्रृंगार शुभ जप तप बिना ज्ञान।।
कहु सखी कहूं सुहात है वृन्दाबन बिनु कान।।

प्राचीन ही नहीं किंतु किसी नूतन कवि ने भी कुछ ऐसा ही भाव व्यक्त किया है–

जपतप योग यज्ञ भलो करै,
वेद-पाठ बिना ब्रह्मज्ञान कैसे पावै परम धाम को।।
ताज विना राज, न बैकुण्ठ बिना विष्णु के,
चन्दन बिना न शोभा वन अभिराम को।।

भली कुन्ज गली चली जात हो असंख सखी,
वृन्दावन उन दर्शन बिना याम को।।
घूमत देवांगना स्वच्छन्द जामै देवगण,
बिना राजा इन्द्र नन्दन किस काम को।।

महाराजा की दृढ़ धारणा को देखकर श्री महंत साहिब ने सुझाव दिया कि एक संत हम अखाड़े की ओर से भेज देते हैं और एक कर्मचारी आप अपनी ओर से ऋषिकेश भेज दीजिए। इस प्रकार आपके प्रेम से शायद आना स्वीकार कर लें। महाराजा ने स्वीकार किया और दोनों आदमी गए और जाकर श्री महंत एवं महाराजा का संदेश सुनाया तो महाराज बाबा बुड्ढा सिंह जी, आश्रम का निर्माण कार्य संत आत्मा सिंह जी को सौंप कर ग्वालियर की ओर प्रस्थान कर गए। संत संतोष सिंह को साथ लेकर आप ग्वालियर पहुँचे तो सब संतों ने आपका सहर्ष स्वागत किया। महाराजा साहब ने बड़ा ही हर्ष मनाया। चार मास तक निर्मल अखाड़े की जय-जयकार होती रही, क्योंकि महात्माओं ने लगातार चार मास तक प्रभु नाम का अमृत नगर निवासियों को पिलाया जिसे पीकर उनकी आत्मा सम्यक् संतृप्त हुई।

अखाड़े ने जब प्रस्थान की तैयारी की तो महाराजा ने गुरु नानक के दरबार में हाजिर होकर राजदरबार में पुत्र-रत्न के अभाव का जिक्र किया तो श्री महंत जी ने बाबा बुड्ढा सिंह जी से अरदास करने की प्रार्थना की। तब आपने भक्तवत्सल गुरु बाबा के दरबार में सुधा स्त्रावी शब्दों में अरदास की और अंत में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ निम्नांकित पंक्तियों का उच्चारण करते हुए-

जो मागहि ठाकुर अपुने ते सोई सोई देवै।।
नानक दासु मुख ते जो बोलै ईहा ऊहा सचु होवै।। (पन्ना **681**)

अरदास समाप्त की तो गुरु नानक देव की जय के गगन-भेदी उद्घोष से दशों

दिशाएं गूँज उठीं। जय-घोष की शांति के साथ ही श्री ग्रंथ साहिब से श्री मुखवाक लिया गया तो गुरु रामदास जी का निम्नलिखित शब्द आया-

धनासरी महला ४।।
इछा पूरकु सरब सुखदाता हरि जा कै वसि है कामधेना।।
सो ऐसा हरि धिआईऐ मेरे जीअड़े ता सरब सुख पावहि मेरे मना।। १।।
जपि मन सति नामु सदा सति नामु।।
हलत पलति मुख ऊजल होई है नित धिआईऐ हरि पुरखु निरंजना।। रहाउ।।
जह हरि सिमरनु भइआ तह उपाधि गतु कीनी वडभागी हरि जपना।।
जन नानक कउ गुरि इह मति दीनी जपि हरि भवजलु तरना।। २।।

(पन्ना **669-70**)

इसके बाद कड़ाह प्रशाद भरपूर मात्रा में बाँटा गया। इस दिन महाराजा की ओर से भारी यज्ञ किया गया जिसमें न केवल साधु ब्राह्मणों ने ही प्रत्युत प्रत्येक भोजनाभिलाषी ने मन भाया भोजन पाया। अगले दिन महाराजा ने सब महात्माओं के गले में फूल मालाएं पहनाईं। सवेरे सवा सात बजे जमात ने पंजाब की ओर प्रस्थान किया। श्री महंत जी और बाबा बुड्ढा सिंह जी ने महाराजा को शुभ आशीर्वाद दिया और महाराजा की हरी कार में सवार होकर स्टेशन पर पहुँचे। जमात ग्वालियर से पंजाब को रवाना हो गई। महाराज श्री महंत साहिब एवं बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज कनखल पहुँच गए।

संत आत्मा सिंह जी कनखल आ गए। बाबा जी संत आत्मा सिंह जी व संत संतोष सिंह जी आदि ने दो दिन में सब निर्मल स्थानों की और उदासीन अखाड़ों की यात्रा की और तीसरे दिन कनखल से ऋषिकेश पहुँच गए। ❑

तरंग 35

फिर नज़रे तामीर

इधर चतुर्मास के काम से निवृत्त होकर बाबा जी ने तामीर (इमारत निर्माण) की तरफ नज़र घुमाई। इमारत का कुछ काम बाकी पड़ा था, उसे पूरा करने के लिए संत आत्मा सिंह जी की तवज्जो (ध्यान) दिलाई। बस फिर क्या था, संत आत्मा सिंह जी तो जानते ही नहीं थे कि थकावट किस चिड़िया का नाम होता है। तो हुक्म की तामील करना जानते थे और जानते थे कि 'आज्ञा सम नहीं साहब सेवा'। दूसरे लफ़्ज़ों (शब्दों) में यों कहा जा सकता है कि वे एक फर्ज़ शिनास नेक इंसान थे और गुमानो गरुर से बिलकुल दूर। मकान के मुखिया होने के नाते उनका फर्ज़ था मुर्शिदों के इशारों को देखते रहना और इस फर्ज़ को वह ठीक तरह निभाते थे। फर्ज़े मुश्किल को पूरा करने के पाक हुनर की वजह से महाराज की मेहरबानी के हकदार बन गए थे। हाथ जोड़कर संत आत्मा सिंह जी ने कहा–महाराज! काम करने की ताकत भी हुजूर ने ही अता करनी (देनी है) है और उसे किस ढंग से किया जाए इसकी अक्ल देने वाले भी आप ही हैं।

काठ की पुतरी कहा करै बपुरी खिलावनहारो जानै।।
जैसा भेखु करावै बाजीगरु ओहु तैसो ही साजु आनै।। (पन्ना **206**)

के मुताबिक हम तो मशीन के मानिंद (जैसे) हैं जैसे आप चलाएंगे चलता चलूंगा। बाबा ने भरे दिल से कहा–बेटा तुम ठीक कहते हो? भगवान राम ने नरमाई की खासियत की वजह से ही, मानिंद मौत के सख्त कुल्हाड़े की तेजधार से छत्री (क्षत्रिय) कुल की जड़ को काट फेंकने वाले परशुराम से सब कुछ छीन

लिया था। इसी तरह गर (यदि) तुम भी मेरी कुल ताकतों को छीन लो तो इसमें ताज्जुब (आश्चर्य) की बात ही क्या है? यह कहते हुए बाबा जी साहिब ने दरियाए खुशी में सराबोर होकर प्यारे मुरीद को सीने से लगा लिया और दुआ देते हुए कहा-बेटा , तुम सब कुछ कर लोगे। तुम्हारे सिर पर बाबा नानक साहिब का दस्ते मुक्कदस (आर्शीवाद) है। वे तुम्हारे ऊपर मुसलसल (लगातार) बारिशे रहमत कर रहे हैं। अच्छा जाओ, चाय तैयार करो, बाबा ने निहायत (बहुत) खुश होकर हुक्म दिया। संत आत्मा सिंह जी चाय बनाने लगे।

लो अच्छा हुआ, यहीं दर्शन हो गए। हम सोचते थे, महाराज सैर को गए होंगे, यह कहते टोपनदास ने महाराज के कदमे पाक (पवित्र चरण) पर सिर रख दिया और मंघाराम ने दंडवत प्रणाम किया। महाराज ने कदमों पर से सिर उठाते हुए कहा-बेटा राजी हो। हाँ महाराज! आपकी दुआ से सब ठीक है, टोपनदास ने खुशी जाहिर करते हुए कहा। मंघाराम! बेटा तुम बताओ सब खैरियत है? महाराज! नजरे कीमियां से महसूस कर रहा हूँ कि लोहे से लाल बन गया हूँ, मंघाराम ने सिदक ज़ाहिर करते हुए कहा। अच्छा! हैदराबाद के और प्रेमियों के घर तो सब खैरियत है, बाबा साहिब ने मोहब्बत से पूछा। ''बस दीदार के इंतजार में तड़प रहे हैं सब, और हुजूर की दुआ से खैरियत है,'' मंघाराम ने आने का मकसद (आशय) ज़ाहिर करते हुए कहा।

इतने में संत आत्मा सिंह जी ने चाय का लोटा लाकर बाबा साहिब की चौकी पर रख दिया। 'सादिक मुरीदों' से एक दूसरे की खैरियत पूछने के बाद प्रेमियों के आगे भी चाय के गिलास रख दिए। चाय का घूँट पीकर महाराज ने पूछा- कितना समय लेकर आए हो टोपनदास ! वक्त कहाँ, साईंबाबा? माया के कीड़ों की हिदायत लेकर आए हैं, आपके सादिकों की, कि दो दिन से ज्यादा मत लगाना, टोपनदास ने गोल लफ़्ज़ों (शब्दों) में चलने की ख्वाहिश को छिपाकर कहा। अच्छा, टोपन लोगों का यह ख्याल कि सिंधी भोले होते हैं, एकदम गलत है। तुमने कुछ न कहकर भी सब कुछ कह डाला। यानि (अर्थात) एक तरह से

हमें हुक्म सुना दिया चलने का, महाराज ने उसकी दानिशं-मंदी (समझदारी) पर खुश होकर कहा। नहीं महाराज खाद़िम (नौकर) तो खिद़मत (सेवा) ही कर सकता है, हुक्म करने की हिमाक़त (बेवकूफी) कैसे कर सकता है। हम तो गुज़ारि़श (प्रार्थना) ही कर सकते हैं कदमें पाक में बैठ कर।

इस तरह मोहब्बत के अंदाज में बातें करते हुए चाय खत्म की। इसके बाद महाराज, रोज़ के दस्तूर के मुताबिक (अनुसार) शाम की सैर के लिए निकल गए। संत आत्मा सिंह जी ने आए मेहमानों के सोने का इंतजाम किया। नहाने वगैरह की जगह बताकर रात के सोने का इंतजाम करने लग गए। महाराज के आने पर संत करतार सिंह ने रहरास का पाठ किया। रहरास व अरदास के बाद सभी ने महाराज के चरणों में प्रणाम किया। संत आत्मा सिंह जी ने खाना थाली में लगाकर महाराज के सामने चौकी रख दी। बाद में सब संतों और भक्तों ने भोजन पाया। इसके बाद सब लोग महाराज के पास गए। संत आत्मा सिंह जी और संत संतोष सिंह जी बाबा जी के पाँव दबाने लग गए। बाबा जी ने डेरे संबंधी और बातें करके, मस्ताने भक्त सूरदास की दास्ताने ज़िंदगी (आत्म कथा) सुनाई और उस के बाद सबको सोने की इजाज़त मिल गई। दूसरे दिन सुबह संत आत्मा सिंह जी उठे और गुस्ल वगैरा से फारिग होकर, बाबा जी को स्नान कराकर फिर गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश करके धूप बत्ती की। अपने कमरे में जो कि उनकी अपनी इबादतगाह (पाठ-पूजा स्थल) थी, जाकर रोज की तरह जपु जी साहिब आदि का पाठ किया। इसी तरह दूसरे संतों ने भी पाठ आदि किया जो उनकी रूहानी खुराक थी। इसके बाद महाराज के चरणों में नमस्कार की। चाय आदि नाश्ता करके महाराज ने सादिक मुरीदों के साथ मारफत बातें की और संतों से कहा, लो भाई हम तो कल हरिद्वार होते हुए सिंध को चले जाएंगे, तुम लोग मेल मिलाप और मोहब्बत से रहना। याद रखो तुम्हारी आवाज़ मकान की चार दीवारी के बाहर न निकले। ❑

तरंग 36

प्रस्थान के समय शिष्यों को उपदेश

प्यारे जिज्ञासुओ ! यदि तुम लोग सचमुच कुछ जानना चाहते हो तो इन बातों को माला के मोती की तरह मन में पिरो लो। सत्संग और गुरुवाणी का विचार कभी नहीं छोड़ना वेद में उपदेश दिया गया है कि- स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।

भावार्थ यह है कि स्वाध्याय एवं प्रवचन से कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। पहले प्रमाद का अर्थ समझ लीजिए। सुविज्ञ जनों ने प्रमाद शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है-

प्राप्तस्य कर्त्तव्य अकरणम् प्रमादः भाव-अपने आवश्यक कर्त्तव्य से विमुख हो जाना, इसे प्रमाद कहते हैं। आध्यात्मिक पुरुषों के लिए परम कर्त्तव्य है-गीता, गुरुवाणी और वेदशास्त्र का स्वाध्याय करना। स्वाध्याय का भाव है-एकांत में स्थिर चित्त होकर स्वयं अध्ययन करना। खुद-ब-खुद वेदादि सद्ग्रंथों का विचार करते रहना क्योंकि यह आत्मा की खुराक है। जैसे हम शक्तिवर्धक फल, घी, दूध एवं अन्न-जल आदि से कभी प्रमाद नहीं करते बल्कि शरीर की पुष्टि के लिए निरंतर इनका सेवन करते रहते हैं, वैसे ही दिव्य, शांत, आध्यात्मिक लाभ के लिए हमें श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करते रहना चाहिए।

प्रवचन का अर्थ है-भाषण, विद्वान् महात्माओं के प्रवचनों को श्रद्धापूर्वक सुनते रहना चाहिए। इससे विवेक वैराग्य आदि सद्गुणों की वृद्धि होती है, जो आत्म-ज्ञान में परम सहायक है।

इतना उपदेश देकर महंत बुड्ढा सिंह जी कार्तिक सुदी दशमी सन् 1918 (सवंत् 1975) को हैदराबाद सिंध के लिए रवाना हो गए। ❑

तरंग 37

हैदराबाद में

हरिद्वार होते हुए आप शुक्ला चतुर्दशी को श्री टोपनदास के घर हैदराबाद पहुँच गए। अगले दिन कार्तिक पूर्णमासी को श्री गुरु नानक देव जी के जन्मोत्सव के पावन पर्व पर धर्मशाला (गुरुद्वारा) में जाकर आपने बहुत विस्तृत भाषण दिया। श्री गुरु नानक देव के जगत कल्याण हित किए महान कार्यों पर अनूठे ढ़ंग से प्रकाश डाला। इस मीठे और महत्त्वपूर्ण भाषण से श्रोता बहुत प्रभावित हुए। सैंकड़ों श्रद्धालुओं ने आपके चरणामृत का पान किया और गुरुवाणी के प्रेमी बने। बहुत से किशोर एवं युवक नास्तिकता का आग्रह छोड़कर गुरुवाणी के श्रद्धालु एवं आस्तिक बन गए।

भगवान जाने आप में कोई आध्यात्मिक शक्ति का अनंत भंडार था या आपके महान् व्यक्तित्व में अभूतपूर्व आकर्षण था अथवा लोगों की श्रद्धापूर्ण भक्ति और अचल विश्वास का परिणाम था पर यह एक सूर्यवत देदीप्यमान ध्रुव सत्य है कि बहुत लोगों की मान्यताएं एवं कामनाएं आपके कल्पतरु चरणों के प्रताप से पूर्ण होती थीं। आपको एक नगर से दूसरे नगर जाना बहुत कठिन होता था फिर भी अन्य नगर निवासियों की श्रद्धा भक्ति वशात! दूसरे शहरों में पहुँचने का मुश्किल काम भी कदाचित करना ही पड़ता था। सो सिंध प्रदेश के इस दौरे में आपको प्रांत के सात-आठ शहरों में जाना पड़ा।

भारत-भूमि के भूषण रूप इस भूखंड के निवासी लोगों को श्री गुरु नानक देव के दिव्य संदेश सुनाकर एवं वाहिगुरु नाम का अमृत पिलाकर आप सन् 1919 को बैसाखी के पवित्र पर्व पर हरिद्वार पहुँच गए। इस बार निर्मल बाग

कनखल में आप दो-ढाई महीने ठहरे। यहाँ पर बाग और उसमें बनी कोठी का काम आगे बढ़ाया। संत आत्मा सिंह जी भी यहाँ रह कर काम करने लगे। बड़े साहब सिंह जी यहीं आकर चेले (शिष्य) बने। संत साहब सिंह और संत संतोष सिंह आदि ने इस स्थान में बहुत सेवा की। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यदि इन दोनों कर्मठ संतों की सेवा न मिलती तो यहाँ कुओं जैसे गहरे गड्ढों को भर सकना अति कठिन था। कनखल कोठी और बाग का बहुत-सा काम करा कर आप संत आत्मा सिंह जी को साथ लेकर निर्मल आश्रम, ऋषिकेश में आ गए। यहाँ पहुँच कर संत आत्मा सिंह जी ने बद्रीनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री आदि उत्तराखंड के मह वपूर्ण तीर्थ-स्थानों की यात्रा करने की आज्ञा माँगी। इसमें संदेह नहीं कि ऐसे कठिन काम के समय इतनी बड़ी यात्रा के लिए आज्ञा प्रदान करनी महाराज के लिए कठिन बात थी परंतु प्रिय शिष्य की तीर्थ यात्रा की उत्कट इच्छा को देखते हुए मानना ही पड़ा।

❑

तरंग 38

उत्तराखंड की यात्रा

'धन्य गुरु नानक', 'जय बाबा श्री चंद्र'! अति प्यारे और मनोहारी इस पवित्र उद्घोष को सुनकर आत्मा सिंह जी आनंदपूर्ण चकित नेत्रों से इतस्ततः देखने लगे। कहाँ से आ रही है यह मीठी आवाज़? कौन है यहाँ प्यार के देवता, गुरु नानक नाम का दीवाना। इतने में एक निर्बाण महात्मा, जो कि देव-प्रयाग के संगम में स्नान करके लौट रहे थे, को देखा। उनके हर्ष एवं आनंद का पारावार न रहा और उन्होंने 'जय निर्बाण महापुरुषों की' कहकर सादर नमस्कार किया तो सामने आने वाले महात्मा जी ने भी हर्षोल्लास के साथ अभिवादन किया। इस प्रकार परस्पर स्नेह-पूर्ण अभिवादन और कुशल-प्रश्न के बाद निर्बाण जी ने पूछा-आप कब पधारे यहाँ? तो संत आत्मा सिंह जी ने कहा-महाराज मैं तो कल शाम को ही यहाँ पहुँचा हूँ। अच्छा, तो आप काली कमली वाले की धर्मशाला में ही ठहरे होंगे, निर्बाण जी ने पूछा। संत आत्मा सिंह जी ने कहा-जी हाँ, वहीं ठहरा हूँ। महाराज-अच्छा, तो आप अलकनंदा और भागीरथी के संगम पर स्नान कर आइए तो फिर बातचीत करेंगे। मैं भी उसी धर्मशाला में ठहरा हूँ, निर्बाण जी ने वार्तालाप समाप्त करते हुए कहा। संत आत्मा सिंह जी ने संगम पर स्नान किया और किनारे बैठ कर 'जपु जी साहिब' का पाठ पूर्ण किया और सुखमनी साहिब जी का पाठ करते हुए धर्मशाला में आए और उसकी समाप्ति कर, निर्बाण महात्मा से मिले। शिष्टाचार के अनंतर संत आत्मा सिंह जी बाजार से चाय ले आए और दोनों महात्माओं ने नाश्ता किया। वार्तालाप में संत आत्मा सिंह जी के पूछने पर निर्बाण जी ने बताया कि मैं

आज़मगढ़, उत्तर प्रदेश से परसों यहाँ आया हूँ। गुरुशरण दास उदासीन मेरा नाम है, वहीं पर मेरा पवित्र गुरु-स्थान है। आप कहिए कहाँ से पधारे हैं? संत आत्मा सिंह जी ने कहा-मेरा गुरुस्थान ऋषिकेश में ही है, मैं परसों 2 श्रावण सन् 1919 को वहाँ से चलकर महादेव चट्टी ठहरा और वहाँ से व्यास चट्टी होता हुआ कल यहाँ पहुँचा हूँ। अच्छा! बहुत साहस का काम किया आपने जो दो दिन में चालीस मील रास्ता तय कर लिया। हाँ, तो यह मालूम है आपको कि देवप्रयाग समुद्र की सतह से कितनी ऊँचाई पर है, निर्बाण ने पूछा। जी हाँ, ऋषिकेश 1100 फीट और यह देवप्रयाग 1700 फीट की ऊँचाई पर स्थित है।

इस प्रकार ये लोग बातें कर ही रहे थे कि सामने से आते हुए एक वैरागी साधु ने कहा-सीताराम तो उत्तर में इन लोगों ने भी जय श्री सीताराम कहकर वैष्णव साधु का सादर अभिवादन किया और उन्हें उचित स्थान देकर नाश्ता कराया। इसके बाद बाबा जी ने संगम स्नान की इच्छा व्यक्त की और स्नान करने चले गए। स्नान आदि कार्य से निवृत्त हो कर वापस आकर बैठे तो कहने लगे-यहाँ देवप्रयाग में भगवान श्री रघुनाथ जी का मंदिर है। मैं जाकर यामवर्ण प्रभु के दर्शन कर आऊं। तो इन दोनों महात्माओं ने कहा कि हम भी साथ चलते हैं, रघुनाथ जी के मंदिर में दर्शन के लिए, भगवान तो सभी के आराध्य देवता हैं। सभी देव विग्रह सभी के लिए दर्शनीय होते हैं। तीनों संत रघुनाथ जी की भव्य मूर्ति के दर्शन कर धर्मशाला में लौट आए। उदार आत्मा संत आत्मा सिंह जी बाजार से पूड़ी मिठाई ले आए और तीनों तीर्थ सेवी संतों ने प्रसन्नता पूर्वक भोजन पाया। कुछ आराम करने के बाद उदासीन बाबा ने कहा-बाबा जी क्षमा करेंगे आप, हम आपके शुभ नाम आदि से परिचित होना चाहते हैं। वैष्णव बाबा ने कहा-हाँ-हाँ, इसमें क्षमा की कौन सी बात है, मेरा नाम है-गुरु का दिया भेष, भगवान का दिया श्री श्री रघुवीर चरण-रेणुदास। कई एक महात्मा चरणरेणु या रेणु अथवा रेणुदास भी कहते हैं। मैं रहने वाला हूँ, गांव शेरपुर

जिला छपरा बिहार का, शेरपुरा में मेरा गुरु स्थान है।

अच्छा आप यह बताइए कि कभी पहले भी इस यात्रा पर आए हैं आप लोग? वैष्णव ने पूछा। दोनों महात्माओं ने कहा-नहीं। हम तो पहली बार ही आए हैं इधर। अच्छा कोई बात नहीं, मैं पहले एक बार हो गया हूँ, अतः रास्ते से परिचित हूँ, आप कोई चिंता न करें, वैरागी ने आश्वासन देते हुए कहा। इसके बाद तीनों महात्मा संगम आदि की मनोहारी दृश्यावली देखने गए। सायंकालीन संध्यावंदनादि के अनंतर रात्रि भोजन करके धर्मशाला के कर्मचारियों से यात्रा की कठिनाइयों और मार्ग के बारे में पूछ-ताछ करके अपने-अपने आसनों पर आ बैठे और महापुरुषों की दिव्य जीवनियों की कथाएं कहते सुनते रहे। रात्रि 10 बजे ईश्वर-चिंतन करते हुए सो गए। प्रातः संगम-स्नानादि नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर, जल-पान आदि करके और आगे यमुनोत्री की यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

❑

तरंग 39

यमुनोत्री-यात्रा

ऋषिकेष से देवप्रयाग 44 मील है। आगे अलकनंदा को पार कर भागीरथी के किनारे-किनारे यमुनोत्री को रास्ता जाता है। देवप्रयाग से टिहरी 34 मील की दूरी पर है। यही नगरी टिहरी राज्य की राजधानी भी थी। पूर्वोक्त तीनों यात्री महात्मा, खर्साड़ा और कोटे वर होकर टिहरी पहुँचे। यह सुंदर नगरी समुद्र की सतह से 2900 फुट की ऊँचाई पर है, इसे तत्कालीन राजा सुदर्शन ने बनवाया था। इससे 9 मील आगे प्रतापनगर है जो सागर की सतह से 7900 फुट की ऊँचाई पर बताई जाती है। यह 1878 के करीब राजा प्रतापशाह ने बनवाया था। भिलंगना नदी के किनारे के रास्ते से केदार अंदाजन (लगभग) 72 मील है। यमुनोत्री 74 और गंगोत्री 100 मील बताई जाती है। टिहरी से उत्तरकाशी दो दिन में पहुँचे। धरासू से 29 मील चलकर सिमली पहुँचे। यहाँ से एक मार्ग उत्तरकाशी की ओर जाता है। सिमली से 2 मील फासले पर गंगनानी है। इस जगह यमुना के किनारे कुंड है जिसे गंगा का कुंड कहा जाता है। यहाँ की धर्मशाला में रात बिता कर यमुना किनारे-किनारे संत यात्री आगे बढ़े। गंगनानी यमुना चट्टी से मार्ग सीधा है। यहाँ से रोजरी चट्टी और डडोरी चट्टी आती है। यहाँ कुछ मार्ग सीधा एक मील चढ़ाई के तय करने पर आगे पुल पार कर लेने के बाद थोड़ा चढ़ाई है। डडोरी राना गाँव से कुतनौर चट्टी तक कुछ मार्ग सीधा है। यहाँ तक लोग बस द्वारा भी जाते हैं। यहाँ रात बिताई। आगे हनुमान गंगा का पुल पार कर खरसाली 4 मील है। अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य देख कर प्रभु! तेरी महिमा अपरंपार है कहते हुए शौच गए और चशमे के पानी में हाथ

आदि धोए और यमुना स्नान किया। वहीं उनकी यादगार एक बुर्जी के रूप में देखी जाती है। संत आत्मा सिंह जी ने इसी यादगार के दर्शन किए और फूल-बाती चढाई। श्रद्धा व्यक्त की और पंडा को यथोचित पुरस्कार देकर यमुना मंदिर के पास चुन्नू भाई वाली धर्मशाला में वापस आ गए। यहाँ तीनों महात्मा दो दिन स्नान, दान, स्मरण जप आदि करके जीवन की अनमोल घड़ी को सफल बनाते रहे।

उत्तरकाशी और यमुनोत्री के पंडा लोग यहीं रहते हैं। यहाँ से डेढ़ मील चलकर यमुनोत्री पहुँच जाते हैं।

हिमालय के मूल से जहाँ से यमुना निकलती है उसी चशमे के स्थान को यमुनोत्री कहते हैं। यह सागर की सतह से 10,000 फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ एक यमुना मंदिर भी है एवं चुन्नू माधोलाल जी अहमदाबाद और मुराद के लाला रघुनंदन की धर्मशालाएं भी हैं। यहाँ एक ओर तो यमुना जी की शीतल धारा बह रही है और दूसरी ओर अत्युषण जल के चशमे मन में कौतूहल उत्पन्न करते हैं। यहाँ की दृश्यावली का नजारा (दृश्य) अति सुंदर है।

यहाँ आकर संत आत्मा सिंह जी को तपोधन महापुरुष ब्रह्मलीन बाबा खुदा सिंह जी की याद सहसा (अचानक) हो आई। वे मस्त फकीर यहाँ पर भी नग्नावस्था में ही रहते थे। उनकी संकल्पशक्ति के बारे में एक कथा प्रचलित है-यहाँ पर जब उनको शौच की हाजत हुई तो यमुना जी में शौचादिक्रिया करना अनुचित समझा। पात्र आदि पास रखते ही न थे, अतः शौचादि क्रिया असंभव देखकर दृढ़ संकल्प किया कि जब तक यमुनाजल से अतिरिक्त जल उपलब्ध नहीं होगा तब तक शौचादि नहीं करेंगे। बस पलथी लगाकर बैठ गए। फिर क्या था, सवेरे देखते हैं कि केवल 4 फुट की दूरी पर निवदए जल चशमा बह रहा है। ठीक तो कहती है गुरुवाणी-

जो जो चितवहि साध जन सो लेता मानि।। (पन्ना **817**)

❑

तरंग 40

उत्तरकाशी की ओर

यात्री महात्मा यमुनोत्री से 25 मील पूर्वोक्त मार्ग से लौटे। आगे सिमली से डेढ़ मील तक मार्ग सीधा है। इससे आगे आधा मील चढ़ाई चढ़कर साढ़े तीन मील सिंगोट तक निचाई में उतरना होता है। इस तरह सिमली से साढ़े सात मील चलकर सिंगोट आ गए। इस जगह से उत्तरकाशी गंगोत्री वाले रास्ते में एक मील सीधा और डेढ़ मील उतार का रास्ता पार कर नाकोरी चट्टी आती है। नाकोरी से एक रास्ता यमुनोत्री को और इसी तरह सीधा गंगोत्री को जाता है।

उत्तरकाशी

नाकोरी से उत्तरकाशी 6 मील की दूरी पर है। ऋषिकेश व देवप्रयाग से उत्तरकाशी पहुँचने में इन तीर्थ-यात्री महात्माओं को लगभग डेढ़ महीना लग गया। यह नगरी उत्तराखंड का अति उत्तम और पावन तीर्थ स्थान है। अब तो यह उत्तराखंड का एक जिला बना दिया गया है। यहाँ जीवनोपयोगी सभी वस्तुएं आसानी से मिल जाती हैं।

यह वीतराग तपस्वी मोक्षकामी मुनि-जनों, प्रभु-प्रेमी भक्तों एवं धार्मिक लोगों की पावनतम भूमि है। इस धराधाम के भूखंड का कण-कण स्वर्ग समान वांछनीय मौक्ष एवं अर्चनीय है। यहाँ अनेकानेक संसार-मोह निर्मुक्त सिद्ध योगी कैवल्य प्राप्त करके मानव-जीवन को सफल बनाते रहे हैं। ऐहिक एवं पारलौकिक पदार्थों से पूर्ण वैराग्य धारण कर कितने ही सत्यान्वेषी महापुरुष कठिनतम साधना के फलस्वरूप दुःखों की निवृत्ति कर नित्यनिरतिशयानन्द के महार्णव में गहरे गोते लगाकर ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' के अनुसार कितने

ब्राह्मीभूत हो गए हैं, कुछ गिनती नहीं है। इन्हीं तपोवन ज्ञानार्णव भारतविभूति, मतिमतां मूर्धन्य, महिमामंडित महामानव श्रेणी की सेवा सुश्रूषा के लिए धनी-धर्मात्मा लोगों की ओर से अनेक धर्मशालाएं व अन्न क्षेत्र हैं। इनमें काली कमली वाले का अन्न क्षेत्र अति सुप्रसिद्ध है। यह शहर तो नहीं पर फिर भी इसे एक अच्छा कस्बा तो कहा ही जा सकता है। यहाँ की मंदिर-माला की महिमा भी वर्णनातीत है और यह दिव्य सौंदर्य का लहराता हुआ असीम सागर है। जैंटिलमैनों के लिए यहाँ होटल-क्लब भी हैं। दर्शनीय वन-उपवन और पुष्पवाटिकाएं भी हैं। स्थितप्रज्ञ योगी पुरुषों की गुफाएं व कंचन कामिनि कामना वर्जित कंदराएं भी विश्व-वैभव विरक्तजनों का चित्ताकर्षण करती हैं। यह मुनिजन चरण रज प्रपूरित वनस्थली वन-पंछिओं के मधुरतर-गान से सदा गुंजायमान रहती है। यहाँ की नदियों के निर्झर-निनाद, नंदनवन के समान मनोमुग्धकारी है। किं बहुना यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य की छटा वर्णनातीत है। यहाँ का वातावरण चित्त को शांति प्रदान कर मुक्ति-मार्ग की ओर बरबस खींच लाता है। कारण यह है कि यहाँ सदा-सर्वदा, सांसारिक सुखोदासीन संत समाज के दुर्लभ दर्शन सुलभ हैं। यहाँ ज्ञानगंगाजलमज्जन निर्धूत कलिकल्मष हरण महर्षिगण चरण-चिन्हित वनवीथिकाओं का शीतलतम पवन, तापत्रयतप्त हृदय के संताप को तत्क्षण हर लेता है। इस पवित्र स्थली में विभिन्न मंदिरों योगीजनों की गुफाओं और अन्यान्य पावन स्थानों की यात्रा कर एवं वीतराग महात्माओं के दर्शन कर पूर्वोक्त दोनों महात्मा, यानि गुरुशरण दास जी निर्बाण एवं बाबा रघुवीर चरणरेणुदास वैरागी, यहाँ स्वर्ग जैसा आनंदानुभव कर एक सप्ताह रह कर अपने-अपने स्थान को लौट गए। सौजन्य मूर्ति संत आत्मा सिंह जी इन्हें 6 मील नाकोरी चट्टी तक छोड़ने आए। यहाँ से बिछुड़ते समय तीनों ने ही असह्य दुःख का अनुभव किया क्योंकि इस डेढ़ मास के सहनिवास और कोमल व्यवहार से परस्पर अति प्रेम हो गया था। अतः

मिलित एक दारुण दुःख देही, बिछुरत एक प्राण हर लेही।।

के अनुसार, दुःखानुभव स्वाभाविक ही था। दोनों महात्मा ऋषिकेश और संत आत्मा सिंह जी वापस उत्तरकाशी लौट गए। चूँकि आप केवल यात्रा के लिए तो गए नहीं थे, अपितु गए थे

आतम रसु जिह जानिआ हरि रंग सहजे माणु।।
नानक धनि धनि धंनि जन आए ते परवाणु।। (पन्ना **252**)

के अनुसार आत्मानुभव के वर्णनातीत आनंद की अनुभूति के लिए गए थे, सात्विकी तपस्या के वास्ते। अतः वे लौट नहीं सकते थे। कुछ दिन धर्मशाला में रहकर उन्होंने बाहर एकांत में घास-फूस और वृक्षों के पत्ते इकट्ठे करके पर्णकुटी बना ली। अन्नक्षेत्र से भोजन ले आते और आठ पहर में एक ही बार भोजन पाते थे। वन के बेल आदि फल लाकर रख लेते और आवश्यकता के समय उन्हें खा लेते। सत्संग के लिए प्राचीन वृद्ध महात्माओं की कुटिया में चले जाते। वृद्ध महापुरुषों से उनके अनुभव में आई हुई बातों की जानकारी प्राप्त कर लाभान्वित होते थे।

दिनचर्या

आप रात्रि 8 बजे सो जाते और 2 बजे रात हाथ-मुँह आदि धो कर, पलथी लगाकर बैठ जाते और ध्यानमग्न होकर प्रभु चिंतन करते। गुरुमंत्र का जाप करते। प्रातः शौच-स्नानादि कर जपु जी साहिब और सुखमनी साहिब का पूर्ण पाठ करते थे। दोबारा गंगा जी में स्नान कर कंठस्थ गीता एवं गुरुवाणी का पाठ करते आते थे। पौने ग्यारह बजे अन्नक्षेत्र में जाकर चार फुलके (रोटी) ले आते और अपनी कुटिया में आकर भोजन कर लेते। किंचित्काल विश्राम के अनंतर स्वाध्याय नियमतः करते थे। इसके लिए उनके पास तीन पुस्तकें थीं। शंकरानंदी गीता, भर्तृहरि का वैराग्य शतक और पंडित गुलाब सिंह जी महाराज का प्रबोध चंद्रोदय नाटिका, इनको देखते-विचारते रहते। दो-तीन घड़ी दिन रहते बाहर

घूमने चले जाते, बेल आदि वन के फल अनायास ही मिल जाते तो उसे ले आते। दातौन आदि ले आते थे। मार्ग में किसी से व्यर्थ की बातचीत नहीं करते थे। एकादशी, पूर्णमासी और संक्रांति आदि पवित्र तिथियों को उपवास व्रत रखते थे। तीन मास के समय में आपका कई एक महात्माओं से अच्छा परिचय हो गया। शीतकाल के लिए आप गर्म कंबल आदि साथ ले आए थे जिससे कोई असह्य कष्ट नहीं होता था।

एक दिन अचानक आपको अपने गुरुदेव बाबा बुड्ढ़ा सिंह जी के गुरुभाई संत मंगल सिंह जी का स्मरण हो आया जो अपना ऋषिकेश वाला मकान बाबा बुड्ढा सिंह जी को अर्पण करके इधर उत्तरकाशी में आ गए थे। कुछ काल की खोज तलाश के बाद पता चला कि अन्नक्षेत्र से डेढ़ मील के फासले पर वे एक पर्वतीय गुफा में रहते हैं। कोई भक्त उन्हें वहीं भोजन पहुँचा आता है। वे बाहर कभी-कभी ही निकलते हैं। सायं में केवल आधा घंटा गुफा के आस-पास घूम-फिर लेते हैं। वे सदा-सर्वदा सिद्ध आसन में बैठकर ईश्वर-चिंतन में तल्लीन रहते हैं। वे एक प्रसिद्ध स्थितप्रज्ञ महापुरुष हैं, एकांत सेवी हैं। किसी से व्यावहारिक बात नहीं करते, प्रत्युत्-

जो जो पेखै सु ब्रहम गिआनु।। (पन्ना **1152**)

के अनुसार विवेक, वैराग्य और भगवत् प्रेम की ही बात करते हैं। बस इसके सिवा और कुछ नहीं। एक दिन संत आत्मा सिंह जी आप से मिलने गए। कुछ फूल-पत्ती और कुछ मिश्री बादाम ले लिए। श्रद्धा और प्रेम मूर्ति तो आप थे ही, श्रद्धा पूर्वक सब कुछ अर्पण किया तो उन्होंने हाथ के इशारे से आशीर्वाद दिया। कुछ समय के अनंतर गुफा से बाहर आए और आप को अपना परिचय देने का आदेश दिया। संत जी ने अपना परिचय दिया तो उन्होंने प्रसन्नता से इस समय जाने का आदेश दिया और कहा कि फिर कभी आना। संत आत्मा सिंह जी यथा आज्ञा कहकर वापस लौट आए। तीसरे-चौथे दिन फिर उसी प्रकार श्रद्धापूर्ण

रीति से साष्टांग प्रणाम किया। तो महाराज ने महंत बुड्ढ़ा सिंह जी का कुशल-मंगल पूछा और कहा कि जाओ मूलमंत्र का जाप और गुरु नानक का ध्यान किया करो। संत जी ने इस अमोल मोती को भी अपनी नित्य नियम की माला में पिरो लिया। पहले से अधिक सावधानी से अभ्यास करने में तत्पर हो गए। दिनोंदिन मन की स्थिरता बढ़ने लगी और कभी-कभी तो क्षेत्र में जाकर भोजन ले आने का ध्यान भी न रहता था। महीना-दो-महीना के अनंतर महाराज के पास जाते और अपने मन की दशा बताते रहते। अंत में एक वर्ष उत्तरकाशी में अभ्यास करने के बाद फिर एक दिन उक्त महाराज के पास गए और अपने मन की दशा में उत्तरोतर सुधार की बात बताई। आगे कहा कि महाराज! मेरी अभिलाषा गुरु नानक देव के दर्शन की है, क्या यह संभव है? अभी तुम में संदेह की मात्रा मौजूद है, अतः यह कठिन बात है, महात्मा ने उत्तर में कहा। जब तक श्रद्धा और प्रेम से हृदय लबालब भर न जाए तब तक साक्षात् दर्शन दुर्लभ हैं। तभी महात्मा ने कहा है-

राम-राम सब कोई कहै ठग ठाकुर अरु चोर।
बिना प्रेम रीझै नहीं तुलसी नन्द किशोर।।

गुरुवाणी भी कहती है-

कहि नामा किउ पाईऐ बिनु भगतहु भगवंतु।। (पन्ना **1377**)

यथा-

साचु कहौ सुन लेहु सभै जिन प्रेमु कीओ तिन ही प्रभु पाइओ।।

दृढ़ विश्वास और प्रेमपूर्ण हृदय से निकली हुई पुकारें सुनी जाती हैं, इस में कोई संदेह नहीं। हाँ ! यह संभव है कि स्वप्न-दर्शन हो जाए। जाओ प्रेम से अभ्यास करते रहो, लाभ अवश्य होगा। इतना कहकर महाराज ने जाने का आदेश दिया तो आत्मा सिंह जी वापस अपनी पर्णकुटी में आ गए। मनोयोग पूर्वक निरंतर अभ्यास करते रहे। छः मास के बाद पुनः महात्मा जी के दर्शन को

गए तो उन्होंने पूछा-बताओ आत्मा सिंह कुछ लाभ हुआ है? तब संत जी ने बताया कि एक सप्ताह पहले की बात है, श्री गुरु नानक देव के स्वप्न में दर्शन हुए। एक दिन मैं ध्यान करता हुआ सो गया तो मुझे एक मधुर स्वर सुनाई दिया कि-उठो, जागो, समय 5 मिनट अधिक हो गया है। तो देखा सामने गुरु नानक देव हाथ उठा कर आशीर्वाद दे रहे हैं परंतु जब आँखें खुलीं तो कुछ भी नहीं था वहाँ। तो महात्मा ने कहा-ठीक है बेटा! कहावत है कि-

जैसा तेरा अन्न पाणि, वैसा मेरा कम जाणि।

यह तो मज़दूर या नौकर की कही हुई बात है। साधक भी तो भगवान का मज़दूर ही है। साधक की श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और भरोसा जैसा होता है, उसी के अनुकूल ही प्रभु फल प्रदान करते हैं। सच पूछो तो भगवान भी भक्त के मजदूर ही बन जाते हैं जैसे धन्ना और नामदेव आदि के। भगवान भी वैसा ही फल देते हैं, जैसी साधक की उत्कट प्रेम भक्ति हो। जाओ निराश मत हो, भक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती। जाओ, यत्न जारी रखो। गुरु महाराज ने कहा है-

करउ जतन जे होइ मिहरवाना।।
ता कउ देई जीउ कुरबाना।। (पन्ना **562**)

यह आदेश पाकर संत आत्मा सिंह जी पर्णकुटी में लौट आए और पूर्ववत् अभ्यास साधना में जुट गए। अब दर्शन की लालसा और भी तीव्र होती गई। कभी-कभी तो वैराग्य में रोने लगते और प्रभु प्रियतम के दर्शन के लिए अधीर हो उठते। हृदय में एक तड़प-सी उठती और वे बेचैन हो उठते, कई बार नित्य-नियम करना भी भूल जाते। कभी-कभी तो ऐसी दशा हो जाती कि चारों ओर गुरु नानक ही दिखाई देते। वास्तव में जो गुरु नानक हृदय में थे बाहर भी वही प्रतीत होते थे। वस्तुतः बाहर कुछ भी नहीं होता था। अगर सचमुच ऐसा होता तो आँख खुलने पर भी सर्वत्र दर्शन होते। पर यहाँ तक अवस्था पहुँची नहीं थी। वास्तव में-

मन्मना भव मद् भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोसि मे।। (गीता)

इस वचन के अनुसार, ध्यानावस्था में मन में भगवान के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं। वह मनमना अर्थात् भगवान में मन होता है। भाव यह है कि मन में भगवान और भगवान में मन हो तो सर्वत्र भगवान ही प्रतीत होते है। जैसे फूल की लालिमा काँच के गिलास में ही दिखाई देती है, बस इसी प्रकार अपने मन की लाली ही बाहर दिखाई देती है। मन के भीतर के भगवान ही बाहर दीख पड़ते हैं, सर्वत्र। या यों कहिए कि मन और भगवान एकरूप हो जाते हैं। इसी अवस्था को मस्ताने महात्मा राम बादशाह ने कहा है-

बसा राम मुझमें तो मैं राम में हूं।।
न इक है न दो हैं सदा तू ही तू है।।

जब साधक अपने मन को भगवान के चरणों में अर्पण कर देता है, इतना ही नहीं सब कुछ अर्पण करके भगवान को ही अपने जीवन का सर्वस्व मान लेता है तो उत्तरोत्तर मिलने की तड़प भी बढ़ती ही जाती है। अंत में ऐसी दशा हो जाती है जैसा गुरु नानक ने कहा है-

नामु भगति दे निज घरि बैठे अजहु तिनाड़ी आसा।।
नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घड़ी खटु मासा।। (पन्ना **1109**)

जब मनोदशा इससे भी तीव्रतर हो जाती है तब तो-

चारि पहर चहु जुगह समाने।।
रैणि भई तब अंतु न जाने।। (पन्ना **375**)

के अनुसार तड़पते प्रेमी के चार पहर चार युगों के समान व्यतीत होते हैं।

भगवान के प्रति भक्तों की ऐसी अनन्य प्रीति होती है कि वे कुछ चाहते भी हैं तो अपने भगवान से ही, अन्य किसी से कुछ नहीं चाहते। जैसे चातक (पक्षी) बादल से ही स्वाति बूँद की याचना करता है और किसी से नहीं।

भक्तों के हृदय में दुःख क्लेशादि की निवृत्ति की आकांक्षा होने पर भी उन

की चित्तवृत्तियों का आश्रय केवल भगवान ही होता है। भगवान ही में उनका अति प्रेम होता है। इसी से वे भक्त कहे जाते हैं। भक्त वह है जिस की भगवान में अनुरक्ति हो। भागवत् में कहा है-

अजात पक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युशितं प्रसन्ना मनोनरविन्दाक्ष दिदक्षते त्वाम्।।

चातक (पक्षी) प्यास का मारा प्राण भले ही छोड़ दे, पर वह अपने प्यारे श्यामघन (बादल) के बिना किसी से एक बूँद पानी की याचना नहीं करता। मेघ-दर्शन के लिए ही आकाश में पी-पी पुकारता रहता है।

पंछियों के ऐसे बच्चे, जिनके अभी पंख नहीं पैदा हुए, वे असहाय बच्चे, जैसे अपनी माँ के दर्शन के लिए तड़पते हैं; भूख से तड़पते बछड़े, जैसे अपनी माँ के दूध को तड़पते हैं; जैसे विरहिणी प्रिय-दर्शन के लिए उसकी बाट जोहती रहती है; वैसे ही हे प्रभु! मेरा मन आपके दर्शन के लिए व्याकुल है। जैसे नानक गुरु रामदास जी ने अपनी मनोदशा को इस प्रकार दर्शाया है-

हरि दरसन कउ मेरा मनु बहु तपतै जिउ त्रिखावंतु बिनु नीर।।
मेरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर।।
हमरी बेदन हरि प्रभु जानै मेरे मन अंतर की पीर।। रहाउ।।
मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सो भाई सो मेरा बीर।।

(पन्ना **861-62**)

सो इस प्रकार की तड़प जब भक्त के हृदय में उठती है तो वह प्रेममय प्रभु के हृदय में वैसी तड़प पैदा किए बिना नहीं रहती। प्रेम का अत्युत्तम आनंद भी तभी आता है और यह ध्रुव सत्य है कि दोनों ओर तड़प हुए बिना मिलाप भी संभव नहीं होता। सो संत आत्मा सिंह जी के हृदय की तड़प ने भगवान के हृदय में भी हरारत पैदा कर दी। परिणाम स्वरूप स्वप्न में प्रेम-वाणी सुनाई दी कि क्यों तड़पते हो, दर्शन तो तुझे नित्य ही हो जाते हैं। विभिन्न रूपों में तुझे कई बार

दर्शन हुए हैं। पर तुम देखा हुआ भी अनदेखा कर देते हो। असावधान होकर चलते हो। सावधान होकर चला करो। इतने में आँखें खुलीं तो फिर अश्रुधारा से अपने संतप्त हृदय को शांत किया।

हैं! यह क्या? यह कहते हुए संत जी के पाँव लड़खड़ाने लगे और रुक गए। हृदय धक-धक करने लगा। एक ही क्षण में ख़याल आया कि-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। (गीता)

यथा-

जो दीसै सो तेरा रूपु।। (पन्ना **724**)

यथा-

ईभै बीठलु ऊभै बीठलु बीठल बिनु संसारु नही।। (पन्ना **485**)

यह विचार आते ही सोचा-इस महा भयंकर नाग में भी तो अभयंकर एवं भयभंजन दयामय प्रभु का ही तो निवास है, फिर डरता किससे है! यह कहते हुए आत्मा सिंह जी ने भयभीत मन को ढाढ़स दिया जो भगवान की इच्छा होगी वह तो होकर ही रहेगा, फिर भय-कंपित क्यों हो अनजान मन! यह कहते हुए महात्मा, निर्भय होकर साहस के साथ आगे बढ़े। दस फीट आगे चलकर देखा तो वहाँ कुछ भी नहीं था।

इस कल्पनातीत अकल्पित एवं अद्‌भुत दृश्य को देखकर संत आत्मा सिंह जी चकित होकर सोचने लगे-यह क्या? मेरे लीलामय प्रभु! तेरी लीला न्यारी है। कौन जान सकता है तेरे कौतुकों को? यह कहते हुए संत आत्मा सिंह जी को तीन दिन पहले सुनी स्वप्न की वाणी का स्मरण हो आया और वे परम कारुणिक दयामय भगवान का गद्-गद् कंठ से धन्यवाद करने लगे और कहने लगे- विनोद प्रिय प्रभु! तेरी महिमा अपरंपार है। कौन जान सकता है, तेरी अगम्य लीला को।

अतः उनको विश्वास हुआ कि तीन दिन पहले जो स्वप्नवाणी हुई थी उसी का चमत्कार है यह।

संत जी महाराज एकाध घंटा बाहर घूमने जाया करते थे। वे आज भी घूमने निकले तो आधा मील चलने पर उन्हें 10 फीट लंबे और 5 फीट ऊँचे पत्थर के टुकड़े के पीछे फण फैला कर फुँकारता हुआ काल जैसा विकराल काला नाग दीख पड़ा जिसका फणाटोप एक फीट चौड़ा लग रहा था और पाँच फुट ऊँचे शिला-खंड से डेढ़ फुट ऊँचा दिख रहा था। इसी काले नाग को देखकर संत जी की पूर्व लिखित दशा हुई थी।

यह कल्पित नहीं है। साँपों की अनंत जातियां हैं, जिनमें पूर्वोक्त साँप की जाति सब से महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेज़ी में इसे किंग कोबरा (साँपों का राजा) कहते हैं जो सार्थक है। यह 15-18 यहाँ तक कि 20 फुट तक भी लंबा होता है और दौड़ता भी बहुत तेज़ है। जब यह किसी आशंका से व मस्ती से सिर उठाकर खड़ा होता है तो जमीन से साढ़े छः फुट ऊँचा उठ जाता है जिसे देखकर भीरु आदमी भी मूर्छित होकर भूमि पर गिर जाते हैं।

मैं एक बार महंत आत्मा सिंह जी से सुनी अनुभूत घटना का जिक्र कर रहा था, तो बांग्लादेश के युद्ध में शामिल हुए सिपाही रणजीत सिंह ने इस घटना का समर्थन करते हुए कहा कि यह बिलकुल सत्य है। बांग्लादेश में हमारी छावनी में इस जाति का एक जोड़ा रहता था जो कि किसी का पीछा नहीं करता था और न ही कोई व्यक्ति उसे मारने की इच्छा करता था क्योंकि सब लोग उसे देवता मानते थे।

पूर्वोक्त घटना के बाद संत आत्मा सिंह जी की मनोदशा बहुत अधिक बदल गई। अब वे न तो किसी पर क्रोध करते और न ही उन्हें किसी पर घृणा होती थी। उन्हें सभी लोग प्रिय लगते थे। वे सर्वथा समदर्शी बन गए थे। भगवान में उनका प्रेम और विश्वास पहले से कहीं अधिक बढ़ गया था। पहले की अपेक्षा भजन-चिंतन, जप-तप और सत्-साधना में उनकी रूचि तीव्र हो गई थी।

एक दिन पुनः संत आत्मा सिंह जी पूर्वोक्त गुफा निवासी महात्मा के दर्शन करने गए और जाकर पूर्वोक्त सर्प-दर्शन की घटना का जिक्र किया तो महात्मा ने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी कीर्ति पताका सदा ऊँची फहराती रहे। जाओ तुम्हारी यात्रा सफल होगी।

आशीर्वाद लेकर चलते समय संत जी ने एक और इच्छा व्यक्त की। वह यह कि महाप्रसिद्ध सिद्ध योगी, त्रिगुणातीत, ब्रह्मविद्वरिष्ठ महापुरुष स्वामी कान्ह सिंह जी महाराज का नाम बहुत दिनों से सुनता आ रहा हूँ अतः उनके दर्शनों की उत्कट अभिलाषा है। आप इसके लिए अनुमति प्रदान करेंगे और उनके संबंध में कुछ विशेष बताने की कृपा करेंगे। तो आपने कहा-हाँ, वह महात्मा पूर्ण योगी हैं, उनके दर्शन अवश्य करने चाहिएं। वे आधा मील गहरे खड्ड में बनी गुफा में रहते हैं। मैंने आज से बारह वर्ष पहले उनके दर्शन किए थे। वे इस लोक और परलोक के भोगों से पूर्ण विरक्त हैं। वे उन पूर्णवितृष्ण महात्माओं की श्रेणी के हैं जो डंके की चोट में यह कहते हैं कि-

यह सौदागरी नहीं, इबादत खुदा की है।।
दुनिया जो छोड़ दी है तो उकबा भी छोड़ दे।।

उन्हें न कुछ पाने की इच्छा है, न कुछ करने की जरूरत, वे कृतकृत्य हैं और स्थितप्रज्ञ हैं।

तो संत जी ने पूछा-महाराज! उन्हें मिलने का माध्यम कौन व्यक्ति बन सकता है? तो संत मंगल सिंह जी महाराज ने कहा-एक संत भगवान सिंह हैं, जो तुम से भी कम आयु का है वह उन से और उनके स्वभाव से भी पूर्णतया परिचित है। वह कभी-कभी उनके दर्शन के लिए जाता है। महायोगी भी उस से स्नेह रखते हैं। वह उनका परम श्रद्धालु है, वह तुम्हें दर्शन अवश्य करा देगा। अब जाओ, हमारी शक्ति से अधिक काम हमसे न लो।

आज्ञा पाते ही संत आत्मा सिंह जी चरण-स्पर्श कर गुफा से बाहर निकल

आए। दूसरे दिन संत भगवान सिंह जी की झोंपड़ी में जाकर उन से मिले और अपनी अभिलाषा व्यक्त की तो संत भगवान सिंह जी ने कहा–मुझे दो दिन ज्वर आ गया था, कमजोरी और जुकाम अब भी है। अतः मैं स्वस्थ हो जाऊं, एक हफ्ते तक चलेंगे। संत आत्मा सिंह जी तथास्तु कहकर अपनी झोंपड़ी में आ गए। चौथे दिन काली कमली वाले अन्नक्षेत्र में उनसे फिर मुलाकात हुई तो उन्होंने कहा–अब मैं ठीक हूँ, आगामी बुध के दिन चलेंगे।

बुध के दिन संत आत्मा सिंह जी ने अपना नित्य-नियम पूरा किया और विरक्त भगवान सिंह जी की पर्णकुटी पर आ गए। पूर्व निश्चय के अनुसार भोजन पाकर महायोगी बाबा कान्ह सिंह जी महाराज के दर्शन करने के लिए चल पड़े। उक्त महापुरुष की महिमा के संबंध में विस्तार से बातें करते गए। भगवान सिंह जी ने कहा–वे परम दयालु हैं, किसी से भी क्रोध वाली बात नहीं करते। संयमी होने के कारण अधिक बात-चीत को भी पसंद नहीं करते। अति बातूनी आदमी की बातों का उत्तर नहीं देते, मौन धारण कर लेते हैं। इसलिए अधिक बोलना नहीं। उनके संक्षिप्त उत्तर से बहुत कुछ समझने का यत्न करना। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर, मान लेने में कल्याण है। इस प्रकार दोनों संत श्रद्धापूर्ण बातें करते हुए जा रहे हैं, महापुरुष की गुफा की ओर। ❑

तरंग 41

प्रभु की अचिंत्य लीला,
प्रकृति की अद्भुत सप्लाई व्यवस्था

अनंत शक्तियों के स्वामी भगवान की रहस्यमयी लीलाएं मानव की चिंतन-शक्ति से अति दूर हैं। रेणु के कण-कण में उसने कितनी शक्ति छिपा रखी है, इसका कुछ अनुमान मानव-बुद्धि नहीं लगा सकती। गुरु तेग बहादुर साहिब जी का मीठा वचन है-

राग बिहागड़ा महला ६।।
हरि की गति नहि कोऊ जानै।।
जोगी जती तपी पचि हारे अरु बहु लोग सिआने।। १।। रहाउ।।
छिन महि राउ रंक कउ करई राउ रंक करि डारे।।
रीते भरे भरे सखनावै यह ता को बिवहारे।। १।।
अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा।।
नाना रूपु धरे बहु रंगी सब ते रहै निआरा।। २।।
अगनत अपारु अलख निरंजन जिह सब जगु भरमाइओ।।
सगल भरम तजि नानक प्राणी चरनि ताहि चितु लाइओ।। ३।।

(पन्ना **537**)

इसी प्रकार प्रकृति की सप्लाई की व्यवस्था भी अति विचित्र है। बड़े-बड़े राज्यों की भी सप्लाई व्यवस्था भंग हो जाती है, उसके वाहन व यंत्र आदि छिन्न-भिन्न हो जाते हैं व अवरुद्ध हो जाते हैं। पर प्रकृति की व्यवस्था कभी भंग नहीं होती। प्रकृति के कानून या नियम सदा-सर्वदा सुचारू रूप से निरंतर

चलते रहते हैं, कभी भंग नहीं होते और उनमें कभी रद्दोबदल (तबदीली/परिवर्तन) नहीं होती। उसको यंत्रों द्वारा सप्लाई नहीं करनी पड़ती। भोग्य वस्तुओं को कोई किसी के पास स्वयं या यंत्रों द्वारा नहीं पहुँचाता, प्रत्युत प्रकृति की व्यवस्था के अनुसार भोग्य वस्तुएं भोक्ता के पास स्वयं पहुँचती हैं। इसका अद्भुत उदाहरण निम्नांकित घटना में देखिए–

अद्भुत घटना

प्राकृतिक सौंदर्य का पीयूष-पान करते हुए सर्पाकार पगडंडी पर चले जा रहे हैं पूर्वोक्त दोनों महात्मा। वह पगडंडी अब ऊपर की ओर न जाकर नीचे की ओर बल खा गई है। उसकी दायीं-बायीं ओर वन-वृक्षों के झुंड के झुंड दिखाई दे रहे हैं। प्रकृति की रम्य-रचना देखकर चंचल चित्त भी आनंद सरोवर में सराबोर होकर स्थिर हो जाता है। उनके सराहनीय सौंदर्य को देखकर, रंग-बिरंगे फूलों से लदी हुई, वन-तरुओं से लिपटती हुई पुष्प-लताएं तरुओं के शिखर की ओर जा रही हैं शायद उनके सुंदर सुकुमार अंगों पर फूल अर्पण करने के लिए या यह समझ लीजिए कि वन-वृक्षों और लताओं के प्रेमालिंगन पर मुग्ध होकर देवगण उनके सिर पर फूल बरसा रहे हैं। अस्तु कुछ भी हो उनकी शोभा को देखकर आनंद-मग्न हुए, दोनों संत चले जा रहे हैं नीचे की ओर।

संत भगवान सिंह जी के पैर अचानक रुके। उनकी दृष्टि एक ऊँचे वृक्ष पर बैठे मनोहर मुर्गे पर पड़ी। न जाने मुर्गे के मन में क्या सूझी, वह ऊँचे वृक्ष से उड़ कर छोटे वृक्ष की डाल पर आ बैठा। उसके पंखों की फड़फड़ाहट से वृक्ष के नीचे बैठा हुआ अजगर भी जो 10 से 15 फुट लंबा और दरम्याने आदमी की जाँघ जितना मोटा था, सावधान हो गया। उसने अपने सिर को जरा ऊँचा उठाया और मुर्गे की ओर देखा, मुर्गे की आँखें उस की आँखों से मिली, बस फड़फड़ाता हुआ मुर्गा अजगर के मौत जैसे मुँह में आ गिरा। संत भगवान सिंह

जी इस क्रूर दृश्य को देखकर दयावश उधर को दौड़े तो संत आत्मा सिंह जी ने कड़कती हुई आवाज़ से उन्हें रोका-यह क्या कर रहे हो, कहाँ जाते हो? शिष्टाचारी संत भगवान सिंह जी अपने से बड़े संत आत्मा सिंह जी की आज्ञा को अनुलंघनीय मानकर रुक गए और अजगर द्वारा मुर्गे को पकड़ने की बात कही,तो संत आत्मा सिंह जी ने कहा-प्यारे भाई! पहली बात तो यह है कि अब आप अजगर के मुँह से उस मुर्गे को जीवित नहीं निकाल सकते, फर्ज़ करो कि अगर निकाल भी दे तो भी वह बाहर निकल कर मर जाएगा तो फिर तुम्हें क्या लाभ हुआ ?

दूसरी बात यह है कि आप की यह व्यर्थ चेष्टा ईश्वरीय विधान में हस्तक्षेप है। जरा विचार कीजिए कि इस मुर्गे को किसी ने जाल लगाकर तो पकड़ा नहीं, वरन् वह स्वयमेव उड़कर अजगर के समीप आया, तब अजगर ने उसे पकड़ा। सिवाय इन जीव-जंतुओं के उसकी और खुराक नहीं है और हर किसी को आहार देने का ठेका सर्वे वर प्रभु ने अपने हाथ में रखा है। इसीलिए उसका नाम विश्वम्भर है, राज़क है, रोज़ी दिहन्दा है, सर्वप्रतिपालक है। गुरु गोविंद सिंह महाराज ने कहा है-

पोखत है जल मै थल मै पल मै कल के नही करम बिचारै।।

यथा-

कुंमी जल माहि तन तिसु बाहरि पंख खीरु तिन नाही।

....

....

कहै धन्ना पूरन ताहू को मत रे जीअ डराही।। (पन्ना **488**)

भावार्थ-भक्त धन्ना जी कहते हैं-कछुआ जल में होता है और उसके असहाय बच्चे बाहर भूमि में होते हैं। कच्छपी का दूध भी नहीं होता पर परमेश्वर उन विवश बच्चों का पालन करता ही है, वरना उस की ठेकेदारी

बदनाम होकर रह जाए। उसी प्रकार अजगर के न पैर हैं, न पर हैं, न कर हैं पर परमेश्वर ने उस गति-हीन को भी देना है। वह किसी की नौकरी-चाकरी तो करता नहीं है, फिर उसे खाना देगा कौन? भक्त मलूक दास ने कैसा सुंदर कहा है-

अजगर करै ना चाकरी पंछी करै ना काम।
दास मलूका कह गये सब के दाता राम।।

राम उसे देता है और आप उस के मुँह से छीनते हो, तो बताओ यह कहाँ का संतपना है? यह उस के काम में विघ्न नहीं है तो और क्या है? उस के विधान में हस्तक्षेप नहीं है तो क्या है ?

तीसरी बात पर भी गौर कर के देखो-यह कुदरत की करामात का करिश्मा ही तो है। कुदरत के पास भार वाहक गाड़ियाँ तो हैं ही नहीं, पर उस को हर किसी की खुराक का इंतजाम करना जरूरी है।

चूँकि कुदरत कादिर की गुलाम है, खादिम है परवर्दिगार की। यानी दासी है वह परमेश्वर की, इसलिए उसने स्वामी की इच्छा पूर्ति अवश्य करनी है। अतः उसने नियम बना रखे हैं-जो कुदरत के सहारे जीता है, कुदरत के मुताबिक उसकी खुराक उसके पास खुदबखुद पहुँच जाती है अथवा किसी के मन में दया उत्पन्न हो जाती है तो उसकी प्रेरणा से वह भूखे को आवश्यक वस्तु पहुँचा देता है। ध्यान दीजिए! मुर्गा अजगर की खुराक है, कानून कुदरत के मुताबिक वह खुदबखुद उसके मुँह में आ गिरा। देने वाला देता है, खाने वाला खाता है। बताइए कि मुझे या तुझे उसे छीन लेने का अधिकार किसने दिया ?

बस, श्रेयस्कर बात यही है कि हम उसके विधान में हस्तक्षेप करने का अपराध न करें। उसके निराले रंगों को, उसकी कल्पनातीत लीलाओं को देखकर प्रसन्न रहें, मस्त रहें।

इस प्रकरण को यहीं समाप्त कर वे दोनों साधु महायोगी की गुफा की ओर

चल पड़े, करीब दो कदम आगे चलकर भयकातर नेत्रों से देखा कि सौ कदम की दूरी पर खुशी से पूँछ को घुमाता हुआ भयंकर शेर जा रहा है। उसे देखकर संत दो मिनट रुके। संत भगवान सिंह ने कहा-कोई डर की बात नहीं। वह हमारी ओर पीठ किए आगे जंगल की ओर जा रहा है, जाने दो उसे, हम आगे चलें। इतना कह कर वे आगे चले तो महायोगी बाबा कान्ह सिंह जी की गुफा के चालीस पचास फीट इधर उस भयंकर शेर के पद चिन्हों को देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। अस्तु, उन्होंने योगीवर के पावन चरणों पर दंडवत प्रणाम किया और इशारा पाकर एक ओर बैठ गए। कुशल प्रश्नानंतर आगंतुक संतों ने कहा-महाराज! आपके आशीर्वाद से सब कुशल है। इसके अनंतर दोनों ने शेर के पद चिन्हों वाली बात का आश्चर्य के साथ जिक्र किया और कहा कि महाराज! इतने समीप से शेर गया है, इससे आपके शरीर को खतरा तो नहीं? योगेश्वर बाबा ने उत्तर दिया कि नहीं बिलकुल नहीं, वह तो मेरा वनराज है। उसके बचपन से ही मैं उससे परिचित हूँ, मैं उसे तब से देखता हूँ जब वह अपनी माँ के साथ खेला करता था। अब इसके माँ बाप इसे यहाँ छोड़कर कहीं अन्यत्र जा बसे हैं। अब इस जंगल का बादशाह यही जवां शेर है। इसकी सिंह-गुफा, यहाँ से दो तीन मील आगे गहरे खड्ड में है। हमारी गुफा के सौ-सौ कदम के क्षेत्र में इसने आज तक किसी जीव को नहीं मारा। वैसे इसकी प्रकृति-प्रदत्त खुराक तो जंगली जानवर ही हैं। यह कह देना भी किसी हद तक ठीक ही है कि वास्तव में प्रकृति ही इन वन-जीवों की असली माँ है, जो इन्हें येनकेन प्रकारेण इनका आहार देती ही रहती है। माँसाहारी को माँस और जो-जो जिसकी खुराक है उसे मिल ही जाती है प्रकृति माँ की कृपा से।

अस्तु, कोई आवश्यक बात हो तो कहो हमें इसकी गहराई में जाने की जरूरत नहीं।

बेटा ! समय कम है कहीं वनराज से दोबारा भेंट न हो जाए। मुस्कराते हुए

योगीराज ने कहा–कोई बात नहीं महाराज, आपकी इस पवित्र भूमि में शरीर किसी के अर्थ लग जाएगा तो शुभ ही होगा, कहते हुए संत भगवान सिंह जी ने, संत आत्मा सिंह जी की ओर इशारा करते हुए बताया कि संत जी को आपके पावन दर्शन की तीव्र इच्छा थी, बस दर्शन के लिए ही आए हैं, और कोई विशेष उद्‌देश्य नहीं।

तो कहिए आत्मा सिंह जी! आप कब से यहाँ आए हैं? महाराज ने प्रसन्नता से कहा। जी महाराज! मुझे दो साल हो गए हैं, संत आत्मा सिंह जी ने विनीत स्वर में उत्तर दिया। तो महंत बुड्ढा सिंह जी के गुरु भाई संत मंगल सिंह जी से मिले हैं? महाराज ने पूछा। हाँ महाराज! समय-समय पर उनकी चरण-रेणु भी मस्तक को लगाता रहा हूँ और वे भी समयानुकूल सद् उपदेश देते रहते हैं और मैं उनके उपदेश से लाभान्वित भी होता रहा हूँ। संत आत्मा सिंह जी ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, अच्छा तो कुछ और पूछना चाहते हो? योगीराज ने ईशारा करते हुए कहा। संत आत्मा सिंह जी ने अनुकूल समय समझ कर योग-साधना के संबंध में जिज्ञासा व्यक्त की। योगीराज उनका आशय समझ गए और कहा कि–योगसिद्धि की अभिलाषा तुम्हें है, पर अभी तैयारी पूरी नहीं। कोई भी मूल्यवान वस्तु तब तक सुलभ नहीं होती जब तक उसकी योग्यता न प्राप्त हो जाए। जिसे किसी वस्तु की अभिलाषा हो उसको चाहिए कि अपने आप को उसका अधिकारी बना ले, अधिकारी बन जाने पर बड़ी से बड़ी वस्तु आसानी से मिल जाती है। तुम्हें अभिलाषा योगसिद्धि की है, पर योग के लिए पहली शर्त है वैराग्य, पूर्ण वैराग्य। वैराग्य की सिद्धि होने पर ही योग का अधिकार प्राप्त होता है। वैराग्यवान व्यक्ति ही योग का अधिकारी माना गया है। विष्णु पुराण की स्पष्ट घोषणा है कि ‘‘अधिकारी भवेद् यस्य वैराग्यं जायते दृड़म्,’’ योग तो रहा दरकिनार वैराग्य के बिना ध्यान भी संभव नहीं। ध्यान का लक्षण है–‘‘तत्र प्रत्यैकतानता, ध्यानम्।’’ इसका भाव यह हुआ–विजातीयप्रत्यानन्त्रित सजातीय

प्रत्यप्रवाहो ध्यानम्। भावार्थ-जिस उपास्य देवता का जैसा स्वरूप शास्त्रों में बताया हुआ है वैसे ही स्वरूप में विजातीय वृत्तियों, अथवा जैसे हम किसी शब्द का अभ्यास कर रहे हैं, जैसा कि ओंम व सोहं वाहिगुरु व राम इत्यादि का निरंतर एक रूप चित्तवृत्ति का प्रवाह जारी रहना । इसका नाम है- ध्यान। भाव यह कि सोहं-सोहं के स्थान में हाय! मेरा छक्का, हाय! मेरा पंजा का मन में आ जाना यही विरोधी वृत्ति है, इत्यादि विरोधी वृत्ति मन में न उत्पन्न होकर सदा सर्वदा सजातीय वृत्ति का अखंड एक रस प्रवाह जारी रहे। इसे ध्यान कहते हैं। सो वैराग्य के बिना, विषयों के चिंतन से चित्त रिक्त नहीं होता तो फिर विरोधी वृत्तियों के आ जाने से सजातीय वृत्तियों का एक रस प्रवाह रूप ध्यानसिद्ध होना संभव नहीं।

हाँ बेटा! अभी तुझ में वैराग्य की कमी है यानि और कुछ नहीं तो तुझे मान प्रतिष्ठा की इच्छा अभी शेष है। जब तक साधक का हृदय, आशा व आकांक्षाओं के घास-फूंस से बिलकुल खाली न हो जाए, तब तक आत्मज्ञान और योग टिक नहीं सकते। अतः आप अभी योग का हठ छोड़ दो, जिस रास्ते चल रहे हो चलते चलो यानी पूजा, पाठ, भजन, चिंतन, सेवा, उपकार आदि साधन करते चलो, भगवान भला करेंगे। तुम्हें मान प्रतिष्ठा बहुत मिलेगी। तुम्हारा यश भी बहुत होगा। अंत में योगियों की तरह ईश्वर-चिंतन करते हुए बिना कष्ट तुम्हारी मृत्यु होगी।

एक बात और है तुम्हारा यह जन्म भक्तियोग और जनसेवा के लिए है इससे तुम्हारा हृदय निर्मल और पुनीत होगा। एक जन्म तुझे और लेना पड़ेगा। उस जन्म में तुम पूर्ण योगी और ब्रह्मज्ञानी बनोगे और फिर बस 'ब्रह्मविद् ब्रह्मवै भवति' के अनुसार ब्रह्म में अभेद हो जाओगे।

ब्रहम ज्ञानी आपि परमेसुर।। (पन्ना **273**)

जाओ साधना से विरत न होना, तुम्हारा जीवन सफल होगा। इतना कहते हुए

महायोगी ने वाणी को विराम दिया और आँखें बंदकर ध्यानावस्थित हो गए। महायोगी बाबा कान्ह सिंह जी से, आशीर्वाद-पूर्ण आदेश पाकर दोनों 'साधक संत' प्रेम से वार्तालाप करते हुए, उचित शिष्टाचार के अनंतर अपनी-अपनी झोंपड़ियों को चले गए और पहले की तरह साधना में जुट गए। एक सप्ताह के अनंतर संत आत्मा सिंह जी, पूर्वोक्त वृद्ध महात्मा संत मंगल सिंह जी की गुफा में गए और जाकर महायोगी के दर्शन और उनसे प्राप्त आशीर्वाद-पूर्ण आदेश की बात बताई, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि वे सत्य ही कहते हैं, उनका कहा कभी अन्यथा नहीं होता। अब तुम्हारे जीवन की सफलता में कुछ भी संदेह नहीं। मगर देखना साधना को छोड़ कर न बैठ जाना, वरना संसार में आसक्त हो जाओगे। याद रखो, संसार नहीं बल्कि संसार में आसक्ति ही दुःख रूप है। आशा, तृष्णा, कर्म में कर्तृत्वाभिमान आदि ही तो संसार में डालने वाले हैं, बंधन में डालने वाले हैं। गुरु नानक जी का वचन है-

आसा मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी।।
पापि पुंनि जगु जाइआ भाई बिनसै नामु विसारी।। (पन्ना **635**)

के अनुसार इच्छाएं और आसक्ति ही बंधन में डालने वाली हैं, अतः अनासक्ति योग और भक्ति को मन से दूर न होने देना। मन इनसे दूर हुआ तो मुक्ति अति दूर हो जाएगी।

अच्छा अब जा सकते हो। हितकारी महापुरुष की आज्ञा मिलने पर, उनके चरण छूकर संत आत्मा सिंह जी वापस अपनी झोंपड़ी में आ गए। पहले की तरह मन को जप, तप, ध्यान आदि में लगाया। इन पूर्वोक्त घटनाओं के बाद संत आत्मा सिंह जी की मनोदशा बहुत बदल गई। पहले की अपेक्षा मन बहुत स्थिर हो गया। उसकी चंचलता न जाने कहाँ विलीन हो गई। मन के अंतर्मुख होने से अन्य नेत्रादि इंद्रिय गण भी-

दस मिरगी सहजे बंधि आनी।।

पांच मिरग बेधे सिव की बानी।। (पन्ना **1136**)

इस गुरु वचन के अनुसार दसों इंद्रियां वशवर्ती (काबू) हो गईं। मनोबल की भी बहुत वृद्धि हो गई।

एक दिन की बात है-आप अपनी झोंपड़ी से बाहर शिला पर बैठे थे। प्रभु की लीलाओं को देखते हुए प्रसन्न मुद्रा में हरि स्मरण कर रहे थे। एक मरीज़ आया जिसे कई दिन से ज्वर आ रहा था। उसने आकर आदर के साथ दंडवत् प्रणाम किया और दुःख निवृत्ति के वास्ते आपसे आशीर्वाद माँगा। आपने साधुओं के स्वभाव के अनुसार स्वाभाविक कह दिया जाओ बेटा, भगवान अच्छा ही करेंगे। वह व्यक्ति उसी दिन ज्वर-मुक्त हो गया। तीसरे दिन वह गाय का दूध गर्म करके ले आया और आप से पीने की प्रार्थना की। इच्छा न रहते हुए भी आपको उसकी इच्छा से पीना पड़ा। उसने आगे किसी और से बात कह दी। तीसरे दिन एक वृद्ध माई अपनी वधू को लेकर आ गई। कहने लगी महाराज ! इस के हाथ पर दाद है, जाता नहीं, आप कोई कृपा करें। आपने इधर-उधर देखा तो एक कुक्ड़छिद्दी जड़ी के पौधे की कुछ पत्तियां तोड़कर दे दीं और कहा कि इनको मल कर इसका रस दाद पर लगा देना, ठीक हो जाएगा। वह भी प्रभु-कृपा से ठीक हो गई।

अब आपने सोचा कि इस प्रकार तो हमारी साधना में बाधा पड़ेगी, अतः मौन धारण कर लिया किंतु लोग बाज़ कब आते हैं। कई एक शरीफ भक्त तो यह समझ लेते कि चलो महात्मा के दर्शन हो गए, लाभ हो जाएगा पर सब एक जैसे नहीं होते। ❑

तरंग 42

सवेरे का सुहावना समय था। प्रेम रंग में दीवाने महात्मा धूप में बैठे थे। पेड़- पौधों की पत्तियों पर पड़ी सूर्य की सुनहरी किरणों की सुंदरता निहार रहे थे। दुनिया के दुःख-द्वन्दों से दूर, चित्त हरि-चरण-चिंतन के आनंद में भरपूर था। इस खुदमस्ती में दखल देकर कोई आनंद को भंग करे यह उन्हें पसंद नहीं था।

उसी समय एक रणधीर सिंह नाम का राजपूत आया। उसके भाई पर फौजदारी का केस बन गया था, उसने कहा-महाराज ! आप मेरे भाई को बचा दीजिए, वरना उसे सजा अवश्य हो जाएगी। एक गवाही हो चुकी है, उसके बयान हमारे बहुत खिलाफ हैं। अगर दूसरी भी इसी तरह की हो गई तो सजा लाज़मी है। निष्पक्ष तथा निरवैर महात्मा को क्या किसी के आपसी झगड़ों से। सो आपने कहा-भाई, डटकर पैरवी करो, अदालत को वह सच्चा जान पड़ा तो बरी हो जाएगा, वरना मार-पीट तो हो ही गई है उससे। जाओ पैरवी करो। पर वह नहीं माना। उसने कहा-महाराज! आप आशीर्वाद दे दें। तो आपने फिर वही कहा कि-भाई, यह बात मेरे वश की नहीं, वरन् अदालत के अख्तियार की है, जाओ, जाकर पैरवी करो। हम इस में कुछ नहीं कर सकते। यह कहते हुए आप झोंपड़ी में चले गए और खिड़की बंद कर ली। अहंकारी राजपूत क्रोधाग्नि से जलता हुआ चला गया। उसने इसे अपना अपमान समझा।

अदालत ने कहा कि-मुझे प्रत्यक्षदर्शी गवाहों की सच्चाई पर संदेह नहीं है। अतः मैं अपराधी को तीन मास कारावास का दंड देता हूँ।

उज्ड्ड राजपूत लज्जित होकर लौटे और हार का कारण निरवैर महात्मा

को मानकर उनसे बदला लेने के लिए षडयंत्र रचने लगे।

कस्बे में इनकी कई एक लोगों से शत्रुता थी। एक दिन अपने एक शत्रु को वन में अकेला पाकर उसे पीटने लगे। इतना मारा कि वह बेचारा दम तोड़ गया। इन लोगों ने उसे उठाकर संत आत्मा सिंह जी की झोंपड़ी के पीछे की एक झाड़ी में छिपा कर रख दिया और पुलिस में रपट लिखा दी कि साधु आत्मा सिंह ने क्रोधवश होकर एक निर्बल को मार डाला है। सुबह को पुलिस आ गई और संत की झोंपड़ी को घेर लिया और संत आत्मा सिंह जी को डाँटने लगे-बाबा जी बने हो और लोगों को मार-मार कर उनकी माया को हड़प करके मौज उड़ाते हो? अब तुम्हें मिलेगा तुम्हारी करनी का फल।

काफी लोग जमा हो गए थे। सिपाही और राजपूत रणधीर सिंह आदि कड़वे वचन बोल रहे थे। संत जी ने कहा-भाई, हमारी यहाँ किसी से शत्रुता नहीं है। हमें किसी की हत्या करने की क्या आवश्यकता है? मैंने तो उस बेचारे की मुखाकृति भी नहीं देखी, सूरत भी नहीं देखी।

रणधीर ने मजाक उड़ाते हुए कहा-अब संस्कृत के शब्द बोलकर अपने को निर्दोष महात्मा साबित करना चाहते हो। अब यह संस्कृत बचा नहीं सकती तुम्हें।

लोग हैरान थे कि निरापराध महात्मा के साथ क्या भद्दा बर्ताव हो रहा है। थानेदार ने डांटते हुए रौब के साथ पूछा-सच बताओ बाबा जी तुमने किस डंडे से उसे मारा है? उसे लाकर यहाँ सब के सामने रखो। रणधीर सिंह ने फिर गरज कर कहा-हाँ-हाँ, अब सोचते क्या हो? निकालो उस डंडे को, तैयार हो जाओ अपनी करनी का फल भोगने के लिए। खून को छिपा लेना आसान नहीं बाबा जी।

संत आत्मा सिंह जी ने अपनी सच्चाई पर अटल विश्वास के साथ कहा-दरोगा साहब ! मैंने बिलकुल नहीं मारा किसी को, अगर आप लोग कहते हैं कि मैंने ही मारा है तो वह मरा भी नहीं होगा क्योंकि मेरा मारा कोई मर नहीं

सकता, देखो चलकर उसे। जब उस मूर्च्छित व्यक्ति के मुँह से कपड़ा उठाकर बाँह को उठाया तो उस के मुँह से धीमी-सी, हाय ! की आवाज़ निकली। मुँह में पानी डाला तो वह अंदर चला गया और पानी पिलाया तो वह पी गया और आँखें खोल दीं। लोग उसे उठाकर बाबा जी की झोंपड़ी पर ले गए। सब के हितकारी बाबा जी ने अपने पानी के पात्र से पानी पिलाया तो होश में आकर उसने बाबा जी के चरणों को छूकर धन्यवाद किया। महात्मा का यह चमत्कार देखकर रणधीर सिंह राजपूत के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। ठंडे पसीने आने लगे, वह अधीर हो उठा।

इस घटना से संत आत्मा सिंह जी की महिमा और बढ़ गई। उल्टा कत्ल का केस रणधीर सिंह आदि राजपूत भाइयों पर बन गया। उन्हें लेने के देने पड़ गए। ठीक कहा है किसी कवि ने-

जड मूल से वो गये जिनी दुखाये संत।।
तीनों ताले दे गये रावण कौवों कंस।।

इस घटना से संत जी ने समझ लिया कि इससे प्रतिष्ठा बढ़ेगी और वह हमारी साधना में बाधक होगी। अब स्वार्थी व सकामी लोगों का तांता लगा रहेगा झोंपड़ी के द्वार पर। वह मुझे साधना-पथ पर एक इंच भी आगे नहीं बढ़ने देगा-

कबीर सिख साखा बहुते कीए केसो कीओ न मीतु।।
चाले थे हरि मिलन कउ बीचै अटकिओ चीतु।। (पन्ना **1369**)

वाली बात बन जाएगी। अतः यहाँ से अब चले जाना ही श्रेयस्कर है। वे इतना सोच ही रहे थे कि द्वार पर से आवाज़ आई-बाबा जी! जय सियाराम। उत्तर में जय सियाराम कहते हुए आपने देखा तो एक बाबा बड़ा-सा तूंबा और बैरागन हाथ में लिए बाहर खड़े हैं। उन्हें संत आत्मा सिंह जी ने सत्कार से आसन पर बिठाया। इलायची और मिश्री प्रसाद के रूप में भेंट की और पधारने का कारण पूछा और शुभ नाम बताने की कृपा करने को कहा। आगंतुक बाबा जी ने

अपना नाम जानकी दास बताते हुए कहा कि मुझे बाबा बुड्ढ़ा सिंह जी महाराज ने भेजा है और आपको ऋषिकेश वापस आ जाने की आज्ञा की है। राह खर्च के लिए 200 रु. दिया है और साथ ही अगर न जाना चाहें तो भी यह माया अपनी संभालो। संत जी महाराज तो पहले ही से तैयार बैठे थे। उन्होंने जानकीदास जी को धर्मशाला में ठहराया और उन्हें पूरी-मिठाई का पक्का भोजन कराया। प्रातः ही झोंपड़ी पर आने को कहा और स्वयं अपनी झोंपड़ी पर आ गए।

अगले दिन प्रातः आठ बजे बाबा जानकी दास जी संत आत्मा सिंह जी की झोंपड़ी पर पहुँच गए। परम तपस्वी संत आत्मा सिंह जी ने जानकी दास को साथ लेकर नित्य नियमानुसार 9 बजे गंगा-स्नान किया और घास में बैठ गए और नित्य-नियम का पाठ करने लग गए। पर बेचारे वैरागी बाबा ने डुबकी लगाई और लगे थर-थर काँपने। जानकी दास जी की चिंताजनक दशा देखकर पाठ-वाठ तो भूल गए, घास-फूस और सूखी लकड़ियां इकट्ठी कीं, एक बीड़ी पी रहे पहाड़िये ने आग सुलगाई और जानकी दास को उठाकर आग के पास बिठाया, उधर सूर्य भगवान की किरणें भी तीव्र हो गईं। अग्नि, सूर्य और संत-इन तीनों की कृपा से बेचारे बाबा जी बच गए वरना दाँत तो खटखटाने लग गए थे। डबल निमोनिया का खतरा हो गया था। कठिनाई से साढ़े ग्यारह बजे क्षेत्र पर पहुँचे। वहाँ भोजन करके वृद्ध महात्मा मंगल सिंह जी के पास गए। संत आत्मा सिंह जी ने गुरुदेव बाबा बुड्ढा सिंह जी की आज्ञा की बात बताई। संत मंगल सिंह जी ने कहा कि-वह ठीक ही निकला न? जो मैंने कहा था कि महायोगी की कही बात कभी अन्यथा नहीं हो सकती, तुम्हें समाज-सेवा का काम करना ही पड़ेगा। अच्छा जाओ महंत बुड्ढ़ा सिंह जी को हमारा प्रणाम कहना।

महात्मा के चरणों की धूलि लेकर श्रद्धालु संत आत्मा सिंह जी ने मस्तक पर लगाई। आशीर्वाद लेकर वापस झोंपड़ी पर आ गए।

❑

तरंग 43

वापसी का कार्यक्रम

चूँकि ऋषिकेश से चले आपको अब तीन साल पूरे हो चले थे, केवल चार-पाँच दिन ही शेष थे अतः आपने शीघ्र चलने का कार्यक्रम बनाया। दूसरे दिन प्रातः संत भगवान सिंह जी के पास जाकर कहा-चलते समय महायोगी के दर्शन की अभिलाषा है। आज भोजन उपरांत चलने की कृपा करेंगे? संत भगवान सिंह जी योगीराज के श्रद्धालु थे ही, उन्हें क्या एतराज हो सकता था। स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा-नियत समय पर आने की कृपा कीजिएगा। तथास्तु कहकर संत आत्मा सिंह जी भोजनोपरांत बाबा जानकी दास जी को साथ लेकर संत भगवान सिंह जी के पास पहुँच गए। वहाँ से तीनों संत महायोगी की गुफा की ओर चल दिए। मार्ग में वही अजगर, उसी वृक्ष के नीचे देखा। गुफा में जाकर योगी महाराज के चरणों में प्रणाम करके पूर्वोक्त अजगर का जिक्र किया तो महाराज ने बताया कि यह तो मेरे इधर आने से भी पहले से यहाँ रहता है। 7 वर्ष पहले यह एक फर्लांग पर स्थित देवदारू के पेड़ तले रहता था, अब अमलतास के वृक्ष के नीचे रहता है। प्रकृति के नियमानुसार कभी-कभी इसे कोई शिकार भी मिल जाता है। वरना हवा खा कर निराहार ही रह जाता है। यह बड़ा बलवान भी है। सुअर और शेर भी इसकी लपेट में आ जाए तो जीवित नहीं रह सकता। इसीलिए भर्तृहरि ने कहा है-

सर्पाः पिबन्ति पवनं नच दुर्बलास्ते,
शुश्कैस्तृणैर्वनगजाः बलिनो भवन्ति।
वन्यैः फलैर्मुनिजनाः क्षिपयन्ति कालम्,

सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्।

अच्छा, छोड़ो इसे, बताओ कुशल से तो हो सब लोग। क्या अब वापस जाने की इच्छा है? योगीराज ने मनोभाव जान कर कहा- हाँ महाराज ! गुरुदेव की आज्ञा है वापस लौट आने की, संत आत्मा सिंह जी ने विवशता व्यक्त करते हुए कहा। महाराज ने कहा ठीक है, गुरुदेव की आज्ञा मानने में ही कल्याण है। महायोगी ने उनके आशय को जानकर कहा- अच्छा जाओ ! आत्म-कल्याण के लिए आत्म-संयम पूर्वक ईश्वर-चिंतन और सुकृत्य से निवृत्त न होना। भगवान भला करेंगे, कहकर कृपालु महाराज ने जाने की आज्ञा प्रदान की।

महापुरुष की प्रसन्नता लेकर सब संत वापस आ गए। संत आत्मा सिंह जी ने महात्माओं के क्षेत्र और पंडा आदि को उचित दान-दक्षिणा देकर ऋषिकेश की ओर प्रस्थान की तैयारी की। आगामी दिन प्रातः कालीन स्नान-ध्यान नित्य-कर्म से निवृत्त होकर जलपान किया। बैरागी बाबा जानकीदास और संत आत्मा सिंह जी कठिन तपस्या और जप-तप आदि से आत्म-शुद्धि करके 4 श्रावण 1979 को तीन साल पूरे करके उत्तरकाशी से ऋषिकेश की ओर चल पड़े।

वापस नाकोरी चट्टी

प्रातः उत्तरकाशी से चल कर सायं नाकोरी चट्टी आ ठहरे। यहाँ सुख से रात बिता कर सवेरे स्नान-जलपान आदि करके आगे चलने के लिए आपने कुली को साथ ले लिया। कारण, उत्तरकाशी में तीन वर्ष की तपस्या से शरीर बहुत कृश (कमज़ोर) हो गया था। अतः भार लेकर चलना संभव नहीं था। संत जानकीदास ने तो बहुत आग्रह किया कि कंडी वाला कुली ले लें, क्योंकि पैदल चलने से आपको अधिक कष्ट होगा। पर संत आत्मा सिंह जी चूँकि निर्मल व्यक्तित्व के स्वामी थे, अतः उन्हें यह व्यवहार मानवताहीन लगता था। उन्हें कंडी पर बैठकर मनुष्य की सवारी करनी मानवता का अपमान जान पड़ता था।

अतः पैदल चलना ही ठीक समझा, सो 9 मील पैदल चलकर सिमली पहुँच गए। यहीं से रास्ता यमुनोत्री को भी जाता है। यहीं से प्रतिलोम गति से पूर्व क्रमानुसार लौटते हुए टिहरी पहुँचने में डेढ़ मास का समय लग गया। क्योंकि अब आपका शरीर बहुत निर्बल हो चुका था अतः बहुत कम चल पाते थे। टिहरी में बाबा जानकीदास को अतिसार (डायरिया) कष्ट हो गया पर संत आत्मा सिंह जी के पास अमृतधारा की शीशी थी, उसमें से मात्र दो खुराक देने से सब ठीक हो गया। यहाँ आप लोगों ने तीन दिन विश्राम किया। आगे देवप्रयाग की ओर चल पड़े। टिहरी से कोटे वर और खरसाड़ा आदि होते हुए चार दिन में देवप्रयाग पहुँचे। यहाँ थकावट के कारण संत आत्मा सिंह जी को कुछ ज्वर आ गया पर पास में रखी हुई ऐस्प्रो की यथाक्रम दो-तीन गोली के सेवन से पसीना आकर ज्वर तो पिंड छोड़ गया पर निर्बलता शेष रह गई थी। इसलिए आपको यहाँ चार दिन रुकना पड़ा। यहाँ बाबा जानकी दास की सेवा ने बड़ी सहायता पहुँचाई। इससे यह विश्वास पक्का हो गया कि दूर की यात्रा अकेले नहीं करनी चाहिए, न जाने कब क्या हो जाए।

देवप्रयाग पहुँचने से मनोबल बहुत बढ़ा हुआ था, क्योंकि यहाँ से ऋषिकेश केवल 44 मील ही रह गया था। यहाँ 4 दिन रह कर गूलरचट्टी, फूलचट्टी, नाईमोहन आदि होते हुए मनोहर मार्ग के सुंदर सीन देखते 4 दिन में लक्ष्मण झूला पहुँच गए। यहाँ पहुँच कर दोनों महात्माओं ने अति श्रद्धा के साथ गंगाजल का आचमन लिया और वापस ऊपर आकर आपने घोड़ा-गाड़ी ले ली। दोनों संत और कुली, तीनों सवार होकर निर्मल आश्रम के द्वार पर जा उतरे। स्वभाव के अनुसार आपने तांगे वाले को किराये के अलावा दो रुपये इनाम दे दिए।

गुरु-चरणों में

गुरु-चरणों में भेंट करने के लिए फल इत्यादि तो आपने बाजार से खरीद ही लिए थे। जैसे ही आपने ड्योढ़ी में पाँव रखा, संत निश्चल सिंह की नजर

आप पर पड़ी तो वे दौड़कर आपके चरणों से लिपट गए। आपने उठाकर प्रेम से गले लगाया। सब लोग मिलकर महाराज बुड्ढा सिंह जी के कमरे में गए। आपने अति श्रद्धा से महाराज जी के चरणों पर दंडवत प्रणाम किया और पास ही हाथ जोड़ कर बैठ गए। यह बात 11 भाद्रपद संवत् 1979 की है। महाराज द्वारा कुशल आदि पूछने के बाद संत जी ने विनम्रता से कहा-महाराज! प्रचंड सूर्य की प्रखर किरणों का जहाँ प्रबल प्रकाश हो वहाँ कहीं तपिश का नामोंनिशां भी रह सकता है? कभी नहीं। इसी प्रकार

ब्रहम ज्ञानी सदा समदरसी।। ब्रहम ज्ञानी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी।।

(पन्ना **272-73**)

के अनुसार जिस पर आपकी दया-दृष्टि हो, उसे कभी दुख दर्द कष्ट, क्लेश आदि छू नहीं सकते हैं? संत आत्मा सिंह! तुम केवल अच्छे प्रबंधक ही नहीं, प्रत्युत् वाकपटु प्रवक्ता पंडित भी हो, कहते हुए विनोदपूर्ण प्रसन्नता व्यक्त की। तब तक संत निश्चल सिंह जी चाय और सिंधी-पापड़ लेकर आ गए। महाराज ने एक घूँट चाय लेकर सबको चाय पीने की आज्ञा प्रदान की। सब चाय पी चुके तो महाराज ने संत मान सिंह जी को सब के लिए बिस्तर और उचित स्थान आदि का प्रबंध करने का आदेश दिया। संत आत्मा सिंह जी से पूछा-आत्मा सिंह तुम निर्बल बहुत हो गए हो। तुम्हारे जैसे बलिष्ठ युवा की इतनी निर्बलता की संभावना नहीं थी। संत आत्मा सिंह जी ने हाथ जोड़कर कहा-महाराज! आप सब कुछ जानते हो, मैं क्या हूँ। यह कहकर विनम्रता व्यक्त की और मौनावलंबन कर लिया। पर बाबा जानकीदास जी ने कहा-महाराज, तीन वर्ष की कठिन तपस्या तितिक्षा आदि के कारण आशातीत निर्बलता आ जाना अवश्यम्भावी था। यह सुनकर महाराज ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा-बहुत अच्छा! तपस्या ही संतों का भूषण है। अच्छा जाओ, आराम करो। महाराज की आज्ञा सुनकर सभी लोग यथानिर्दिष्ट स्थानों को चले गए। रात्रि-भोजन के

उपरांत महाराज ने संत आत्मा सिंह जी से उत्तरकाशी में तपस्याकाल के अनुभव सुनाने को कहा–तो संत आत्मा सिंह जी ने इसे आत्म लाघा व अहंकार की बात समझ कर कुछ न कहकर मौनावलंबन को ही श्रेयष्कर समझा और बाबा कान्ह सिंह जी महायोगी की बातें सुनाने लग गए। महाराज ने भी उनके मनोगत भाव को समझ कर आगे कुछ न पूछा। जाकर आराम करने की आज्ञा दी। सभी लोग अपने-अपने स्थानों में जाकर निद्रा देवी की गोद में विराज गए।

दूसरे दिन सवेरे स्नान-ध्यान जलपानंतर साथ आए कुली का हिसाब करके धोती-कमीज आदि कपड़े देकर उसे वापस भेज दिया। संत आत्मा सिंह जी लगभग एक महीना औषधि सेवन करके और अच्छी खुराक खाते रहने से अच्छे हो गए। काम धंधे की देख-रेख करने लग गए। पूरी तंदुरुस्ती उन्हें तीन मास के बाद हासिल हुई। इन्हीं दिनों में संत नारायण सिंह जी जो उन दिनों में लगभग बारह-तेरह वर्ष के बालक थे, निर्मल आश्रम में आने-जाने लगे थे। संत आत्मा सिंह जी ने उन्हें श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का पाठ कराया। जपु जी साहिब एवं रहरास साहिब आदि कंठस्थ कराए। इसके पश्चात् हिंदी वर्णमाला सिखा कर महाभारत की कहानियां आदि सुपाठ्य पुस्तकें पढ़ाईं।

संत आत्मा सिंह जी के अन्य गुरु भाई बालक नारायण को डाँटते- डपटते रहते थे। वे नहीं चाहते थे कि संत आत्मा सिंह की प्रतिष्ठा बढ़े क्योंकि किसी भी व्यक्ति की प्रतिष्ठा के कारण जहाँ उसके महान् गुण और उत्तम स्वभाव आदि होते है वहाँ शिष्य-उपशिष्य आदि भी प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहायक हो जाते हैं। अतः आपकी आज्ञा से बालक नारायण अन्यान्य आश्रमों में रहकर पढ़ता रहा और जो आज्ञा होती आश्रम की सेवा कर जाता था।

एक दिन की बात है–हरियाणा का एक ज्योतिषी पंडित आश्रम में आ गया। हँसी-हँसी में कई एक साधुओं ने अपने हाथ उसे दिखाए। अपनी समझ के अनुसार उसने सभी को भूत-भविष्यत की बातें बताईं। उनमें से बहुत-सी

यथार्थ थीं। संत आत्मा सिंह जी ने नारायण सिंह जी की हस्त-रेखा देखने को कहा तो पंडित जी ने बताया कि इसकी हस्त- रेखा से ज्ञात होता है कि इसके भाग्य में विद्या तो अधिक नहीं, सामान्य है, पर यश बहुत है। इसकी मान-प्रतिष्ठा भी बढ़ती ही जाएगी। इसके शुभ-स्वभाव की विशेषता होगी सरलता, अभिमानहीनता, सुहृदयता, कृतज्ञता। सब का शुभ चिंतन और सबके साथ प्रेम, बड़ों का विश्वास-पात्र व कृपा-पात्र होना, शील आदि गुणों के कारण इसका कोई कट्टर शत्रु भी नहीं होगा। हाँ, थोड़ी बहुत ईर्ष्या तो लोग करते ही रहेंगे, ये अलहदा बात है।

झाड़ी की यात्रा

संत आत्मा सिंह जी की अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व को संवारने और निखारने वाली विशेषता थी-आस्तिक बुद्धि और श्रद्धा। भगवान में, गुरुदेव के चरणों और भजनानन्दी महात्माओं के चरणों में, उनकी अटूट श्रद्धा थी। अतः कई दिन से उनकी इच्छा थी कि चलकर पावनतम स्थान की यात्रा कर आएं। सो एक दिन पर्याप्त फल-फूल आदि लेकर संत आत्मा सिंह जी, संत निश्चल सिंह जी और नारायण सिंह जी तीनों ने तांगा किया और झाड़ी में पहुँच गए।

जिन महापुरुषों के चरण-चिन्हों से ऋषिभूमि-ऋषिकेश का कण-कण कंचन के समान था, जिस झाड़ी का एक-एक पेड़ कल्पतरु की समता करता था, जिस की धूलि को मस्तक पर लगा कर राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार, सरदार अपने अहोभाग्य समझते थे, उस तपोभूमि झाड़ी के प्रमुख महापुरुष महातेजस्वी पंडित मूलसिंह जी नैयायिक साक्षात् भगवत् स्वरूप ब्रह्मज्ञानी श्री श्री 108 पंडित ईश्वर सिंह जी दौधर वालों के अनन्य श्रद्धालु तथा प्रमुख कृपापात्र स्वामी हीरालाल जी महाराज समस्त संत समाज के श्रद्धेय महाविद्वान् बाबा प्रेम सिंह जी, गुरु जी पंडित हरिदेव सिंह जी के गुरु पंडित नारायण सिंह जी, स्वामी

कल्याणानंद जी उदासीन, परम विरक्त स्वयं ज्योति जी उदासीन आदि पूज्य महात्माओं के चरणों में भेंट किए। अपने समवयस्क मित्र संत तारा सिंह जी, विरक्त मितसिंह जी, पंडित स्वामी संत सिंह जी, श्री पंडित कल्याण सिंह जी, स्वामी संतोषानन्द जी उदासीन आदि से भी भेंट हो गई। उन लोगों को यमुनोत्री और उत्तरकाशी के अनुभव सुनाए। महायोगी बाबा कान्ह सिंह जी आदि महापुरुषों की महिमा के बारे में बहुत कुछ बताया।

संत तारा सिंह जी ने पूछा कि गंगोत्री, हेमकुंड, बद्रीनाथ आदि की यात्रा क्यों न करके आए तो आपने विनीत स्वर में उत्तर दिया कि इच्छा तो बहुत थी कि सर्वतीर्थों की यात्रा करके लौटूँ पर उत्तरकाशी में साधना में मन ऐसा रम गया कि उस आनंद को छोड़ने को जी राज़ी नहीं हुआ। बस ख़याल आता तो यही सोचकर छोड़ देना पड़ता कि चलते समय सब की यात्रा करते चलेंगे। पर आते समय निर्बलता इतनी बढ़ गई कि आगे चलना असंभव हो गया। भाग्य ने साथ दिया तो एक बार फिर जाने की इच्छा है, पर आगे 'ईश्वरेच्छा बलीयसी'। इतना कहते हुए संत आत्मा सिंह जी ने मित्र मंडली से वापस आश्रम जाने की आज्ञा माँगी तो सब संत झाड़ी से सड़क तक आप को छोड़ कर वापस झाड़ी को चले गए।

कार्य-भार संभाला

अब आप पूर्ण स्वस्थ हो चुके थे, स्थान का तमाम काम अपने हाथ में करके आश्रम का कुल कार्य-भार संभाल लिया था। उधर कराची से महाराज को पत्र आ गया कि आप कार्तिक पूर्णिमा के पवित्र अवसर पर पधारने की कृपा अवश्य करें। भक्तलोग बहुत उत्कंठा से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यह पत्र महाराज ने संत आत्मा सिंह आदि सब शिष्यों को सुनाया और कहा कि देखो भाई! आत्मा सिंह के आश्रम में न रहने के कारण हम सिंध की ओर नहीं जा सके। अतः अब हमें अवश्य जाना पड़ेगा। आप लोग सब गुरु-

भाई प्रेम से मिलकर रहें। अपने-अपने कार्य-भार को निभाते रहें। बड़े-छोटे का यथोचित आदर-सम्मान करते रहना। संध्या-उपासना से कभी विरत न होना और देखो क्रोध और घृणा बहुत बड़े दुर्गुण हैं, इनको कभी भी हृदय में स्थान न देना। याद रखो घृणा से घृणा कभी नहीं जा सकती। उसे जीतने का एकमेव साधन है-प्रेम और व्यवहार की कोमलता, वार्तालाप की मधुरता। अतः आप लोग आपस में और अन्य सब के साथ सद्भाव और सहानुभूति का बर्ताव रखें। प्रेम से संसार के सब लोग अपने बन जाते हैं। इतना उपदेश देकर वे गाड़ी से कनखल निर्मल बाग में आ ठहरे। संत आत्मा सिंह जी, संत निश्चल सिंह जी आदि संत साथ आ गए।

कनखल से संत निश्चल सिंह जी, श्री बाबा प्रेम सिंह जी, श्री पंडित सुच्चा सिंह जी (संगतपुरा वाले), संत कृपाल सिंह जी योगीराज, संत सेवा सिंह जी, संत करतार सिंह जी, संत साहिब सिंह जी आदि सात संतों को साथ लेकर कराची के लिए रवाना हो गए और संत आत्मा सिंह जी गाड़ी में चढ़ाकर स्वयं ऋषिकेश वापस आ गए।

कराची में

सिंध में सबसे पहले आपके सेवक बने थे सेठ चेलाराम जी कराची वाले। वे आपके चरणों के अनन्य श्रद्धालु थे और उनकी गिनती कराची के बड़े-बड़े अमीरों में थी। कराची स्टेशन से वे आपको अति श्रद्धा और सद्भाव से जुलूस निकाल कर के अपने घर ले गए और अपने बंगले में आपको ठहराया। यहीं पर आपने 1979 की कार्तिक पूर्णिमा मनाई।

अब आप वृद्धावस्था की निर्बलता को महसूस करने लगे थे। इसलिए स्वयं कथा-वार्ता नहीं करते थे। भक्त लोग आपको गुरुवाणी का कीर्तन सुनाते रहते थे। अगर किसी को किसी बात के रहस्य को समझने की इच्छा होती और उस बारे में प्रश्न करता तो उसका समाधान करके तसल्ली करा देते थे। इसी प्रकार

सत्संग और उपदेश करते हुए एक महीना कराची में ठहरे। इसके बाद झूम्मटमल (हैदराबाद वाले) आकर आपको अपनी कोठी हैदराबाद में ले गए। वहाँ 10-12 दिन रहे। इसी ढंग से उपदेशामृत पिलाते हुए आप 10 दिन के बाद सेठ रेवाचंद के मकान में चले गए। यहाँ सेठ जी के कई बच्चों को जपु जी साहिब कंठस्थ करवाया और वाणी के अनेक शब्द कंठ करवाए। इसी प्रकार यथाक्रम से मुक्खी गोविंदराम प्रीतमदास, दीवान दयाराम जज, मास्टर खूबचंद चिनानी, जिनके पुत्र दयाराम चिनानी आगे चलकर बंबई के चीफ जस्टिस हुए (जिनका एक मोटर एक्सीडेंट में उनका स्वर्गवास हो गया था) आदि की कोठियों में तीन महीने रहे। प्रभु का नामामृत पिलाकर मानव-धर्म और गुरुवाणी का प्रचार करके सेठ द्वारकादास बैंकर के बुलावे पर शिकारपुर चले गए। यहाँ प्रेमी भक्तों के आग्रह पर आपने 2-4 बार गुरुवाणी के शब्दों की कथा सुनाने की भी कृपा की पर अधिक समय भक्तमंडली का कीर्तन सुनने में ही बिताते थे।

पंडित को आश्चर्य

यहाँ पर ब्रजभूषण नाम के एक विद्वान् पंडित रहते थे। एक दिन उनका विचार हुआ कि महात्माओं का नाम बड़ा हो रहा है चलकर देखें तो सही कि उनको शास्त्र-ज्ञान भी है कि खाली आडंबर आदि से ही चिता रहे हैं भक्तों को।

वह एक दिन महाराज के पास आया और आकर-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः
उभयोरपि ध्ष्टोन्तस्तत्वन्यस्तत्वदर्शिभिः।।

लोक पर सांख्य शास्त्र के मत को लेकर प्रश्न कर डाला। पंडित सुच्चा सिंह जी को शांकर भाष्य और मधुसूदनी टीका सब याद ही पड़े थे सो धारा-प्रवाही संस्कृत में सांख्य मत का खंडन कर वेदांत मत का समर्थन किया। पंडित जी का यह संदेह तो दूर हो गया कि महात्मा लोग शास्त्र-ज्ञान से शून्य ही होंगे, पर फिर भी वह अपनी योग्यता की धाक जमाने के लिए वाहिगुरु मंत्र की सिद्धि के बारे

में प्रश्न कर बैठे।

बोले-वाहिगुरु शब्दस्य कथं सिद्धिर्भवति ?

यानि संस्कृत व्याकरण के अनुसार वाहिगुरु शब्द की सिद्धि कैसे हो सकती है, यह बताने की कृपा करें। बस फिर क्या था, व्याकरण-ज्ञान के समुद्र बाबा प्रेम सिंह जी बोले-पहले 'भवति', इस रूप की सिद्धि कैसे होती है? यह तो बताइए। इस पर बाबा जी ने 15 मिनट के भाषण में अनेक प्रश्न कर डाले। पंडित जी ने समाधान करने का यत्न तो किया, पर बाबा जी का शास्त्र-ज्ञान तो असीम था, सो पंडित जी ने जो उत्तर दिया उसका खंडन कर दिया। पंडित जी का कोई भी समाधान ठीक न हो पाया। आखिर महाराज महंत बुड्ढा सिंह जी ने ब्राह्मण देवता को यह कहकर बोलने से रोक दिया कि इनका व्याकरण का ज्ञान असीम है, आप पार नहीं आ सकेंगे। महाराज की आज्ञा से ब्राह्मण ने बहस बंद कर दोनों महापुरुषों के शास्त्रीय-ज्ञान की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इसके बाद वह रोज ही आता और बाबा प्रेम सिंह जी से व्याकरण संबंधी संदेहों को दूर करता। श्री 108 पंडित सुच्चा सिंह जी और बाबा प्रेम सिंह जी महाराज ने ब्राह्मण की विनीतता विद्यानुराग और सद्विचारों की प्रशंसा की और महाराज ने इसे कश्मीरी दुशाले और पच्चीस रुपये आशीर्वाद के रूप में दिए।

इस भाँति सत्संग द्वारा सद्विचारों और सद्गुणों का प्रसार करते हुए फाल्गुन मास समाप्त हो गया। अगले दिन बाबा बुड्ढा सिंह जी ने

चेति गोविंदु अराधीऐ होवै अनंदु घणा।। (पन्ना **133**)

इन बारह माह के शब्द की मनोहर कथा की। श्रोतागण बहुत प्रसन्न हुए।

इस प्रकार शुद्ध धार्मिक प्रचार करते हुए आप मंडली सहित संवत 1980 वि० को हरिद्वार वापस आ गए। यहाँ बेसाखी का स्नान करके पंडित सुच्चा सिंह जी अपने डेरे संगतपुरा को वापस चले गए और बाबा प्रेम सिंह जी ऋषिकेश झाड़ी में पहुँच गए। ❑

तरंग 44

पुनः ऋषिकेश में

संत आत्मा सिंह जी बैसाखी पर कनखल आ गए थे और यहाँ पर बाग की कोठी का शेष काम आरंभ करवा दिया। संत साहब सिंह छोटे, जो कि आपकी सेवा में छाया बन साथ रहते थे, का श्री गुरुग्रंथ साहिब का पाठ शुद्ध करवाया। साथ-साथ अध्यात्म प्रकाश आदि छोटे-छोटे ग्रंथ पढ़ाए। संत आत्मा सिंह जी सहित सब गुरुभाई मिलकर मकान के काम में जुट गए। यहाँ के काम को पूर्ण करके आप श्रावण के शुरू में ऋषिकेश आ गए और अपने मकान के पीछे पड़ी भूमि खरीद कर उस में गऊशाला बना दी। गऊओं की सेवा पर एक ग्वाला नौकर रख दिया गया। संत आत्मा सिंह जी स्वयं दूध का वितरण करते और गऊओं की सेवा की देख-रेख भी करते थे।

अब यहाँ आकर महाराज ने संतों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। आश्रम निवासी प्रत्येक संत को कुछ न कुछ पढ़ना अनिवार्य था। संत साहब सिंह, संत (खीवन) जीवन सिंह और संत मान सिंह आदि को महाराज स्वयं पढ़ाते थे। संत आत्मा सिंह जी इन दिनों संत नारायण सिंह जी को संस्कृत का व्याकरण स्वयं पढ़ाते थे।

महाराज ने इसी वर्ष आश्रम की दूसरी मंजिल को मुकम्मिल कर देने का इरादा पक्का कर रखा था। इसीलिए संत आत्मा सिंह जी को अधिक परिश्रम करना पड़ता था और इसीलिए महाराज को सिंध जाने का विचार स्थगित कर देना पड़ा। यह काम संत आत्मा सिंह जी के अथक परिश्रम से मार्गशीष (मग्घर) मास में पूरा हो गया। इस खुशी में बाबा जी महाराज ने, इसी मास की

अमावस्या के दिन सब महात्माओं को पक्का भंडारा दिया और संत आत्मा सिंह जी की लगन, सहनशीलता, कार्यक्षमता और सफल सेवा की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इन दिनों में सरदार आत्मा सिंह जी कटारिया पेशावर वाले पंजाब सिंध क्षेत्र के काम से त्याग-पत्र देकर, महाराज बाबा बुड्ढा सिंह जी के शिष्य बन गए थे, जो आगे चलकर सन् 1923 में श्री निर्मल अखाड़ा के एकड़ ग्राम के महंत नियुक्त किए गए। संत आत्मा सिंह जी पंजाबी, उर्दू के माहिर तो थे ही, यहाँ आश्रम में रहकर उन्होंने हिंदी के स्वाध्याय पर भी विशेष ध्यान दिया और हिन्दी के अच्छे जानकर हो गए। आपने वैद्यक और यूनानी चिकित्सा का भी पर्याप्त अध्ययन किया।

यहाँ रहकर महाराज ने-

कबीर मन समझावन कारने कछूअक पढ़ीऐ ज्ञान।। (पन्ना **340**)

के अनुसार सभी संतों को ज्ञान प्राप्त करने में प्रवृत किया। आठ-नौ महीने ऋषिकेश में रहकर आप नए संवत के आगमन से पहले चैत्र की अमावस्या पर पुनः हरिद्वार, कनखल में आ गए। यहाँ इस वर्ष बहुत से सिंधी भक्त भी बैसाखी के स्नान के लिए आए थे, जिनमें सेठ चेलाराम, टोपनदास आदि प्रमुख थे। भक्तों को आप बैसाख माहात्म्य की कथा सुनाते रहे जिसे सुनकर भक्तजनों के हृदय शांति और श्रद्धा से परिपूर्ण हो गए। चलते समय प्रेमी भक्त, महाराज को सिंध पधारने का निमंत्रण दे गए। आगे के तीन महीने आप यहाँ पर संतों को पढ़ाते रहे। यहाँ निर्मलबाग और कोठी की मजबूती, सुंदरता और संपूर्णता पर विशेष ध्यान दिया। बाग में बनारसी आमलों का एक पट्टा लगवाया और कई फूलों के पौधे लगवाए और कोठी में आवश्यक वस्तुओं की कमी पूरी की। सिंध की ओर सन् 1924 (संवत) के तीन महीनों में सिंध पधारने के निमंत्रण-पत्रों के ढेर लग गए थे, अतः आप निर्मलबाग का काम संत संतोष व संत साहब को सौंपकर ऋषिकेश आ गए। यहाँ संत आत्मा सिंह आदि

को हिदायत दी कि आए गए अतिथि, साधु संतों की सेवा से संकोच मत करना। आश्रम निवासी सब संतों के साथ सद्भाव बनाए रखना। समय मिले तो झाड़ी में रहने वाले विरक्त महात्माओं के दर्शन जरूर कर आया करना। नित्य नियम का जाप भजन स्मरण आदि में कभी नागा न पड़ने देना। याद रखो कि अपने मन में वैराग्य आदि सद्गुणों की स्थिति बनाए रखने के लिए गुरु तेग बहादुर जी की वाणी बहुत उपयोगी है। जिज्ञासु का कर्त्तव्य है कि वह-

गुन गोबिंद गाइओ नही जनमु अकारथ कीनु।।
कहु नानक हरि भजु मना जिह बिधि जल कउ मीनु।। (पन्ना **1426**)

यथा

सुआमी को ग्रिहु जिउ सदा सुआन तजत नही नित।।
नानक इह बिधि हरि भजउ इक मनि हुइ इक चिति।। (पन्ना **1428**)

आदि के उपदेश के अनुसार जीवन-निर्माण का यत्न जारी रखें इत्यादि उपदेश देकर कनखल आ गए और यहाँ दो दिन रहकर दिनांक 2 श्रावण संवत 1981 को शिकारपुर को रवाना हो गए। साथ में परम श्रद्धालु संत साहब सिंह जी छोटे, संत अमर सिंह जी, संत खीवन सिंह जी, संत सतनाम सिंह जी कुटिया वाले, संत मित सिंह जी विरक्त, महंत हाकम सिंह जी अमृतसर वाले, संत ज्ञानी कृपाल सिंह जी झंग वाले, पंडित नारायण सिंह जी काशी वाले भी थे।

शिकारपुर में

सेठ द्वारकादास, सेठ लुड़ींदासिंह आदि श्रद्धालु भक्तों का जत्था महाराज जी को लेने के लिए स्टेशन पर मौजूद था। जैसे ही गाड़ी स्टेशन पर पहुँची, जय बाबा बुड्ढा सिंह जी की आदि जयकारों से आकाश गूँज उठा। बाबा जी को फूल-मालाओं से लाद दिया गया। बैंड-बाजों की संगीतमयी ध्वनि में बाबा साहिब का जुलूस शान से चलता हुआ सेठ द्वारकादास की कोठी पहुँचा। सिंधी श्रद्धालु भक्तों की खुशियों का कोई अंत न था। एक कमरे में महाराज का आसन था और एक कमरे में सब संतों का। दोनों समय प्रातः सायं सत्संग

होता। महाराज पलथी लगाकर बैठ जाते और भक्त जन बच्चे-बच्चियां मधुर ध्वनि से शब्द कीर्तन करते रहते। कोई भक्त आकर विशेष बात पूछता तो आप शांति के साथ यथार्थ उत्तर देकर प्रश्नकर्ता को संतुष्ट कर देते थे। कभी-कभी पंडित नारायण सिंह जी काशी वाले पुराणों में वर्णित ऋषिमुनियों अवतारी पुरुषों और भक्तों की कथा वार्ता सुनाया करते थे।

बाबा साहिब यहाँ से शीघ्र लौट जाना चाहते थे पर चूँकि सन् 1923 (संवत् 1980) में आप सिंध में आए नहीं थे अतः प्रेमी आने नहीं देते थे, यहीं पौने-दो महीने गुजर गए। पर आखिर हैदराबाद से दीवान दयाराम जज, चार आदमी लेकर आ गए तो भक्त भी विवश थे। सो आप संत मंडली सहित हैदराबाद में आ गए। यहाँ आए 20-25 दिन गुज़रे थे कि ऋषिकेश से हृदय विदारक पत्रिका आ गई।

पुराणों में वर्णित जल-प्रलय का नाम तो लोग सुनते आए हैं पर यहाँ ऋषिकेश में बहुत से लोगों ने प्रलय की विनाश लीला आँखों से देखी है।

प्रलय की विनाश लीला ऋषिकेश से संत करतार सिंह जी की लिखी हुई चिट्ठी जोकि काँपती हुई कलम से लिखी हुई जान पड़ती थी, आई जिसका सिरलेख था 'जल प्रलय की विनाश लीला'। आगे लिखा था गंगा जी की बाढ़ ने ऋषिकेश में जल प्रलय का दुःखदायी दृश्य बना दिया है। सन् 1824, तदनुसार संवत 1981 की बात है, आश्विन वदी चतुर्दशी सायंकाल से हिमालय की समस्त पर्वतमाला में प्रलयकारी मूसलाधार बारिश पड़ने लगी थी। गंगा-यमुना की तमाम सहायक नदियां उछल-कूद मचाती हुई किनारे के सरसब्ज खेतों-वृक्षों को गिरा, तोड़-मरोड़ कर अपने प्रवाह में तिनकों की तरह बहा रही थीं। आस-पास पड़े हुए बड़े-बड़े पत्थर युवा खिलाड़ियों के बूटों की ठोकरों के आगे भागती हुई फुटबाल की तरह लुढ़कते हुए बह रहे थे, किसी को एक क्षण विश्राम लेने की फुरसत नहीं थी। यहाँ तक कि शीशम, साल, सांधन और सिंभल आदि भारी भरकम दरख्त विवश होकर बेतहाशा भागते हुए तमाशा दिखा रहे थे। इन

वृक्षों के मोटे टहनों से लिपटे हुए काले नाग और अजगर भी बह रहे थे। यहाँ तक कि विवश हुए शेर और हाथी भी दम तोड़ते हुए चिंघाड़ रहे थे। यहाँ छोटे-मोटे किसी का लिहाज नहीं था। मनुष्य, पशु, गाय-भैंस, शेर-चीते सब काल की विकराल गाल में समा रहे थे। प्रकृति के प्रांगण में यह एक अभूतपूर्व घटना थी, प्रलयकारी वृष्टि थी।

यह कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। मानवों, पशुओं और वृक्षों के अलावा जहाँ गरीबों की झोंपड़ियाँ, बने बनाये छप्पर आदि बहे जा रहे थे, वहाँ अमीरों की गगन-चुंबी अट्टालिकाएं अटारियां भी देखते ही देखते भरपूर जलराशि के सामने आत्म समर्पण करके लेटती जा रही थीं।

पहाड़ से प्रतिस्पर्धा करने वाली फिरोज़पुरियों की हवेली की ऊँची छत पर पैंतीस आदमी जान बचाने की ग़र्ज़ से खड़े थे। बाढ़ के अतुल-बल पानी ने एक धक्का दिया, बस बनी-बनाई हवेली अपने शरणार्थियों को साथ लेकर गंगा के गर्भ में विलीन हो गई। एक नहीं, मायाकुंड के सभी मकानों और पर्वताकार वृक्षों का कहीं पता नहीं चला कि कहाँ ग़ायब हो गए। सूर्यास्त होने तक ऋषिकेश शहर-हाय राम, मरा रे, के कोलाहल से व्याप्त हो गया था। बहे जाते वृक्षों पर बैठे आदमी, हाय! कोई बचाओ! कहते हुए रोते-चिल्लाते जा रहे थे। रस्से आदि फेंक कर बचाने का यत्न किया गया पर सब बेकार। प्रत्यक्षदर्शी महंत नारायण सिंह जी का कहना है कि रात के तीन बजे तक प्रलय के पानी ने जान बचाकर निकल जाने का समय दिया। तीन बजे एक नेपाली बाबा नाम का साधु निकल आया। बस इसके फौरन बाद फाटक बंद। यानी चंद्रभागा के पानी ने अहंकार से गरजते हुए दैत्य की तरह शहर आने का रास्ता रोक दिया। बस फिर एक भी साधु झाड़ी से बाहर नहीं आ सका। लगभग दो सौ साधुओं को गंगा जी के अनंत प्रवाह में सदा की समाधि मिल गई।

काल की विचित्र गति

काल की गति बड़ी विचित्र है। गुरु गोविंद सिंह जी महाराज ने लिखा है-

जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा।
काल के बनाए सभै काल ही चबाहिगे।।

बेअंत सिंह नाम का एक संत उत्तरकाशी से इस घटना से एक दिन पहले ऋषिकेश निर्मल आश्रम में आया। आश्रम वालों ने बहुत रोका कि झड़ी लगी हुई है, अतः आप झाड़ी में न जाइए, पर वह नहीं माना, अंत में यह कहकर चला गया कि मैं पूज्य बाबा प्रेम सिंह जी के दर्शन किए बिना यहाँ रुक नहीं सकता। बस झाड़ी में जाकर साथी-संतों में सम्मिलित होकर माता गंगा की गोद में सदा के लिए सो गया।

निर्मलों की अपूरणीय क्षति

इस बाढ़ से नुकसान तो सभी का हुआ, पर निर्मल संप्रदाय की जो क्षति हुई उसकी पूर्ति न हुई और न भविष्य में हो सकेगी। एक सौ से अधिक बड़े-बड़े विरक्त विद्वान् महात्मा संतप्त संसार को छोड़ शीतल गंगाधार में जल-समाधि ले गए।

कोहेनूर

निर्मल संप्रदाय के कोहिनूर हीरे स्वामी हीरालाल जी (हीरासिंह जी) व बाबा प्रेमसिंह जी जो सैंकड़ों विद्यार्थियों के अध्यापक, ज्ञान के समुद्र और सर्वत्र समदर्शी, शांत स्वभाव के महापुरुष थे वे भी इस प्रकृति-कोप से न बच सके।

किशोर नारायण का सहयोग

उस समय संत नारायण सिंह जी की आयु लगभग 15-16 वर्ष की रही होगी। कांतिपूर्ण कंचन-सी काया, फुर्तीला शरीर, नस-नस में नया खून, निश्चल सरल स्वभाव, सेवा के लिए अदम्य उत्साह, सत्साहस आदि उनके गुण बहुत काम आए। इस साहसी वीर ने सिंह-शावक के समान अथक दौड़-धूप की। जान को जोखिम में डालकर पानी में बहते प्राणियों को निकालने का भरपूर यत्न किया, पर प्रलयकारी प्रवाह की असीम शक्ति के सामने सब बेकार था। नारायण सिंह जी के साथ और युवक भी साहसपूर्ण सेवा कर रहे थे, पर

सफलता का श्रेय क्रूर काल ने किसी को न दिया। पर नगर निवासियों ने इन उत्साही वीरों के सत्साहस की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

भले ही ये साहसी युवक किसी प्रवाहित प्राणी के प्राण तो न बचा सके पर इन किशोरों की कोशिशें सर्वथा बेकाम नहीं हुईं। कारण यह है कि जलसमीपस्थ घरों के सामान बाहर निकाल कर सुरक्षित स्थानों में पहुँचा कर जीवित जनता की सफल सेवा में इनकी युवा-शक्ति का सुंदर उपयोग हुआ। संत नारायण सिंह ने इस पवित्र सेवा में भी पूरा सहयोग दिया चूँकि पानी निर्मल आश्रम के समीप आता जा रहा था। आश्रम के संतों को भी सामने खतरा नज़र आता-सा जान पड़ा, सो संत करतार सिंह जी ने किशोर नारायण सिंह जी को बुलाया और उसके सहयोग से आश्रम का सामान पंजाब सिंध क्षेत्र में पहुँचाया गया। बस इसके बाद बाढ़ भी थक-सी गई। पानी उतरना शुरू हो गया। तब लोगों ने सुख की साँस ली। अगले दिन नारायण सिंह को सामान वापस लाने में अनवरत संघर्ष करना पड़ा। इस काम में संत नारायण सिंह का सहयोग आड़े-वक्त काम आया और आप को सब संतों का स्नेहपूर्ण आशीर्वाद प्राप्त हुआ। शायद उसी का सुखद परिणाम है कि उत्तरोत्तर आपका उज्ज्वल यश सर्वत्र विकीर्ण होता गया।

जब इस दुःखदायी घटना की खबर बाबा बुड्ढा सिंह जी को सुनाई गई तो आपके हृदय को गहरा आघात लगा। आपने उस दिन भोजन नहीं किया। अगले दिन संत आत्मा सिंह जी को आदेश दिया कि तुम ऋषिकेश चले जाओ और इस घटना से प्रभावित व्यक्तियों को हमारी ओर से सहानुभूति व्यक्त करो। भक्त लोग हमें तो अभी जाने नहीं देंगे मगर हम भी बहुत शीघ्र आने का यत्न करेंगे। शहर के संत-महात्माओं और सद्गृहस्थों से हमदर्दी ज़ाहिर करके कनखल निर्मल विरक्त कुटियाओं में जरूर जाना। आप का आदेश पाकर संत आत्मा सिंह जी तुरंत हरिद्वार के लिए रवाना हो गए। हरिद्वार आकर सबसे पहले कुटियाओं के महंत ज्वाला सिंह जी पंडित हरदेव सिंह आदि से मिले और

महाराज की ओर से हार्दिक दुःख व्यक्त किया। इसके बाद ऋषिकेश पहुँचे तो प्रकृति की विनाश लीला देखकर बहुत दुःख महसूस किया। संत करतार सिंह आदि से आँखों देखा हाल सुना तो आँखों से अश्रुधारा बह निकली। संत करतार सिंह जी के मुख से संत नारायण सिंह जी की साहसपूर्ण सेवा की प्रशंसा सुनी तो आपको खुशी भी बेहद हुई। इतने में संत नारायण सिंह जी ने आपके चरणों में सिर रखकर दंडवत की तो उसे भरपूर आशीर्वाद दिए। कहा-बेटा, तुमने जिस लग्न और साहस के साथ सेवा में उत्साह दिखाया है वह तुम्हारे जैसे युवाजनों के गुणों के अनुकूल ही है। तुम्हारी श्रद्धा भक्ति साहसपूर्ण सेवा और तुम्हारे सद्विचार तुम्हें समाज में उच्च प्रतिष्ठा और सत्कार का पात्र बनाएंगे।

जलपान के बाद संत करतार सिंह जी और अपने होनहार शिष्य संत नारायण सिंह जी को साथ लेकर सब आश्रमों में गए और सब महात्माओं के साथ सहानुभूति प्रकट की।

यद्यपि किसी का निजी नुकसान तो विशेष नहीं हुआ था, पर विद्वान् विरक्त महात्माओं के गंगा में प्रवाहित हो जाने का अत्यधिक दुःख सब को था। जब इस दुःखदायी घटना के समय पीड़ित प्राणियों की सहानुभूतिपूर्ण सेवा करने वालों का जिक्र होता तो संत नारायण सिंह के सत्साहस की प्रशंसा अवश्य होती, तो संत करतार सिंह जी कहते-अच्छा ! इसकी उम्र सेवा करने की है, उचित समय पर सेवा करता रहेगा तो मेवा भी खाएगा। सेवा के बिना तो इस मिट्टी के पुतले का कुछ उपयोग नहीं है, सेवा के बिना मनुष्य जीवन निष्फल है। भाई गुरुदास जी ने कहा है-धृग सेवा बिन हत्थ पैर होर निहफल करणी।।

सेवा के गुण से ही हनुमान देवता बन गया और यह भी तो अभी हनुमान ही है, सेवा करता रहेगा तो यश पाएगा, सुख पाएगा, परलोक में सम्मान पाएगा। गुरु नानक देव जी ने कहा है-

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ।। ता दरगह बैसणु पाईऐ।।
कहु नानक बाह लुडाईऐ।। (पन्ना **26**)

संत महात्माओं की प्रशंसा और शुभ आशीर्वाद से संत नारायण सिंह जी के जीवन का मुख्य उद्‌देश्य सेवा ही बन गया। ठीक है भाग्यवान को ही संतात्माओं की सेवा का अवसर मिलता है।

संत करतार सिंह जी ने यहाँ की विनाश लीला का संपूर्ण हाल महाराज को लिख भेजा था। उन्हें इस से दुख तो बहुत हुआ पर वे इस विचार से कि समस्त संसार आगमायायी है, यहाँ स्थाई स्थान तो किसी का नहीं।

जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु कै कालि।। (पन्ना **1429**)

यथा–

इहु जगु धूए का पहार।। तै साचा मानिआ किह बिचारि।। (पन्ना **1186**)

के अनुसार यह संसार मिथ्या है, यहाँ कोई चीज़ स्थाई नहीं है। अतः इसका शोक व्यर्थ है। शोक छोड़कर प्रभु चिंतन करना ही श्रेयस्कर है।

पूर्वोक्त प्रकार से भगवतनाम, जप, सदाचार, पावन गुरुवाणी और सद्धर्म का प्रचार करते हुए कहीं बीस दिन, कहीं महीना रहकर सक्खर वगैरह होते हुए कराची में सेठ चेलाराम जी के बाग में आ गए। यहाँ भक्त-मंडली पावन गुरुवाणी का कीर्तन करती रहती। महाराज बीच में सिद्धासन लगाकर सुनते रहते। बीच में कोई किसी कठिन शब्द का अर्थ पूछता तो व्याख्या करके शब्द का मार्मिक अर्थ बता देते। कई बार बीच में पंडित नारायण सिंह जी उपदेशप्रद आख्यायिका सुना देते थे।

एक दिन की बात है-आप प्रभु-चिंतन में निमग्न बैठे थे। सेठ चेलाराम और उनके मित्र सेठ टेकचंद जी आए और आधा घंटा जलपान में बिताकर महाराज के कमरे में गए और महाराज के सामने दंडवत प्रणाम कर बैठ गए । तब तक और भक्त भी आ गए। कीर्तन वाले भी आ बैठे तो महाराज ने आँखें खोलीं और नतमस्तक प्रेमियों को हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और कहा-नाम चित्त आवे। इतना सुनकर सेठ टेकचंद ने हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्ण ढंग से कहा-महाराज ! विनीत प्रार्थना करना चाहता हूँ, आज्ञा है? महाराज ने कहा-भले ही

जो कहना चाहते हो, निःसंकोच होकर कहो। तब विनीत भक्त टेकचंद ने कहा–महाराज ! हम आप से प्रश्न करने की योग्यता तो नहीं रखते, हाँ ! आपके मुखारविंद से उपदेश सुनना चाहते हैं, सो आप हमारे लिए जो हितकर समझते हैं सो उपदेश देने की कृपा करें। बस इतनी ही प्रार्थना है।

बाबा जी ने कहा–भाई, उपदेश देने के लिए बहुत हैं और सुनने के लिए भी बहुत हैं। पर बिना अमल के कोई ख़ास लाभ नहीं होता। अगर धारण करनी हो तो एक ही बात जीवन को बदल कर रख देती है। पावन गुरुवाणी की एक–एक पंक्ति उपदेश अमृत से परिपूर्ण है। आज हम तुम लोगों से एक पंक्ति को धारण करने के लिए कहेंगे जो बहुत आसान है। प्रत्येक व्यक्ति उसे धारण करके अपने जीवन को पवित्र बना सकता है।

वह है–

नानक अगै ऊतम सेई जि पापां पंदि न देही।। (पन्ना **91**)

योग यज्ञादि करने कठिन हैं। तपस्या करना भी हर किसी के बस का काम नहीं, आत्मज्ञान भी दुर्लभ है। अतः यही पंक्ति मनन कर ली जाए तो जीवन का रुख बदल सकता है।

कुछ भी करते जाओ। यदि पाप कर्मों से विरत नहीं होते तो उस से विशेष लाभ की आशा नहीं कर सकते।

महाराज कहते हैं आगे परलोक में वे ही लोग उत्तम माने जाएंगे जो विशेष सुख भोगने के अधिकारी होंगे, जिन्होंने पाप मार्ग में कभी पैर नहीं रखा।

आप कोई पुण्य कर्म करें या न करें, तीर्थ–स्नान करें या न करें, हिमालय की गुफाओं में बैठकर तपस्या करें या न करें, पन्चाग्नि तप करें या न करें, बस पाप कर्मों से बच जाएं तो आपको बागे–बहिश्त की सैर करने से कोई रोक नहीं सकता।

कितना आसान है यह काम। कुछ भी करना नहीं पड़ता बल्कि करने से बचना होता है। करने से हट जाना मात्र है, करना कुछ भी नहीं। कीचड़ से पाँव

न बिगाड़ो तो धोने की जरूरत ही न पड़ेगी। धोने की तकलीफ उठाने की बजाय अच्छा यही है कि कीचड़ से पाँव खराब ही न किए जाएं।

यदि कुछ नहीं कर सकते तो बस पाप-कर्म के मार्ग न चलो, आत्म-कल्याण के लिए यह सब से सरल उपाय है, आसान तरीका है।

यदि पाप-कर्मों से नहीं हटना चाहते तो फिर सद्‌गति की आशा छोड़ दो। यदि कोई मना करने पर भी ज़हर खा रहा है और कहता है कि मुझे कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए तो यह उसकी अक्ल का दिवालियापन (पागलपन) है।

किसी महात्मा के पास कोई प्रमादी बुड्ढा गया और कहने लगा महाराज ! मुझे कोई सदुपदेश दो। तो महात्मा ने कहा-भाई, महात्माओं का सत्संग किया करो, तुम्हें बहुत लाभ होगा। तो उसने कहा-महाराज ! इतना समय मिलना तो मुश्किल है, कोई सरल उपाय बताइए। तो संत ने कहा-अच्छा भाई, राम-राम जपा कर, तुम्हारा कल्याण होगा। तो उसने कहा-महाराज कौए की तरह कायं-कायं करने से कोई आसान तरीका बताइए। साधु ने कहा-अच्छा, दान करते रहो। भगवान की दी हुई वस्तुओं में से कुछ-न-कुछ भगवान के नाम से देते रहा करो, भगवान भला करेंगे। उसने कहा-महाराज ! यह काम तो मेरे लिए और भी मुश्किल है। कुछ और अच्छी बात बताइए । महात्मा ने कहा-अगर कुछ भी नहीं कर सकते तो पाप-कर्म करना छोड़ दो, बस पाप-कर्म से हट जाना ही तुम्हारे लिए काफी है। तो उसने कहा-महात्मा जी ! यह तो मेरी जन्म-जन्मांतर की आदत है, मैं इसे तो नहीं छोड़ सकता, कुछ और छोटी-सी बात बताइए। तो महात्मा ने कहा कि-भाई, कुछ अच्छा नहीं करना चाहते हो, न बुरा करने से बाज़ आना चाहते हो, तो सब से अच्छा यही है कि डूबकर मर जाओ, कुआँ पास में ही है।

इस बात को किसी महात्मा ने एक सवैये में इस प्रकार कहा है-

संतन को सत्संग बड़ो मिल सन्तन से भवसिंधु तरो रे।।

जउ तुम ते सत्संग न होये तो नाम जपो अरु दान करो रे।।
नाम अरु दान जो नहि बनै मत पापन की सिर पोट धरो रे।।
पापन से यदि नाहि बचो इस जीवन से मरजान भलो रे।।

ऐसे लोगों को जो पाप-कर्म का जीवन बिताते हुए बीच में कभी-स्नान, दान आदि शुभ-कर्म करके यह समझ लेते हैं कि हमारे अब सब पाप-कर्म धुल गए हैं, अतः बेफिक्र होकर फिर पाप-कर्म करने लगते हैं, को फटकार बताते हुए कहा है कि-

पाप करहि पंचां के बसि रे।। तीरथि नाइ कहहि सभि उतरे।।
बहुरि कमावहि होइ निसंक।। जम पुरि बांधि खरे कालंक।।

(पन्ना **1348**)

यानी ऐसे प्रमादी लोगों को ज़ंजीरों में जकड़ कर यमपुरी में ले जाया जाता है और वहाँ वे चिरकाल तक अपने कुकृत्यों का फल भोगते हुए दुःख पाते रहते हैं। यह एक निश्चित सिद्धांत है कि अपने किए का फल अवश्य भोगना पड़ता है। वह अच्छा हो या बुरा हो, अपने किए का फल भोगने से कोई बच नहीं सकता। 'कर्दनी ख्वेश व आमदनी पेश।'

फेड़े का दुखु सहै जीउ।। पाछै किसहि पुकारहि पीउ पीउ।। (पन्ना **1196**)

और भी सुन्दर कहा है-

यारे मन खुद करदारां इलाजे नेस्त।

अतः भाई, जो श्रेयस्कामी है, उसे पाप तो क्या पापों की छाया से भी बचना चाहिए।

इस प्रकार वे दो घन्टे तक बोलते रहे। अतः वृद्धावस्था की कमज़ोरी के कारण उनका शरीर पसीने से तर हो गया। बुद्धिमान भक्त ने भाषण से विरत करने के विचार से दूध का गिलास लाकर सामने रख दिया तो महाराज भी इसका अर्थ समझ गए और उन्हें अपनी थकावट का ख़याल आ गया और भाषण समाप्त कर दिया। अब कीर्तन का समय ही नहीं रह गया था। अतः

व्यवहार कुशल मेलाराम ने सब भक्तों को घर जाने का इशारा किया और वे सब अपने-अपने घरों को चले गए तो महाराज ने दूध पिया। दूध पीकर तकिये के सहारे लेटते हुए कहा-मेलाराम ! तुम बहुत कुशल व्यक्ति हो। बड़ी अक्लमंदी से तुमने हमें भाषण से रोका। विनीत भक्त ने नम्रता से कहा-महाराज ! सब आपकी बख्शीशें हैं, आपके पसीने को देखकर मुझे महसूस हुआ कि महाराज थक गए हैं। भाषण को समाप्त कराने का मुझे यही तरीका सब से अच्छा जान पड़ा कि आपके सामने दूध का गिलास लाकर रख दिया। यह सुनकर महाराज ने उनकी व्यवहार कुशलता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

❑

तरंग 45

वापसी का विचार

इस भाषण के बाद जब भी कीर्तन के प्रेमी भक्त आते, तो सेठ मेलाराम पहले से हिदायत कर देते कि कोई भक्त महाराज से प्रश्न करने की गलती (कोशिश) न करे। महाराज को उत्तर देने में कष्ट होता है। बस कीर्तन करने वाले शब्द गाते रहते और श्रोतागण प्रेम से बैठे सुनते रहते। पंडित नारायण सिंह जी कभी-कभी कथा आदि सुना दिया करते। आगे जब तक रहे यही क्रम चलता रहा। आखिर वर्षारंभ में चैत्र मास की कथा सुनाकर मंडली सहित महाराज संवत 1982 की बैसाखी से चार दिन पहले कनखल पहुँच गए। अगले दिन नित्यकर्म से निवृत्त होकर निर्मल विरक्त कुटिया और निर्मल अखाड़ा आदि स्थानों में जाकर महंतों संतों से मिलकर गंगा की बाढ़ के दुष्परिणाम पर दुःख व्यक्त किया और मुक्त आत्माओं के निमित्त अखंड पाठ और भंडारा का निमंत्रण दे आए। 4 बैसाख को भंडारा करके 5 बैसाख को ऋषिकेश आ गए।

ऋषिकेश में आकर महाराज संत आत्मा सिंह आदि सब संतों को गुरुवाणी के गंभीर ज्ञान के लिए पढ़ाने लगे। जपु जी साहिब, जाप साहिब और सुखमनी साहिब आदि की कथा, सत्संग की रीति से पढ़ाए, अच्छी तरह सबको अर्थ मनन करवाए। इस प्रकार का उपयुक्त सत्संग देखकर और भी कई एक ज्ञानपिपासु महात्मा आ गए। यह देखकर संत आत्मा सिंह जी ने महाराज से कहा कि संतों के बढ़ जाने से दूध की कमी हो गई है। अतः आप आज्ञा करें तो गायें और खरीद ली जाएं। महाराज ने कहा-भले ही! पर गऊएँ अच्छी

खरीदना। सुंदर गऊ की सेवा करने को हर एक का जी चाहता है। सेवा से वह और सुंदर बनती हैं और दूध भी अधिक देती हैं। यथाज्ञा कहकर संत आत्मा सिंह जी ने दो अच्छी गायें और ले लीं। अब दूध की कमी पूरी हो गई तो संतों की सेवा में व अध्ययन में और रुचि बढ़ गई। संत नारायण सिंह जी भी पढ़ने लग गए। इन्हें संत आत्मा सिंह जी दोबारा खुद पढ़ाते थे। इस रीति से निर्मलाश्रम का समाज और शहर में सम्मान बढ़ा और अब आरंभ किए ग्रंथ पूरे होने को थे। इस बीच महाराज की इच्छा दक्षिण पूर्व के तीर्थों की यात्रा करने की हुई।

दक्षिण पूर्व की ओर
(गंगा सागर आदि तीर्थों की यात्रा)

चूँकि नास्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की शत्रु है और श्रद्धा सहायक है अतः महाराज जिज्ञासुओं के कोमल हृदयों में श्रद्धा के भाव दृढ़ करने के विचार से सद्ग्रंथों का अध्ययन और तीर्थ यात्रा को अधिक महत्व देते थे। अतः भजन सिमरन के सद्ग्रंथों के अध्ययन श्रवण, मनन आदि की ओर अधिक रुचि रखते थे। यह प्रोग्राम (कार्यक्रम) इसी प्रकार चलता रहा। आखिर अगहन की अमावस्या के बाद आपने दक्षिण पूर्व के तीर्थों की य़ात्रा की तैयारी पूरी कर ली। आश्विन शुदी दूज को संत आत्मा सिंह जी, संत बलवंत सिंह जी ज्ञानी, संत खीवण सिंह जी, संत निश्चल सिंह जी सेवादार, संत साहब सिंह जी आदि संतों को साथ चलने का आदेश दिया और निर्मल आश्रम का काम संत मान सिंह जी और संत नारायण सिंह जी के सुपुर्द किया। गायों की सेवा संभाल और दूध दुहने का, मंथन का और बाँटने का काम संत नारायण सिंह जी को और बाकी सारा काम संत मान सिंह जी को सौंप दिया। द्वितीया के दिन रात की गाड़ी से उज्जैन को रवाना हो गए।

उज्जैन में नया अखाड़ा उदासीन में ठहरे। नदी स्नान कर महाकाल आदि

प्राचीन मंदिरों के दर्शन किए। अगले दिन नर्मदा नदी में स्नान करके इंदौर पहुँच गए। वहाँ धर्मशाला में रात बिताकर असौज शुदी 9 को सचखंड हुज़ूर साहिब पहुँच गए। यहाँ के दशहरे का अद्वितीय मेला देखकर गुरु महाराज के सब गुरुद्वारों की यात्रा करके यथा-योग्य देग करवाई और माया अरदास करवाई। यहाँ आप एक सप्ताह ठहरे। यहाँ से इलाहाबाद होकर चित्रकूट की यात्रा की। चित्रकूट से वापस इलाहाबाद होते हुए गया जी पहुँचे, वहाँ दाढ़ी वाले पंडा के यहाँ ठहरे। उदासीन अखाड़ों की यात्रा करके गंगा जी में स्नान किया। पंडा ने आपको सब सुविधाएं दी, आपने भी पंडा की सेवा का सम्मान पूर्वक उचित पुरस्कार प्रदान किया, माया वस्त्र आदि से मुनासिब सेवा की। बस इस प्रकार यात्रा करते हुए मकर संक्रांति पर गंगा सागर पहुँच गए। यहाँ ध्यान, स्नान, दान आदि करके कलकत्ता आ गए। यहाँ बड़ी सिक्ख संगत व गुरुद्वारों की यात्रा की। यहाँ से जगन्नाथ, पुरी, बैजनाथ होते हुए पटना साहिब आ गए। यहाँ गुरु गोविंद सिंह जी की बाल-लीला स्थली, गुरुद्वारा बाल-लीला (मैणी संगत) में महंत साधु सिंह जी, महंत ईश्वर सिंह जी के पास ठहरे। अगले दिन सभी संतों के साथ श्री गोविंद घाट पर गंगा स्नान किया। लौटते हुए गुरुद्वारा जन्म स्थान का दर्शन किया। देग भेटा व अरदास कराकर वापस मैणी संगत आ गए। अगले दिन देग करवाई और अपनी ओर से लंगर, धुंगनी प्रसाद वगैरह की व्यवस्था की। सात दिन यहाँ रहकर बनारस ज्ञान गुफा अपने गुरु भाई पंडित अवतार सिंह जी के पास आ गए। काशी में सब संतों को ज्ञान गुफा में भंडारा दिया और सब संतों का माया से सत्कार किया।

पंडित अतर सिंह जी बीमार थे, उन्हें अपने शरीर का भरोसा नहीं था। अतः उन्होंने अपने स्थान को आपके नाम लिख दिया। यहाँ से सीधे कनखल निर्मल बाग आ गए। यहाँ बाग में भंडारा करके 6 बैसाख संवत 1983 को वापस ऋषिकेश पहुँच गए।

❑

तरंग 46

ऋषिकेश में गौशाला में वृद्धि

संत नारायण सिंह द्वारा हो रही गऊओं की श्लाघनीय सेवा को देखकर बाबा साहिब बहुत प्रसन्न हुए। बचपन में लापरवाही से किए हुए कसूर और नुकसानों को वे बिलकुल भूल गए और कहा कि नारायण सिंह की गौशाला में वृद्धि की जाए। एक दर्जन गायें आपकी आज्ञा से और ले ली गईं। अब आपने इसका नाम नारायण गौशाला रख दिया। अब नारायण गौशाला में सत्तावन गायें हो गईं। अब गऊओं की सेवा में नारायण की दिलचस्पी और भी बढ़ गई। इनके दूध जैसे सफेद बछड़े नारायण को बहुत प्यारे लगते थे। जब वे पूँछों को उठाकर गर्दनों को घुमाते हुए दौड़ते-कूदते तो इन्हें देखकर नारायण आनंद विभोर हो जाता। इसकी प्रीति-पूर्ण सेवा से संतुष्ट गऊ-बछड़े भी बहुत प्रेम रखते थे। इस वंशी विहीन कृष्ण की मुरली जैसी मीठी आवाज़ सुनकर वे दौड़ आते थे। सचमुच इन्हें यह गोकुल के बाल-कृष्ण जैसा प्यारा लगता था।

अब चूँकि नारायण, गऊ माता की सेवा के कारण दूध, मक्खन और मट्ठा का स्वामी था अतः यह कोई संत-प्रिय न होकर, लोक प्रिय भी बन गया था क्योंकि यह सबको आदर के साथ मट्ठा वगैरह देता था। झाड़ी के महात्मा भी यहीं से मट्ठा (लस्सी) ले जाते थे। नारायण की उदारता, सरलता और सेवा भक्ति के कारण विरक्त संतों में नारायण गौशाला का नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया था और नारायण बन गया था सब संतों का कृपा-पात्र, प्रेम पात्र।

एक दिन की बात है नारायण ने चाँदी की कटोरी में मक्खन भरकर उसके

ऊपर इलायचीदाना और चाँदी का वर्क लगाकर बाबा साहिब को भेंट किया तो वह बहुत प्रसन्न हुए और पूछा-बेटा ! कुछ नित्य नियम भी किया करता है कि गऊ सेवा में ही मस्त रहता है? नारायण ने कहा महाराज थोड़ा बहुत ही कर पाता हूँ। विशाल हृदय से महाराज ने कहा-बेटा ! बहुत से पशुओं की सेवा पशु सा बनकर ही हो सकती है अतः एक ग्वाला नौकर रख ले और उनकी सेवा की देखभाल किया कर। याद रख बेटा ! हम तुझे पशु नहीं प्रत्युत मनुष्य से देवता बनाना चाहते हैं। यह कहते हुए महाराज ने अमृतसर से अपने लिए मँगाया हुआ सुनहरी जिल्द वाला सुंदर गुटका नारायण को दिया और कहा कि जपु जी साहिब और सुखमनी साहिब का पाठ जरूर कर लिया करना, और तेरी मर्ज़ी। गुटका लेकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। नारायण ने विनीत भाव से कहा-महाराज, और आज्ञा? 'महाराज ने कहा- भाई और काम तो कुछ नहीं। हम तो कल सिंध की ओर चले जाएंगे। पता चला है कि पंडित राम बसंत सिंह जी पटियाला वाले आनंद भवन में श्री गुरुग्रंथ साहिब की कथा आरंभ करने वाले हैं वहाँ जाकर उनसे कथा सुन आया करना, बस तेरा भविष्य बन जाएगा।

❑

तरंग 47

सिंध की ओर प्रस्थान

अगले दिन महाराज बाबा बुड्ढा सिंह जी ने सिंध की ओर प्रस्थान कर दिया। हरिद्वार स्टेशन से तार देकर मेलाराम को कराची की ओर अपने प्रस्थान की सूचना दे दी। गाड़ी के पहुँचने से पहले सेठ चेलाराम आदि भक्त जुलूस का प्रबंध कर आए थे। गाड़ी पहुँची तो जय बाबा बुड्ढा सिंह की आदि जयकारों से आकाश गूँज उठा। शानदार जुलूस के साथ सेठ मेलाराम बाबा जी को अपने मनोहर बाग के बंगले में ले गए।

यहाँ के नागरिक भक्त बहुत श्रद्धा भक्ति से महाराज के दर्शन के लिए आते थे, इनमें प्रमुख थे-झम्मटमल, सेठ रेवाचंद, वाटुमल, मुखी गोविंदराम, प्रीतमदास। दीवान दयाराम जज, मास्टर खूबचंद चेनानी आदि हैदराबाद के थे पर यहाँ एक हफ्ते के लिए आ गए थे।

दो दिन के बाद सत्संग आरंभ हो गया। महाराज बीच में सिद्धासन से पलथी लगाकर बैठ जाते। आस पास कीर्तन मंडली के सदस्यगण अपने-अपने वाद्य लेकर बैठते और फिर सारी संगत यथाक्रम बैठ जाती। डेढ़ दो घंटे पावन गुरुवाणी का कीर्तन होता। बाद में किसी को कोई सवाल करना होता या गुरुवाणी के किसी शब्द का अर्थ समझना होता तो पूछ लेता, महाराज बहुत धैर्य के साथ उत्तर देकर संतुष्ट कर देते। किसी को अपने घर भोजन कराने की इच्छा होती तो एक दिन पहले निमंत्रण दे जाता। इस प्रकार लगातार दो महीने यह प्रोग्राम (कार्यक्रम) चलता रहा। इसके बाद हैदराबाद वाले भक्त सेठ रेवाचंद, दादूमल्ल आदि आकर हैदराबाद ले आए। यहाँ भी इसी प्रकार

कीर्तनादि का कार्यक्रम आरंभ हो गया।

बीस दिन के बाद मुखी गोबिंदराम को सत्संग में न देखकर महाराज ने पूछा-भाई आज सेठ गोविंदराम नहीं आया क्या बात है? सेठ लालचंद ने कहा महाराज उसका लड़का बहुत बीमार है? इस चिंता से वह दुःखी है।

अच्छा तो फिर भी उसे कहना कि कल को जरुर आये, महाराज ने प्रेम वश दृढ़ता के साथ आदेश दिया। अगले दिन गोबिंदराम आया, वह बहुत उदास और खिन्न था। चरणस्पर्श कर वह बैठ गया। महाराज ने पूछा क्यों बेटा बच्चे का क्या हाल है? सेठ ने दर्दभरी आवाज़ में निराशा व्यक्त करते हुए कहा-महाराज! कोई आशा नहीं उसके जीवन की। महाराज ने कहा किसी बड़े डाक्टर को बुलाओ, निराश क्यों होते हो। डबडबाई हुई आँखों और अवरुद्ध गले से गोविंद ने कहा-महाराज कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। बड़े बड़े डाक्टरों ने ज़ोर लगाकर देखा पर सब बेकार। किसी की दवा ने ज़रा असर नहीं किया आखिर सबने जवाब दे दिया है। अब श्री चरणों में प्रार्थना है कि कल अभागे सेवक के घर को भाग्य लगायें। सब संत लोग वहीं भोजन पाने की कृपा करें ताकि गोवर्धन को भी आपके अंतिम दर्शन हो जायें। इतना कहते हुए उसका गला भर आया और वह आगे कुछ न बोल सका। महाराज ने सांत्वना देते हुए कहा धैर्यधारण करो, भगवान् परम दयालु है उसके घर में किसी चीज़ की कमी नहीं। जाओ बच्चों को धैर्य दो, कल हम आएंगे। उसने महाराज के चरणों पर सिर रखा। महाराज ने कहा गुरु भला करे।

वह महाराज का (सफल कर मस्तक धारिया) आश्वासन पा कर चला गया। चलते हुए उसके हृदय की प्रत्येक धड़कन उसे कह रही थी घबराता क्यों है एक प्रकार से महात्मा ने आर्शीवाद दे ही दिया है, भगवान् भला करेंगे, धैर्य रख। उसने चेलाराम की कन्या से थोड़ा पानी पिलाने को कहा। कन्या ने ठंडे पानी का गिलास दिया। वह पीकर चला तो उसके हृदय की धड़कन स्वाभाविक सी हो

गई। प्रतिक्षण उसका विश्वास पक्का होता जा रहा था कि अब अशुभ घड़ी नहीं आएगी।

अगले दिन प्रातः महाराज संत मंडली सहित गोविंदराम के घर पहुँचे। सेठ चेलाराम, लालचंद आदि भक्त भी आ गए। सबको आदेश दिया गया कि खामोश होकर प्रभु-चिंतन करें। कुछ देर बाद गोविंद ने बच्चे को लाकर महाराज के चरणों पर रख दिया। महाराज ने उसके मस्तक पर हाथ रखा और कहा-पानी लाओ। गोविंद पानी का गिलास ले आया। महाराज ने उसमें से दो घूँट पिए और कहा कि बच्चे को पिला दो, दो चम्मच पानी बच्चे के मुँह में डाल दिए गए। पानी अंदर जाने की देर थी, बच्चे ने आँखें खोल दीं। महाराज ने आदेश दिया कि इसको बिस्तर पर लिटा दो और दो चम्मच पानी और डाल देना। पानी को गिराना मत रात तक देते रहना।

बच्चे को ले जाकर बिस्तर पर लिटा दिया गया और दो चम्मच पानी उसके मुख में और डाल दिया गया। अब बच्चे ने आँखें खोलीं और अपने माता-पिता की ओर ताकने लगा। जैसे उन्हें कह रहा हो कि अब चिंता छोड़ दो। चिंता ग्रस्त माँ-बाप ने ठंडी साँस ली, सब दर्शकों के चेहरे खिल उठे। महाराज ने कीर्तन मंडली को कहा-भाई ! अब समय नहीं रहा अब आप लोग जाओ और अपने काम धंधे को देखो। कुछ देर बाद सेठ लाल चंद आदि विशिष्ट व्यक्तियों से प्रभु की अगम्य लीला पर वचन विलास होते रहे। इतने में नौकर ने आकर कहा-महाराज भोजन तैयार है। सब संतों ने भोजन किया। गोविंदराम खुद परोस रहा था। भोजन हो चुकने पर गोविंदराम महाराज का थाल उठाकर ले गया। संतों के हाथ धुलाए। महाराज ने स्वयं निम्नलिखित शब्द पढ़कर अरदास की-

असटपदी।।
जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि।।
तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि।।

जिह प्रसादि सुगंधत तनि लावहि।।
तिस कउ सिमरत परम गति पावहि।।
जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि।।
तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि।।
जिह प्रसादि ग्रिह संगि सुख बसना।।
आठ पहर सिमरहु तिसु रसना।।
जिह प्रसादि रंग रस भोग।।
नानक सदा धिआईऐ धिआवन जोग।। (पन्ना **269**)

गोविंदराम ने महाराज और सब संतों को उदारता पूर्वक दान दक्षिणा दी। भोजन पाकर बाबा साहिब ने बच्चे को फिर देखा और आदेश दिया कि इसे दो चम्मच दूध पिला दो और साथ-साथ डॉक्टर के आदेश अनुसार दवा भी पिलाते रहना। चलते समय महाराज ने आगे लिखा शब्द पढ़ा-

सोरठि महला ५।।
परमेसरि दिता बंना।। दुख रोग का डेरा भंना।
अनद करहि नर नारी।। हरि हरि प्रभि किरपा धारी।।
संतहु सुखु होआ सभ थाई।।
पारब्रहमु पूरन परमेसरु रवि रहिआ सभनी जाई।। रहाउ।।
धुर की बाणी आई।। तिनि सगली चिंत मिटाई।।
दइआल पुरख मिहरवाना।। हरि नानक साचु वखाना।। (पन्ना **627-28**)

महाराज इतना कह कर चले गए। श्रद्धालु भक्त महाराज के आदेशानुसार जल, दूध, दवा आदि पिलाते रहे। बच्चे की हालत धीरे-धीरे सुधरती गई। डॉक्टर भी आकर विश्वास दिला गया कि हालत में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है। रात के आठ बजे परिवार के सब लोग बैठे थे। बच्चे ने फिर आँखें खोलीं, सब की ओर देखा और बोला-मम्मी ! तू मेरे साथ ही सोना। बच्चे के मुँह से यह आवाज़ सुन खुशी तो सब के चेहरे पर छा गई पर माँ के हर्ष का तो ठिकाना

नहीं था। उसके आनंद को लिखकर ज़ाहिर करने की ताकत, किस की कलम में है ?

इसके बाद परिवार के लोग कुछ देर बातें करते रहे, फिर अपने बिस्तरों पर सो गए, पर माँ का स्वर्ग तो दिल के टुकड़े का बिछौना ही था।

गोविंद की पत्नी सवेरे उठी। मुँह हाथ धोकर चाय का सामान जुटाकर स्टोव पर चाय का पानी रख कर बच्चे की खाट के पास रखी कुर्सी पर जा बैठी, बच्चे ने आँखें खोलीं और कहा-मम्मी ! कहाँ हो? बेटा मैं यहीं हूँ कहकर वह बच्चे को गोद में लेकर बैठ गई। नौकर को चाय तैयार करने का आदेश दिया। बच्चे से पूछा-बेटा, कुछ खाओगे ? उसने कहा बिस्कुट, यह सुनकर माँ का हृदय हर्ष से नाच उठा। उसने पतिदेव को बुलाया और बच्चे की माँग बताई। गोविंदराम ने मुस्कराते हुए कहा-अच्छा, गोवर्धन बिस्कुट खाएगा? परिवार के सदस्य इकट्ठे हो गए। गोवर्धन को दूध, बिस्कुट खाते देखकर सब के मुखमंडल हर्ष से खिल उठे। इसके बाद डॉक्टर बुलाया गया। डॉक्टर ने स्टैथेस्कोप लगाकर देखा, और चेहरे का रंग-ढंग देखकर कहा-सेठ साहब ! मै अब बेफिक्र हूँ आप भी चिंता छोड़ दें।

इसके बाद सबने मिलकर चाय पी। डॉक्टर को विदाकर गोविंदराम फलों की टोकरी लेकर महाराज के पास गया और चरणों में नमस्कार करके बैठ गया। उसके चेहरे पर खुशी के चिन्ह देखकर महाराज ने पूछा-कहो क्या हाल है? गोविंद सेठ ने हाथ जोड़कर कहा-

अटल बचनु नानक गुर तेरा सफल करु मसतकि धारिया।। (पन्ना **621**)

प्रसन्नता व्यक्त करते हुए महाराज ने कहा-गुरु नानक देव की बख्शीशें तुम्हारे ऊपर सदा बरसती रहेंगी। यह आशीर्वाद पाकर सेठ ने हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा महाराज ! बच्चे की पूरी तंदुरुस्ती पर श्री चरणों में हाज़िर होकर अखंड पाठ कराऊंगा। इस संकल्प की सफल पूर्ति के लिए वर देने की कृपा करें। महाराज ने कहा-एक संकल्प नहीं तेरे सब शुभ संकल्प पूरे होंगे। यह कहकर महाराज ने कीर्तन जत्थे को भेजा। ❑

तरंग 48

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की कथा

पीछे हम संत नारायण सिंह जी का ज़िक्र कर आए हैं। आनंद भवन ऋषिकेश में पंडित राम वसंत सिंह जी पटियाला वालों ने श्री गुरु ग्रंथ साहब की कथा प्रारंभ की थी। बाबा बुड्ढा सिंह जी की आज्ञा से नारायण सिंह जी पंडित राम बसंत सिंह जी से पढ़ने लग गए थे। पंडित जी इनकी सेवा सादगी सरलता आदि गुणों से बहुत प्रसन्न थे। यह पंडित जी को स्नान भी स्वयं करवाया करते थे। अपनी गौशाला से दूध-दही की सेवा भी करते थे। इसलिए वे नारायण सिंह जी से पुत्रवत स्नेह रखते थे। इन्हें चलते घूमते फिरते भी कठिन शब्दों के अर्थ बताते रहते थे, नारायण सिंह जी को आपने कथा भाषण में उपयोगी बहुत से श्लोक लिखाकर कंठस्थ करवा दिए थे। इसमें संदेह नहीं कि नारायण सिंह जी संत आत्मा सिंह जी की तरह इनका सत्कार करते थे और इन पर विद्या दाता गुरु भावना भी थी। छह मास निरंतर अध्ययन किया और छह मास में ही गुरु ग्रंथ साहिब की कथा समाप्त कर दी थी।

हरिद्वार के कुंभ पर

कथा समाप्त करके आप सन् 1927 (सम्वत् 1984) के कुंभ पर निर्मल अखाड़ा की छावनी में चले गए थे। संत आत्मा सिंह जी की आज्ञा से संत नारायण सिंह जी हरिद्वार में पंडित जी की सेवा में रहे। इस अवसर पर पंडित राम बसंत जी को महाराजा पटियाला की ओर से बुलावा आ गया। इनकी नियुक्ति राज कुमारों को पढ़ाने मे लग गई थी अतः वे पटियाला चले गए और नारायण सिंह जी वापस ऋषिकेश आ गए और आकर फिर गौशाला की सेवा

संभाल ली। बड़े महाराज और संत आत्मा सिंह जी भी ऋषिकेश आ गए।

निर्मल आश्रम में भीड़

हरिद्वार के सब यात्री भी निर्मल आश्रम में आ गए थे। यहाँ संत मान सिंह जी का विनम्र स्वभाव, सेवा संभाल आदि सद्‌गुणों से सब लोग प्रभावित हुए। सब से छोटे संत नारायण सिंह जी ने इन सब यात्रियों के साथ जाकर लक्ष्मण झूला, कैलास आश्रम, स्वर्गाश्रम और झाड़ी जहाँ सन् 1914 में गंगा की बाढ़ में दो सौ साधु बह गए थे दिखाए। इनके मीठे बर्ताव और दूध चाय आदि की सेवा से, बाबा के सामने सबने तारीफ की। संत आत्मा सिंह जी तो इनसे प्रेम रखते ही थे। अब बाबा बुड्‌ढा सिंह जी के भी ये प्रधान स्नेह पात्र बन गए थे। सब यात्रियों ने यहाँ से चलते समय महाराज से विनय की, कि महाराज! आप सिंध आओ तो संत आत्मा सिंह जी और संत नारायण सिंह जी को जरूर साथ लेकर आना।

पुनः पठन पाठन का ध्यान

यात्रियों के चले जाने से निर्मल आश्रम खाली सा (शून्य सा) लगने लगा- महाराज ने सबसे कहा-उदास क्यों होते हो, भगवान ने तुम्हें पढ़े हुए सद्‌ग्रंथों को पुनः विचारने के लिए सुंदर समय प्रदान किया है। अतः पठित ग्रंथों का मनन करो। इस तरह तुम्हारी उदासी भी दूर होगी और शास्त्र ज्ञान में परिपक्वता भी आएगी। संत नारायण सिंह जी से कहा- बेटा! तुम गुरु ग्रंथ साहिब के अर्थों को पुनः विचारो। जहाँ संदेह हो हमसे पूछ लिया करो। याद रखो समय को व्यर्थ गँवाना ही मूर्खता है और समय से उचित लाभ उठाना ही बुद्धिमत्ता की निशानी है। इस प्रकार सब संतों को प्रभु-चिंतन और सद्‌ग्रंथों के मनन करने में प्रवृत्त कराकर महाराज सिंध जाना मुल्तवी करके अपने गुरु भाई महंत कृष्ण सिंह जी से मिलने अमृतसर चले गए। वे बीमार थे। जब कुछ स्वस्थ हुए तो आप पुनः निर्मलबाग कनखल में आ गए। इसी साल संत निक्का सिंह जी महाराज और संत देवा सिंह जी आदि महाराज के शिष्य हुए थे। ❑

तरंग 49

1. निर्मल आश्रम ऋषिकेश की जमीन पहले महंत रामरत्न दास जी भरत मंदिर ऋषिकेश से दवामी पट्टा पर तारीख 2-12-1890 में संत नत्था सिंह चेला संत नारायण सिंह जी निर्मल साधु ऋषिकेश ने ली थी। रकबा 25 ज़रब (गुणा) 25 गज़ (25x25=625 गज़)
2. दूसरी बार साथ लगती जमीन 25 गज़ ज़रब 20 गज़ महंत रामरत्न दास भरत मंदिर ऋषिकेश से ता० 25-4-1905 में संत मंगल सिंह जी चेला संत सौदागर सिंह जी साधु निर्मल ऋषिकेश ने पट्टा दवामी पर ली थी। इस समय संत नत्था सिंह जी वाली ज़मीन भी संत मंगल सिंह जी के कब्जे में आ चुकी थी। इस समय यह संपत्ति निर्मल आश्रम उर्फ नत्था सिंह का बाड़ा के नाम से मशहूर हो गई थी।
3. ता० 12-8-1910 को संत मंगल सिंह चेला संत सौदागर सिंह ने एक इकरारनामा के अनुसार यह जायदाद महंत बुड्ढा सिंह जी चेले संत बाबा धर्म सिंह जी के प्रबंध में दे दी जो पहले से ही निर्मल आश्रम के प्रबंध में शरीक थे।

निर्मल बाग की ज़मीन

आश्रम निर्माण के विचार से बाबा बुड्ढा सिंह जी ने निर्मलबाग कनखल की ज़मीन तारीख 28-6-1911 को श्रीमान् महंत निहाल सिंह जी चेला महंत आत्मा सिंह जी निर्मल साधु से खरीदी। उसमें कोठी बनवाई और बाग लगवाया। बाग के पास में चल रहे राजबाहे पर घाट 1933 ईसवी में बनवाया।

❑

तरंग 50

मुखी गोविंदराम का अखंड पाठ के लिए आना

सन् 1928 की बात है। महीना शायद आश्विन का था। मुखी गोविंदराम जिसका लड़का गोवर्धन, जिसकी असाध्य बीमारी का जिक्र पहले आ चुका है, आया। उसने अपने वायदे अनुसार निर्मल आश्रम ऋषिकेश में अखंड पाठ करवाया। इस पाठ में ज्ञानी बलवंत सिंह जी, संत यशवंत सिंह जी जो आजकल अवधूत के नाम से प्रसिद्ध हैं और हजारा ग्राम जिला जालंधर में रहते हैं तथा लेखक भी उस अखंड पाठ में शामिल थे। महाराज ने 15-20 मिनट सुंदर भाषण भी किया। दस-दस रु० और एक-एक कंबल पाठियों को भेटा किया। पक्का भंडारा दिया गया। उसका परिवार भी साथ था।

उसने देखा कि आश्रम सुंदर बना हुआ है, इसमें कुछ अपनी निशानी भी बनवानी चाहिए। वह दूसरी छत पर गया तो देखा कि छत बहुत चौड़ी है, इस पर महाराज के लिए खुला सुंदर चौबारा बनाना चाहिए। सो महाराज से विनय करके उन्हें इसके लिए राजी कर लिया। उसने फिर सन् 1930 में आकर इसे तैयार करवाया। यह स्मरणीय है कि इसके फर्श के लिए टायल दो किस्म की सिंध ही से लेकर आया था। इसे तैयार करवा कर महाराज का आसन इसी में लगवा कर महाराज की पूर्ण प्रसन्नता लेकर गया था।

एक बहुत पुरानी बात सन् 1929 के प्रयाग के कुंभ मेला की है। उस कुंभ मेला पर महामंडलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानंद जी द्वारा लिखित पुस्तक-श्रौतमुनि चरितामृत में लिखी कुछ बातों को लेकर उदासीन और संन्यासी महात्माओं में

कटुकलह (कटु-विवाद) उत्पन्न हो गई, जिसके कारण परस्पर निम्नकोटि की इश्तहार बाजी जारी हो गई थी। इसमें एक निर्मल साधु पंडित कल्याण सिंह जी का भी सहयोग था। इन में से एक दो इश्तहार जब आपको दिखाए गए तो आपने बहुत दुःख मनाया और पंडित कल्याण सिंह जी को कहा कि इन इश्तहारों से लाभ तो किसी को होगा नहीं, पर हानि समस्त साधु-समाज की होगी। साधु-समाज की उज्ज्वल कीर्ति पर अमिट कालिमा पुत जाएगी। चूँकि आपका संपर्क दोनों संप्रदायों के साधुओं के साथ है, आप हमारी ओर से स्वामी जयेंद्रपुरी एवं स्वामी गंगेश्वरानंद जी के पास प्रार्थना कीजिए कि इस निंदनीय कार्य को यहीं समाप्त कर दीजिए वरना इसका दुष्परिणाम ऐसा भयंकर होगा कि और दुनिया तो रही दर किनार साधु समाज की भावी पीढ़ियां भी इस लहर के संचालक संतों का अपयश गाया करेंगी। कल्याण सिंह जी के द्वारा भेजे हुए इस शुभ संदेश को उक्त दोनों महापुरुषों ने मान लिया और इस कृत्य में संलग्न संतों को इसे बंद कर देने के लिए बाध्य किया और यह वहीं समाप्त हो गया। साधु-समाज में आपके इस कार्य की बहुत ही प्रशंसा की गई थी।

इन्हीं दिनों की बात है-आपने अपने स्थान ज्ञान-गुफा से काशी में निर्मल संत समाज को भंडारा दिया था। सब संतों को धन दक्षिणा दी। इस अवसर पर महंत सतनाम सिंह जी चेतनमठ विसेसर गंज काशी वाले भी पधारे थे। चूँकि महंत सतनाम सिंह को इस गद्दी पर बैठाने वाले आप ही प्रमुख व्यक्ति थे। इसलिए सतनाम सिंह जी पर आपका विशेष अधिकार था। उस समय आपने महंत सतनाम सिंह को बहुत उत्तम और हितकर उपदेश दिया था। वह यह कि देखो सतनाम सिंह! ये संत जो तुम्हारे मठ में पढ़ते हैं इनके साथ महज (केवल मात्र) एक साधारण साधु समझ कर व्यवहार मत करना क्योंकि इनमें से कितने तो अपने गुरु-स्थानों में जाकर तुम्हारे जैसे और कुछ तुम से भी बड़े महंत

बनेंगे और कुछ विद्वान् मंडलेश्वर बन जाएंगे जिनका गौरव महंतों से भी अधिक होता है। अतः तुम अभी से इनके साथ इनके भावी पद के अनुकूल सद्बर्ताव करना। इससे तुम्हारा यहाँ भी यश होगा भेष में प्रतिष्ठा बढ़ेगी और चल रहे केस मुकदमा में भी सहायता मिलेगी। पर यह दुर्भाग्य था सतनाम सिंह जी का कि वे इस पर अमल न कर सके, धीरे-धीरे साधु भी मठ से निकल गए। केस (मुकदमा) भी हार गए और आखिर सतनाम सिंह उस राज-सिंहासन को छोड़कर अज्ञात स्थानों में फकीरों जैसी जिंदगी बसर करने पर मजबूर हुए। शायद महापुरुषों की आज्ञा उल्लंघन करने का दुष्परिणाम ही था यह।

इस समय संत आत्मा सिंह जी भी साथ आए हुए थे। उन्हें आपने आदेश दिया कि स्थान को और बढ़ाकर ऐसा बनाओ कि दो-तीन संतों के रहने के योग्य बन जाए और किराये के मकान के साथ उसका जरा भी संपर्क न रह जाए। सो आगे चलकर संत आत्मा सिंह जी ने उसे इतना सुंदर और उपयोगी बना दिया कि उसकी कल्पना स्वयं बाबा बुड्ढा सिंह जी को भी नहीं थी। इसी सर्वांग सुंदर स्थान में रहकर ही पंडित अर्जुन सिंह जी भिक्षु सर्व शास्त्रों के पारंगत विद्वान् बने। विरक्त शिरोमणि पंडित निक्का सिंह जी ने भी कुछ दिन यहीं रहकर संस्कृत का अध्ययन किया था। ❑

तरंग 51

वसीयतनामा

अक्सर देखने में यही आता है कि जो संत-महंत अपने जीवनकाल में अपने स्थान का उचित प्रबंध नहीं करते यानी योग्य उत्तराधिकारी नियत नहीं कर जाते उन स्थानों की बर्बादी होती है। केस (मुकदमें) चल जाते हैं। मुकदमाबाज़ी में संपत्ति तो नष्ट होती ही है साथ ही गुरुभाइयों में और अन्यान्य महंतों-संतों में भी दुश्मनी हो जाती हैं। समाज-विरोधी तत्व नाजायज़ फायदा उठाते हैं।

महंत बुड्ढा सिंह जी महाराज उन इने-गिने दूरदर्शी महापुरुषों में एक थे जिन्होंने अपनी तेज़ नजरों से परख लिया था कि कौन सा योग्यतम शिष्य उत्तराधिकारी नियत किया जाए, ताकि आश्रम द्वारा संत समाज की व अभ्यागत अतिथि आदि की समुचित सेवा होती रहे। इन्हीं बातों का ध्यान रखकर महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज ने 12 जुलाई सन् 1928 में संत आत्मा सिंह जी के नाम वसीयत करवा दी थी। इसके बाद 2 फरवरी सन् 1931 को श्रीमान महंत बुड्ढा सिंह जी ने संत आत्मा सिंह जी को ऋषिकेश के प्रसिद्ध स्थान निर्मलाश्रम का महंत नियुक्त कर दिया था। इस उत्सव में दूर-दूर के महंत, संत और महंत साहिब के प्रसिद्ध सिंधी सेवक सम्मिलित हुए थे। दस्तारबंदी की रस्म की गई और सबके सम्मानार्थ समष्टी भंडारा किया था।

इसके अनंतर 23 जून सन् 1933 में एक ट्रस्टनामा संत आत्मा सिंह जी के नाम किया था। उसमें बहुत-सी त्रुटियां थीं, बाद के अनुभव से ज्ञात हुआ कि यह प्रबंध हानिकारक है। उस में कुछ ऐसे तत्व शामिल हो गए थे जिनसे भविष्य में हानि होने की आशंका थी और उसे गुरुभाई और स्वयं महंत आत्मा सिंह जी

भी पसंद न करते थे। यहाँ तक कि स्वयं महंत आत्मा सिंह जी ने स्पष्ट कह दिया था कि इस ट्रस्टनामा के अनुसार मुझसे महंती की सेवा नहीं हो सकेगी, किसी अन्य गुरुभाई को यह सेवा संभाल दी जाए तो बहुत अच्छा होगा। इसके अलावा महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी के दिल में भी यह बात बैठ गई कि इसमें खामियां हैं जिनकी वजह से हमारे बाद मुकदमात चलने का अंदेशा है। अतः दोबारा 25 सितम्बर सन् 1934 को सर्वसम्मति से वसीयत महंत आत्मा सिंह जी के नाम की गई जिसमें पाँच गुरु-भाइयों की कमेटी बना दी गई। वे गुरुभाई निम्नलिखित हैं-

1. संत निक्का सिंह जी
2. संत मान सिंह जी
3. संत बलवन्त सिंह जी
4. संत करतार सिंह जी
5. संत ईश्वर सिंह जी

उक्त वसीयत पर नीचे लिखे माननीय महंतों-संतों की गवाही है-

हस्ताक्षर 1. स्वयं महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज। 2. महंत साधू सिंह जी, कनखल। 3. महंत केहर सिंह जी सेक्रेटरी निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल। 4. बंसीलाल अर्जी नवीस। 5. महंत आत्मा सिंह जी, ऋषिकेश। 6. महंत अरुड़ सिंह जी। 7. संत निश्चल सिंह जी। 8. संत करतार सिंह जी। 9. संत निक्का सिंह जी। 10. संत मान सिंह जी। 11. संत बलवंतसिंह जी, ऋषिकेश।

उपर्युक्त वसीयत व ट्रस्टीनामा के अनुसार महंत आत्मा सिंह जी महंत नियत हुए और 36-37 वर्ष महंती पद को अलंकृत करते रहे और अपनी असाधारण योग्यता एवं निष्काम सेवा से आश्रम को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया।

आगे स्वयं महंत आत्मा सिंह जी द्वारा तैयार किया ऐतिहासिक खरड़ा जो उन्होंने मास्टर गुरुदेवसिंह जी बी.ए. के हाथ से लिखवाया था, उसी को कुछ परिवर्तन, संवर्धन और परिमार्जन के साथ लिखा जाएगा। नोट : हम अपनी

ओर से कोई नवीन घटना का उल्लेख नहीं करेंगे। (ग्रंथ लेखक)

महापुरुषों के हृदय-सरोवर में उत्तमोत्तम तरंग उठती रहती है जो जिज्ञासुजनों के जन्म-जन्मांतरीय मनोमल को धो डालती है। चूँकि महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज अब अति वृद्ध हो चुके थे, पर उनके हृदयसागर में पवित्र तरंगमाला उठती ही रहती थी, उस तरंगमाला की एक पावनतम लहरी यह थी- 1933 में जब (श्री गुरुदेव महंत बुड्ढा सिंह जी महाराज) हैदराबाद सिंध से वापस आए तो कनखल और ऋषिकेश में ही रहने लगे। तब उनके विशाल हृदयसागर में श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की कथा दोनों स्थानों ऋषिकेश एवं कनखल में करवाने की अत्युत्तम संकल्प रुपी निर्मल तरंग उत्पन्न हुई। इस शुभ-संकल्प को मूर्तरूप देने के लिए ज्ञानी बलवंत सिंह जी को खर्च देकर 17-12-33 को कथा विशेषज्ञ ज्ञानी संत सरोवर सिंह जी को बुलाने के लिए अमृतसर भेजा। उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया और 1-1-34 को ऋषिकेश निर्मलाश्रम में कथा आरंभ कर दी। ज्ञान पिपासु संत-महात्मा और प्रेमी भक्त अधिक संख्या में आकर कथा श्रवण करने लगे। ज्ञानी जी ने यह कथा इतनी सुरीली आवाज और मनमोहक ढंग से की कि सब श्रोतागण सुनकर अति प्रसन्न हुए। फलतः दिनानुदिन श्रोता बढ़ते ही गए। इस प्रकार श्री 108 महाराज द्वारा प्रवाहित इस ज्ञान सरोवर में स्नान कर अधिकाधिक संत और भक्तजनों ने लाभ प्राप्त किया।

इसके बाद महाराज के आदेशानुसार अप्रैल 1935 को कनखल निर्मल बाग में कथा का आरंभ हुआ। गुरुदेव (महाराज) जी के साथ संत-महात्मा तथा भक्त लोग जो ऋषिकेश में कथा सुनते थे, वे सभी यहाँ कनखल में आकर श्रद्धापूर्वक कथा श्रवण करने लगे। श्री गुरु ग्रंथ साहिब की इस कथा की परिसमाप्ति भादों सुदी 1 संवत् 1991 तदनुसार 11 सितंबर सन् 1935 को हुई, बहुत भारी उत्सव मनाया गया, भंडारा किया गया और ज्ञानी सरोवर सिंह जी की 500 रु० पूजा सह सत्कार की गई।

❑

तरंग 52

भाई नारायणदास पंजाबी के हृदय में महाराज की सेवा करने की तीव्र इच्छा थी। इसके लिए उन्होंने महाराज को ले जाने के लिए मूलचंद को भेजा। 30-11-34 को चेला पंडित अर्जुन सिंह जी, साहब सिंह जी, देवा सिंह जी, करतार सिंह जी साथ थे। अमृतसर में ठहर कर वहाँ के गुरुद्वारों के दर्शन करने लाहौर चले गए। लाहौर में जेठीमाई के यहाँ ठहरे। यहाँ से ज्ञानी बलवंत सिंह जी आज्ञा लेकर ज्ञानी सरोवर सिंह जी की कथा सुनने के लिये शहजीवणे चले गए। करतार सिंह जी बनारस चले गए। महाराज ने संत मान सिंह जी को ऋषिकेश से बुला लिया। उनको साथ लेकर कराची पहुँच गए। कराची स्टेशन पर प्रेमीजनों के साथ सेठ नारायण दास मियानी मोटर पर बैठाकर अपने घर ले गए। प्रेम से सेवा करने लगे। सत्संग आरंभ किया गया। बहुत प्रेमीजनों ने सत्संग से लाभ उठाया। इसी प्रकार हैदराबाद, शिकारपुर तथा अट्टे-टट्टे की संगत ने भी बहुत सेवा की।

1934 को मुक्खी ठहंगामल विनती कर हैदराबाद ले गए। अपने घर में रखकर बहुत सेवा सुश्रूषा की और सत्संग का लाभ उठाया। यहाँ से संत साहब सिंह जो महाराज की सेवा करता था, के वापस आने पर सेवा का सौभाग्य संत देवा सिंह जी को मिला। सेठ लछमन दास सेवा करने की भावना से सब संतों सहित महाराज को शिकारपुर ले गया। द्वारकादास जिसका कीर्तन बहुत अच्छा था, उसने संत मंडली के साथ रहकर कीर्तन करने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिल जाने पर उसने कीर्तन करना आरंभ कर दिया। इसके कीर्तन से महाराज के यश को और भी चार-चाँद लग गए। दर्शनों के लिए प्रेमीजन नियमित नित्य

आते रहे। श्री गुरुदेव जी प्रेमीजनों की सेवा से बहुत प्रसन्न हुए। सबको शुभाशीर्वाद देकर वापस लाहौर आ गए। यहाँ की संगत को आशीर्वाद देकर 11-4-35 को कनखल पहुँच गए। कुछ दिन यहाँ रहकर ऋषिकेश आ गए।

महाराज जब हैदराबाद में थे तभी भाई जीवनराम कोलंबो वाले ने अपने बेटे गोविंदराम की शादी में आकर जोड़ी को आशीर्वाद देने के लिए प्रार्थना की थी। अतः शादी में उपस्थित होने के लिए महाराज विवाह से पहले मई में हैदराबाद सिंध पहुँच गए। वहाँ जाकर गोविंदराम के बंगले पर ठहरे। इनके पहुँचने से 2-3 दिन पहले नवलराय ईश्वरदास का देहावसान हो गया था। इन्होंने बहुत प्रेम से महाराज की सेवा की थी।

पेलूराम आशा सिंह संघे ने तन-मन-धन से सेवा की। महाराज जी ने नवलराय के परिवार को धैर्य प्रदान किया और भगवान की आज्ञा को, प्रभु के प्रत्येक विधान को सहर्ष स्वीकार करने का उपदेश दिया। बताया कि सदा नाम जपते रहो, सदात्माओं की सेवा करते रहो। इस तरह तुम्हारी आत्मा को सभी तरह से शांति मिलेगी।

❑

तरंग 53

विवाह पर महाराज ने जोड़ी को सिरोपाव तथा सौभाग्यवान् होने का आशीर्वाद दिया। जैसा कि भाई जीवनराम ने पहले संकल्प किया था कि विवाह में दहेज का जो भी धन मिलेगा उसे महाराज की सेवा में अर्पण कर दूंगा। आठ हजार रुपया दहेज में मिला, विवाह में केवल 330 रुपये खर्च हुए थे, सो खर्च काट कर 7670 रुपये महाराज के चरणों में अर्पण कर दिए।

प्रेमीजनों के प्रार्थना करने पर कि यहाँ भी गुरुजी का स्थान होना चाहिए, महाराज ने सारी रकम भक्तजनों को सौंप दी। इस रकम से जमीन देखकर एक प्लाट खरीदा गया जो 4800 चौरास फुट था जिसका 1-75 रु० प्रति फुट की दर से 8400 रु० बना। भूमि हरिभाई गेरुमल की थी। अतः बात पक्की होने पर 10-5-35 को 500 रु० पेशगी दे दिया तथा बाकी धन 7950 रजिस्ट्री के दिन 29-6-35 को दिए गए। महाराज कुछ दिन हैदराबाद रहकर लाहौर तथा अमृतसर होते हुए कनखल आ गए। कुछ दिन यहाँ रहकर मसूरी चले गए। यहाँ डॉ प्रकाश से दाँत लगवाए। 10-7-35 को कनखल वापस आए। यहाँ आकर गुरुचरण सिंह को शिमला तार दिया कि हम 26-7-35 को शिमले पहुँच रहे हैं। अंबाला होते हुए 27-7-35 को शिमला पहुँचे। 1-10-35 तक गुरुचरण सिंह के पास रहकर कालका मेल से अमृतसर पहुँचे। प्रीतमदास के पास सिंधी धर्मशाला में ठहरे। गुरुद्वारों की यात्रा की। बाबा बकाला के तालाब की धन राशि द्वारा पूजा की। कुछ दिन अमृतसर रहकर लाहौर चले गए। वहाँ किशनचंद डेटी माई के पास 29-10-35 तक ठहरे। इनकी पूजा-सेवा स्वीकार कर 30-10-35 को कराची के लिए रवाना हुए। 18-12-35 को कराची से

हैदराबाद आए और जो भूमि खरीदी थी उस पर ट्रस्ट बनाया और रजिस्ट्री ट्रस्ट के नाम करा दी। यह कार्य 27-12-35 को किया गया। हैदराबाद से लाहौर आए और यहाँ से 30-12-35 को बनारस के लिए रवाना हो गए। काशी में अपने स्थान ज्ञान-गुफा में ठहरे। संतों को भंडारा दिया और कुछ दिन यहाँ ठहरे।

❑

तरंग 54

सन् 1936

मकर संक्रांति, माघ मास में इलाहाबाद में भारी मेला लगता है। अतः इलाहाबाद की अर्द्ध कुंभी के पवित्र पर्व पर महाराज 12-1-36 को वहाँ पहुँचे। गंगा-तीर पर शीत अधिक होने के कारण आप किराये पर मकान लेकर शहर में ठहरे। महाराज के साथ वाधुमल कोलंबो वाले, सेवा सिंह थाऊमल, किशनचंद तथा राम अपने पिता तथा धर्मपत्नी के साथ था। भक्त और संत-महात्मा अधिक संख्या में स्नान करने आए थे। निर्मल पंचायती अखाड़ों ने समष्टी भंडारा किया जिसका कुल खर्चा 443 रु. 5 आने हुआ। 101 रु. में अखाड़े की पूजा की। इसके अतिरिक्त 20-1-36 को अखाड़ा को चाँदी का एक बड़ा थाल भेंट किया जिस पर महाराज का नाम खुदा हुआ है। 1936 के अर्द्धकुंभ मेला पर कुल खर्च 729 रु. हुआ। सेठ टोपनदास की प्रार्थना पर 24-1-36 को इलाहाबाद से चलकर बाबा जी कलकत्ता पहुँचे। 25-1-36 को सत्संग में बहुत सुंदर उपदेशों से भरपूर भाषण दिया। कलकत्ता से 15-2-36 को चलकर 16-2-36 को लखनऊ पहुँचे और सेठ टहल राम के यहाँ ठहरे। 20-2-36 को कनखल वापस आ गए। कुछ दिन कनखल में निवास कर प्रेमियों के बुलाने पर कराची चले गए । अमृतसर होते हुए लाहौर में किशनचंद के घर ठहरे। अगले दिन कराची चले गए। कराची में केसुमल के पास ठहरे। कराची से हैदराबाद गए। हैदराबाद में मकान की नींव रखनी थी। यहाँ 25-5-36 तक ठहर कर भक्तजनों की सेवा-भक्ति से प्रसन्न होकर वापस कनखल

आ गए। यहाँ से मसूरी गए। इन्हीं दिनों टोपनदास की बेटी का विवाह था। दिल्ली के राम चंद लीलाराम के बेटे से शादी हुई। महाराज ने जोड़ी को चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया। मसूरी में 27-5-36 को 285 रु. का रिक्शा लिया। इस पर बैठकर बाहर घूमा करते थे। मसूरी से वापस ऋषिकेश कनखल में रहकर फिर प्रेमियों के बुलाने पर 9-9-36 को कराची पहुँचे। किशनचंद भम्मी माई के यहाँ रहे। यहाँ से हैदराबाद कराची तथा शिकारपुर आदि में भक्तों की भावना पूरी कर उपदेश अमृतपान कराकर 31-3-37 को वापस लाहौर आ गए। 3-4-37 को कनखल पहुँचे। कुछ दिन यहाँ रहकर 20-5-37 को मसूरी गए। भाई दौलतराम जेठामाई ने श्रद्धा-भक्ति से बहुत सेवा की। महाराज के स्वास्थ्य के लिए डॉक्टर को बंगले में बुलाते रहे। कुछ दिन के बाद वह महाराज के साथ कनखल आ गए। डॉक्टर दुबे से इलाज कराते रहे परंतु इनकी दवाओं का सेहत पर कुछ प्रभाव न पड़ा। अतः बोस बाबू आदि अन्य डॉक्टरों से इलाज कराया। वैद्य राम स्वरूप से भी चिकित्सा कराई, मगर कोई लाभ न हुआ। स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता ही गया। महाराज के सेवक-चेले सभी मौजूद थे और प्रेम से सेवा करते थे। अंतिम श्वास तक नाम जपते रहे। कोई दुःख-दर्द महसूस नहीं किया। धीरे-धीरे स्वास्थय गिरता गया। अंत में असौज वदी ग्यारह सायं आठ बजकर पैंतीस मिनट पर अपार संसार सागर से पार उतर गए।

❑

तरंग 55

मिट गए गवन पाए विश्राम

महाराज के शांत शरीर को स्नानादि से स्वच्छ पवित्र करके सिद्धासन लगाकर दीवार के सहारे बैठाया गया। आँखें-मुँह पहले ही से बंद थे, मानो समाधि लगाकर बैठे हुए थे। प्रेमीजनों को कलकत्ता, कराची, कोलंबो, अमृतसर, लाहौर, हैदराबाद, बंबई आदि में तार दिए गए थे। वे सब समय पर उपस्थित हो गए। दीवान चेतनराम, किशनचंद अपनी पत्नी के साथ, टोपनदास अमृतसर से, प्रीतमदास और बहुत से प्रेमीजन अंतिम दर्शनों के लिए आ गए थे। संत मान सिंह जी, ज्ञानी बलवंत सिंह जी, संत देवा सिंह जी, खीवन सिंह जी, करतार सिंह जी विरक्त, निक्का सिंह जी, संत निश्चल सिंह जी, संत ईश्वर सिंह जी, लाभ सिंह जी, पंडित अर्जुन सिंह जी सेवा में हाज़िर थे। महाराज जी के परलोक गमन का समाचार ऋषिकेश में संतों को पहुँचाया गया। सुबह लारी द्वारा उन्हें कनखल में लाया गया।

जिउ जल महि जलु आइ खटाना।।
तिउ जोती संगि जोति समाना।। (पन्ना **278**)
गुरमुखि जनम सवारि दरगह चलिआ।।
सची दरगह जाइ सचा पिड मलिया।।

भाई गुरुदास जी परम पूज्य श्री गुरुदेव जी के अस्वस्थ होने पर हैदराबाद सिंध से दीवान चेतनराम गिदवानी, किशनचंद, के. सी. कंपनी वाले, डेटी माई, श्री टोपनदास कलकत्ते वाले, सेठ प्रीतमदास अृमतसर वाले तथा संत-महात्मा एवं सेवी सद्गृहस्थ श्री महाराज जी के पवित्र चरणों के दर्शन करने के लिए हाज़िर हो गए थे। क्षणिक अस्वस्थ रहकर गुरुदेव जी असौज वदी ग्यारह एकादशी तदनुसार 30 सितम्बर 1937 को सायंकाल आठ बजकर पैंतीस

मिनट पर संत-महात्माओं तथा सद् गृहस्थों से प्रसन्न हो उन्हें नाम की महिमा सुना व सुखी जीवन बिताने का आशीर्वाद देकर परब्रह्म में लीन हो गए। ज्योति जोत समा गए। सद्गृहस्थ बहुत दुखी हुए। उन्हें धैर्य दिया गया।

आश्विन वदी द्वादशी, तदनुसार एक अक्टूबर सन् 1937 को पूज्य महाराज को जलप्रवाह देने के लिए विमान बनाया गया। उसे सुंदर वस्त्र एवं फूलों से सजाया गया था। भेष भगवान के सभी संतों-महंतों तथा सद् गृहस्थों को सूचना दे दी गई थी, जिससे बहुत से संत महात्मा तथा सद् गृहस्थ उनके अंतिम दर्शन के लिए वहाँ उपस्थित हो गए। निर्मल साधु समाज की मर्यादा के अनुसार श्री गुरुदेव जी के विमान पर स्वर्ण जटित दुशाला डाला गया। निर्मल अखाड़े ने भी दुशाला डाला। इसके बाद उपस्थित महंतों संतों ने अपनी मर्यादा अनुसार दुशाले डाले। गृहस्थी प्रेमियों ने भी काँपते हाथों से दुशाले तथा श्रद्धा की फूलमालायें अर्पण कीं। इसके पश्चात् विमान को श्री दरबार साहिब के सामने रखकर अरदास की गई। इसके बाद संत महात्माओं ने विमान को उठाया, विमान के आगे प्रांत का सबसे अच्छा बैंड बाजा अपनी दर्द भरी मीठी स्वर लहरी में शोक बिखेर रहा था। उसके पीछे-पीछे संत विद्यार्थी सोने की लाठियां लिए चल रहे थे। सबसे पीछे विमान सुशोभित हो रहा था। मर्यादानुसार मखाने, फूल, बतासे तथा पैसे रुपये विमान के ऊपर भक्त सज्जनों द्वारा बरसाए जा रहे थे जिनको समाज के मनुष्य स्त्रियां श्रद्धावश उठा रहे थे। अपने नवजात शिशुओं के गले में पहनाने के लिए ले जा रहे थे। विमान नगर के बाजारों से होकर श्री भगवती भागीरथी के प्रसिद्ध पवित्र स्थान नीलधारा पर पहुँचाया गया। वहाँ पर कीर्तन सोहले का पाठ करके अरदास के पश्चात् अटूट श्रद्धा भक्ति के साथ विमान को जल प्रवाह किया गया। किसी का हृदय उस विरहवेला के समय दुःख और प्रेम से नहीं उमड़ा अर्थात् सब सज्जन उनके प्रेम में मौन निस्तब्ध और गंभीर थे। तत्पश्चात् सबने गंगा जी में स्नान किया। गुरु मर्यादानुसार श्री गुरु ग्रंथ साहिब का सहज पाठ प्रारंभ हुआ। सभी संत-महात्माओं ने मिलकर श्रद्धा भक्ति तथा प्रेम के सागर में मग्न होकर पाठ को संपूर्ण किया। ❑

तरंग 56

सत्रहवीं

ब्रह्मलीन श्री पूज्य महाराज की सतौरहवीं, अर्थात् सत्रहवें दिन महा महोत्सव मनाने के लिए आश्विन सुदी दशमी तदनुसार 15-10-1937 को श्री गुरु ग्रंथ साहिब का अखंड पाठ आरंभ हुआ और असौज सुदी द्वादशी ता. 17-10-1935 को भोग पड़ा। परिसमाप्ति हुई, आरती अरदास के बाद षट् दर्शन को भंडारा दिया गया। सब महात्माओं को करीब 4-4 गज कपड़ा पंगत पूजा के रूप में दिया गया तथा सब संत आश्रमों की अलहदा पूजा की गई। इस अवसर पर हैदराबाद, सिंध, कराची, कोलंबो, कलकत्ता तथा बंबई से सद् गृहस्थ भी श्रद्धा भक्ति से आकर उपस्थित हुए, तथा इन्हीं के द्वारा 3915 रु० का धन दीवान चेतन राम द्वारा महाभोज हेतु प्राप्त हुआ। कनखल के संतों का भंडारा करने के बाद ऋषिकेश के निर्मल आश्रम में दूसरा समष्टी भंडारा किया गया जिसमें लक्ष्मणझूला तथा संतों के प्रसिद्ध स्थान झाड़ी से सब संतों को निमंत्रित किया गया। उन्हें पक्का भोजन खिलाया गया। दोनों भंडारों का चार हजार बानवे रुपया खर्चा हुआ। दूर-दूर से सद् गृहस्थ इन भंडारों में आए थे। वे सबके सब महात्माओं के दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए और महाराज के इस कार्य को सफल करके उन्होंने अपने जीवन को भी पवित्र एवं सफल बनाया। भगवान उनकी कमाई को सफल बनाएं यही हमारी आंतरिक अभिलाषा है।

ज्योति ज्योत समाने के पश्चात्

गुरुदेव के ब्रह्मलीन होने के अनंतर उनके द्वारा चलाए गए कार्य, शिक्षा, उपदेश आदि का सिलसिला उन्हीं की कृपा से पहले की तरह ही जारी रहा।

महाराज के वैकुंठवास के बाद उनके स्वरूप जानकर प्रेमी जन हमें भी पूर्ववत् बुलाते रहे।

सिंध हैदराबाद के आश्रम निर्माण के लिए प्लाट खरीदने का जिक्र पहले आ चुका है। उसकी नींव महाराज अपने हाथों रखकर उद्घाटन वगैरह की रस्म भी कर गए थे। उसकी देखभाल के लिए ट्रस्ट भी कायम कर गए थे, पर उनके परलोक गमन करने के बाद जब भवन बन कर तैयार हुआ तो उसका मुहूर्त समारोह करने के लिए ट्रस्ट के सदस्यों ने हमें 7-7-39 को एक सौ रुपये किराये के लिए भेजे। इस निमंत्रण को स्वीकार कर हम 25 जुलाई सन् 1939 को चले तथा अमृतसर के गुरुद्वारों की यात्रा करते हुए मुहूर्त समारोह में हैदराबाद पहुँचे। भादों सुदी 1 तदनुसार 11-9-39 को प्रेमियों द्वारा श्रद्धापूर्वक बनाए गए मकान का मुहूर्त किया गया। हमारे साथ ज्ञानी बलवंत सिंह जी, ज्ञानी संत देवा सिंह जी तथा नारायण सिंह थे। कुछ दिन हैदराबाद रहे। कराची के भक्त ताराचंद, चेतीबाई तथा ठठ्ठे की संगत एवं गोपाल आदि की प्रार्थना पर हम लोग कराची गए, वहाँ उनकी सेवा को सफलीभूत करते हुए हैदराबाद वापस आए। ज्ञानी बलवंत सिंह जी, संत देवा सिंह जी, संत करतार सिंह जी, पंडित सुच्चा सिंह जी हैदराबाद में ही रह गए। हम महाराज की पहली सालाना वर्षी (बरसी) मनाने के लिए कनखल चले आए। यह वर्षी 14-10-1939 को अखंड पाठ तथा पक्का भंडारा करके बड़ी धूमधाम से मनाई गई। इसमें दूर-दूर से आए सद् गृहस्थ तथा संत महात्माओं ने बहुत ही हर्ष से भाग लिया। कराची से दीवान ताराचंद तथा चेती बाई ने 107 रु. का धन उक्त महायज्ञ के लिए भेजा।

सन् 1939

पुनः कराची की ओर

इस वर्ष डेरे के काम में लगे रहने के कारण वर्षी से पहले हम कहीं भी न जा सके। महाराज की दूसरी वर्षी संत महात्माओं तथा भक्तों के साथ मिलकर

बड़ी धूम-धाम से मनाई। इसके उपरांत महाराज के सेवक दीवान ताराचंद ने 14-10-39 को किराया भेजा और कराची पधारने की विनती की।

उनके प्रेम और उत्साह को बनाए रखने के लिए हमने पंडित अर्जुन सिंह जी तथा नारायण सिंह जी के साथ प्रस्थान किया। 31-12-39 को अमृतसर श्री दरबार साहिब के दर्शन कर कराची के लिए रवाना हुए। 3-1-40 को कराची पहुँचे । वहाँ कुछ दिन रहे। प्रेमीजनों ने श्रद्धा भक्ति के साथ सेवा की। वहाँ से हैदाराबाद आ गए और स्थान के खर्चे के लिए 100 रुपया दिया। 15-3-40 को वापसी में फिर अमृतसर आए और सेठ मेलाराम के घर ठहरे। उसको आशीर्वाद देकर वापस कनखल आ गए। गुरुदेव जी की तीसरी बरसी महात्मा तथा प्रेमी भक्तजनों के सहयोग से बहुत बड़े पैमाने पर मनाई।

कुछ दिनों के बाद सेठ लछमनदास ज्ञान चंद शिकारपुर वालों ने अपनी पुत्री की शादी में बुलाया जिसके लिए हमने 15-12-40 को शिकारपुर के लिए प्रस्थान किया। अमृतसर दर्शन करते हुए 9-12-40 को शिकारपुर पहुँचे। साथ में संत मदन सिंह जी तथा नारायण सिंह थे। गुरुमुख प्यारे सेठ लछमण दास ने बहुत ही श्रद्धापूर्वक सेवा सुश्रूषा की। वहाँ के सभी प्रेमी भक्तों ने प्रेम से सेवा की। फिर ताराचंद की विनती पर कराची चले आए। वापसी में हैदराबाद के स्टेशन पर प्रेमीजन मिले और उन्होंने अपनी प्रेम-भावना पूर्ण की।

12-1-41 को दीवान लालचंद आडवानी की श्रद्धा से जमशेद द्वारे ठहरने के बाद कराची पहुँचे। स्टेशन पर प्रेमीजन अत्यधिक संख्या में एकत्रित थे। हम ताराचंद के यहाँ 23-2-41 तक रहे। प्रेमीजनों ने प्रेम से सेवा की। 23-2-41 को हैराबाद आए। यहाँ 20-3-41 तक रहकर अमृतसर जी के दर्शन कर कनखल आ गए। यहाँ पर हमने महाराज जी की चौथी वर्षी मनाने की तैयारी आरंभ कर दी। इस बार वर्षी पर अधिक संख्या में साधु-महात्मा तथा प्रेमीजन शामिल हुए थे। ता. 8-5-41 को सेठ टोपनदास की पुत्री की शादी थी। यह विवाह हृदयारमयाणी भगवानदास के साथ होना था। दोनों ही समधी हमें अति

प्यारे थे। अतः हमें दोबारा हैदराबाद जाना पड़ा। 8 को चले, अमृतसर दर्शन करते हुए 9-5-41 को हैदराबाद पहुँचे। यह विवाह प्रभु-कृपा से 11-5-41 को बहुत धूम-धाम से हुआ। जोड़ी को सिरोपाव दिया तथा सौभाग्यशाली होने का आशीर्वाद देकर हम 20-6-41 को कनखल के लिए वापस हुए।

1-8-41 को टीकमदास सोमराज कोलंबो वालों ने 100 रुपये भेजकर अपने भाई हाशाराम की शादी जो जीवतराम की बेटी नीना से होनी थी की मँगनी पर बुलाया। 7-8-41 को हम फिर कराची रवाना हुए। साथ में संत बलवंत सिंह जी और नारायण सिंह जी थे। विवाह 15 अगस्त को हुआ। इन्होंने फ़राखदिली से नजर भेंट की। कराची होकर हम फिर कनखल आ गए।

सन् 1942

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी बाबा जी महाराज की पाँचवीं वर्षी, संत-महात्मा तथा भक्तों ने मिलकर बहुत ही प्रेम से मनाई। वर्षी के पश्चात् दीवान ताराचंद के द्वारा निमंत्रण मिलने पर 5-12-42 को कनखल से रवाना हुए। बलवंत सिंह जी ज्ञानी एवं मदन सिंह जी तथा नारायण सिंह जी साथ थे। अमृतसर दर्शन करते हुए 13-12-42 को कराची पहुँचे।

सन् 1943

4-2-43 तक कराची में रहकर सत्संग उपदेश करते रहे। अब की बार ज्ञानी जी की कथा का अच्छा रंग जमा। यहाँ हैदराबाद आकर 13-3-43 तक रहे। लक्ष्मणदास के प्रेम से बुलाने पर शिकारपुर गए। यहाँ 16-4-43 तक रहे। यहाँ से वापस हुए और 20-4-43 को कनखल पहुँचे। यहाँ महाराज की छठी वर्षी मनाने का प्रबंध आरंभ किया। भाई दौलतराम अपनी पत्नी जेठी माई के साथ आए। इनके अतिरिक्त दिल्ली से हशमतराय खूबचंद परिवार सहित आए और उनके साथ कई-एक प्रेमी थे जो भंडारा में सम्मिलित हुए। 22-1-43 को दीवान रामदास चेनानी ने किराया भेजकर आने की प्रार्थना करने पर 6-11-43 को रवाना हुए। अमृतसर होते हुए लाहौर पहुँचे। वहाँ किशनचंद

युधवानी भम्मी माई तथा अन्य प्रेमियों ने बहुत आदर सत्कार किया। हैदराबाद 20-11-43 तक रहकर कराची रामदास चेनानी के साथ गए। दीवान सेवाराम जमना दास देवीदास आदि ने परिवार सहित बहुत प्रेम से सेवा की।

सन् **1944**

30-1-44 तक रामदास के यहाँ रहकर हैदराबाद आए। हीरानंद दानुमल्ल हमें ठंडेआदम में ले गया और वहाँ बड़े प्रेम से सेवा की। वहाँ से वापस आने पर हैदराबाद की संगत ने बड़े प्रेम और उत्साह से संतजनों की सेवा की। यहाँ से 17-3-44 को चलकर रेहडी पहुँचे। यहाँ से लछमणदास की प्रार्थना पर शिकारपुर गए। यहाँ भक्तों ने बहुत सेवा की। 25-4-44 तक शिकारपुर रहकर भक्तजनों को उपदेश तथा शुभ शिक्षा देकर अमृतसर दर्शन करते हुए 29-4-44 को कनखल पहुँच गए। 23-8-44 को सेठ मोतीराम कान सिंह ने 200 रुपये किराये के लिए भेजे और सिंध आने का निमंत्रण दिया और सेवा करने का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी की सातवीं बरसी संत-महात्माओं तथा श्रद्धालु गृहस्थी सज्जनों ने मिलकर बड़े प्रेम से मनाई।

नासिक गोदावरी के कुंभ का स्नान

यद्यपि हमने मोती राम कान सिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली थी परंतु उस वर्ष नासिक का कुंभ होने के कारण कुंभ-स्नान करने के पश्चात् सिंध जाने का संकल्प कर लिया था। 24-10-44 को दिल्ली गए, वहाँ सेठ रामचंद मिट्ठा राम लीलाराम वालों ने प्रेम से सेवा की। यमुना स्नान तथा गुरुद्वारों के दर्शन कर 26-10-44 को नासिक रवाना हुए। जो संत-महात्मा कुंभ का स्नान करके त्रयंबक से वापस भी गए थे, उन सबको साथ लेकर 28-10-44 को त्रयंबक पहुँचे। पूर्णमासी के दिन अच्छी तरह से सब संतों के साथ मिलकर सुंदर जुलूस निकला, जो सब जुलूसों से शानदार मालूम होता था। 31-10-44 को समष्टि भंडारा किया। इस वर्ष कुंभ का प्रबंध निर्मल पंचायती अखाड़े ने पूर्णरूप से नहीं

किया हुआ था। संन्यासी नए अखाड़े के साथ मिल गए थे। 7-11-44 को नासिक वापस आने पर परमानंद हृदयारमाणी की चिट्ठी मिली, जिसमें उन्होंने कोलंबो बुलाया था। लेने जाने के लिए भी अपने बेटे भगवान को भेजा था। हीरानंद दानुमल भी नासिक में थे। उन्हें भी कोलंबो बुलाया गया था। इस समय हमारे साथ संत मान सिंह जी, मदन सिंह जी, नारायण सिंह तथा दर्शन सिंह आदि थे। हम बंबई के लिए रवाना हुए वहाँ स्टेशन पर डॉ. संतराम दास, सेठ भगवान दास आए हुए थे। यह निर्णय होने पर कि संत रामदास के घर चलें, वहाँ से विचार करके आगे चलेंगे। हम सब डॉ. चेनानी के यहाँ मैरीन ड्राईव गए। संत रामदास अपने यहाँ कुछ समय रखना चाहते थे परंतु भगवान दास अपने साथ ही कोलंबो ले जाना चाहते थे क्योंकि दक्षिण होने के कारण हमें वहाँ के निवासियों की बोली समझ में नहीं आ सकती थी। उनका कहना था कि मेरे साथ रहने पर इन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। मुझे अधिक समय तक ठहरना संभव नहीं था क्योंकि कार्य बहुत अधिक था। उसने कहा-आप महाराज की सेवा वापस आने पर कर लेना। संत रामदास ने इसे स्वीकार कर लिया और हम सब संतों के साथ 15-11-44 को बंबई से मद्रास पहुँचे। वहाँ से त्रिचिनापल्ली गए। यहाँ पर शादी थी। श्री रंगनाथ महादेव जी व गणेश जी की यात्रा कर 23-11-44 को कोलंबो पहुँचे। परमानंद तथा सारी संगत स्टेशन पर मिली। परमानंद मोटर से अपने घर ले गए। यहाँ सत्संग तथा पूजापाठ होने लगा। सेठ परमानंद ने सारे परिवार के सहित सेवा की तथा अपने पुत्र भगवान दास की ड्यूटी सत्संग की लगाई। उन्होंने सारे कोलंबो की यात्रा करवाई। मोटर द्वारा नुरेलाकैंडी कतरा स्वामी की यात्रा की। सेठ कुंदनमल, जीवतराम, वाटूमल, रमनमल आदि प्रेमियों ने बहुत श्रद्धा-भक्ति से पूजा तथा सेवा की। 17-12-44 को सभी भक्तों की सेवा-सफली कर हम वापस हुए और 20-12-44 को धनुषकोटि में आकर समुद्र-स्नान किया। 20-12-44 को भद्रादेवी की यात्रा की। यहाँ शिकारपुरी प्रेमियों ने सेवा की। 17-12-44 को

मदन मीनाक्षी से चलकर मद्रास आए। मद्रास में सेठ हरिदयाल के पास ठहरे। मद्रास की संगत ने प्रेम से सेवा की। 25-12-44 को मद्रास से चलकर 27-12-44 को बंबई पहुँचे। रास्ते में पूना के स्टेशन पर वहाँ की संगत ने सेवा-पूजा की। बम्बई स्टेशन पर संत रामदास तथा अन्य प्रेमीजन मिले जो बहुत प्रसन्न हुए। भगवानदास कोलंबो से बंबई छोड़ने के लिए हमारे साथ आया था। हमारी प्रेरणा से धर्मार्थ के लिए उसने 101 रुपये निर्मल पंचायती अखाड़ा को, 101 रुपये निर्मल पत्र (अखबार) को, 101 रुपये निर्मल महामंडल को भेजे तथा आज्ञा लेकर कोलंबो को वापस चला गया। डॉ. चेनानी ने परिवार सहित संत मंडली का प्रेम से सत्कार किया।

सन् **1945**

द्वारिका, सुदामापुरी, प्रभास क्षेत्र आदि की यात्रा

21-1-45 तक बंबई में रहे। संगत तथा भक्तजनों ने आदर-सत्कार के साथ सेवा-पूजा की। यहाँ से महंत मान सिंह जी, संत मदन सिंह जी, नारायण सिंह तथा दर्शन सिंह आदि के साथ द्वारिका, सुदामापुरी, प्रभास क्षेत्र की यात्रा करते हुए 29-1-45 को महसाना के लिए रवाना हुए। 31-1-45 को महंत मान सिंह जी कनखल वापस हो गए और हम मारवाड़ होते हुए हैदराबाद को रवाना हुए। 1-2-45 को मीरपुर पहुँचे जहाँ डॉ. रेवाचंद ने सेवा-पूजा की। मीरपुर से हैदराबाद गए। यहाँ 15 दिन ठहर कर 16-2-45 को कराची आ गए। संगत ने स्टेशन पर स्वागत सत्कार किया। दीवान मोतीराम कान सिंह जगतिआनी के घर ठहरे। संगत ने सेवा-पूजा द्वारा अपनी श्रद्धा-भावना पूर्ण की। सत्संग नियमानुसार नित्य होता रहा। ठट्टे की सगंत ने भी बहुत सेवा की। यहाँ मार्च तक रहकर 1-4-45 को कराची से वापस हुए। अमृतसर दर्शन करके 4-4-45 को हरिद्वार पहुँचे। 28-5-45 को दीवान लालचंद आडवानी ने रुपये तथा पत्र भेजकर प्रार्थना की कि अगली बार हमारे यहाँ आकर ठहरें। इसे स्वीकार किया और बरसी के बाद आने के लिए लिखा। ❑

तरंग 57

मसूरी का कारोबार और गुरुदेव की आठवीं वर्षी (बरसी)

मसूरी का कारोबार तथा स्थान की सेवा करते हुए श्री गुरुदेव जी की आठवीं बरसी संतों-महंतों के साथ प्रेम से मनाई। सेठ परमानंद जी भी बरसी में आए हुए थे। उनकी इच्छा लाहौर में दुकान खोलने की थी। उसके मुहूर्त के लिए 8-10-45 को लाहौर पहुँचे तथा उनकी दुकान जिस का नाम पूर्ण एंड संस रखा था का खूब धूम-धाम से मुहूर्त किया गया। हमारी एक आँख में मोतियाबिंद होने के कारण दिखाई देना बंद हो गया था। अतः प्रसिद्ध डा. मथुरा दास को आँख दिखाई गई। उन्होंने ऑपरेशन करना स्वीकार किया। यह पूछने पर कि ऑपरेशन कहाँ होगा? उन्होंने घर पर ही करना मंजूर किया। ऑपरेशन बड़े प्रेम से किया और ठीक हुआ। डॉ. साहब को फीस देने का बहुत प्रयास किया लेकिन उन्होंने कोई फीस नहीं ली। परमानंद जी ने तथा लाहौर की संगत ने बहुत अदब-आदाब से सेवा की। लाहौर से कनखल वापस आ गए और लालचंद आडवानी के बुलाने का ध्यान रखते हुए कुछ दिन कनखल में आराम करके 22-12-45 को कराची के लिए रवाना हुए । अमृतसर, लाहौर तथा हैदराबाद होते हुए कराची पहुँचे । स्टेशन पर आई हुई संगत का प्रेम और सेवा लेकर मोटर द्वारा जमशेद द्वारे पहुँचे। दीवान लालचंद की बेटी चतुरी की शादी किशनचंद के साथ हुई। जोड़ी को सौभाग्यशाली होने का आशीर्वाद दिया। जोधा सिंह लालवानी ने भी अपनी शादी लीलादेवी से कराई, इन्हें भी आशीर्वाद दिया। जयकिशन मुक्खी लखीराम के बेटे की शादी हैदराबाद में थी। उनके बुलाने पर हम हैदराबाद आए।

सन् 1946

संगत की प्रेम, श्रद्धा तथा उत्साह से की हुई सेवा सुश्रूषा से प्रसन्न होकर आशीर्वाद देकर तथा चल रहे सत्संग की समाप्ति कर, अढ़ाई मास कराची में बिता कर 13-3-46 को हैदराबाद वापस आए।

रेवाचंद मन्नालाल के घर ठहरे। राम और किशन मिरवानी ने बड़े प्रेम व श्रद्धा से सेवा की। उन्हें आशीर्वाद और सद्उपदेश देकर 23-3-46 को हैदराबाद से सीधे बंबई पहुँचे। डा. संत रामदास ने प्रेम से निमंत्रित किया हुआ था। सो उसी के साथ उसके निवास स्थान शिवसदन मैरीन ड्राईव पर पहुँचें। संगत ने यथाशक्ति प्रेम से सेवा-पूजा की। एक मास बंबई रहकर 28-4-46 को बंबई से रवाना हुए। 30-4-46 को दिल्ली पहुँचे। सेठ रामचंद लीलाराम वालों के पास एक दिन ठहर कर कनखल 2-5-46 को पहुँचे । मसूरी तथा ऋषिकेश के स्थानों की देखभाल करते रहे। श्री गुरुदेव जी की नौवीं बरसी आ गई, अतः इसकी तैयारी आरंभ की। यह बरसी बहुत धूमधाम से मनाई गई। इस अवसर पर कलकत्ता, बंबई और दिल्ली से भक्तजन आ गए थे। 30-10-46 को दीवान रामदास खूबचंद चेनानी ने 200 रु. मनीआर्डर द्वारा भेज दिए और कराची आकर दर्शन देने की प्रार्थना की। इन्हीं दिनों हीरानंद कृपलानी की धर्मपत्नी गुल्लीमाई आई हुई थीं। उन्हें हमारे सिंध जाने का पता मालूम हुआ। उन्होंने बड़े उत्साह और प्रेम से दिल्ली ठहरने की प्रार्थना की। 5-12-46 को हम संत करतार सिंह जी, संत निश्चल सिंह जी तथा नारायण सिंह को साथ लेकर बस द्वारा दिल्ली पहुँचे। हीरानंद गुल्लीमाई के यहाँ लोधी कालोनी में रहे। दिल्ली की संगत की सेवा-पूजा लेकर मारवाड़ होते हुए 15-12-46 को हैदराबाद पहुँचे और अपने स्थान निर्मल आश्रम में ही रहे। प्रेमियों की सेवा स्वीकार करके दीवान रामदासजी कराची के लिए लेने आए हुए थे। उनके साथ 30-12-46 को कराची पहुँचे और उनके निवास स्थान में रहकर सत्संग आरंभ किया। इस सत्संग में हैदराबाद, शिकारपुर, कराची तथा

टट्टे की संगत आती रही और सेवा पूजा आदर सत्कारपूर्वक करती रही। मार्च तक कराची रहकर सेठ गुल्लीराम द्वारा उनके पुत्र ईशर की शादी पर बुलाए जाने पर 22 को हैदराबाद आए।

सन् 1947

22-3-47 को गुल्लीराम के बेटे की शादी पर हैदराबाद आए। जोड़ी को चिरंजीवी होने का आशीर्वाद देकर कराची वापस चले गए। दीवान रामदास की बेटी सुंदरी और रत्ना की मँगनी इंदरू और निहाल से हुई। इनकी शादी हुई। इसी अवसर पर सावित्री की शादी भी आतु से हुई। बंबई से डॉ. संत रामदास सुशीला माई बंबई से तथा बड़ों के सेवक दीवान सेवाराम, जमुनादास, देवीदास तथा माई वजिरानी ने प्रेम और श्रद्धा से सेवा की। विवाहित जोड़ी को सिरोपाव तथा आशीर्वाद देकर 24-4-47 को कराची रवाना हुए। 26-4-47 को अमृतसर पहुँचे। कीर्तन सुनाने वाले गुल और कमला माई साथ में थे। गुरुद्वारों की यात्रा की। 27-4-47 को हरिद्वार पहुँचे। स्थान की देख-रेख में लग गए। इस वर्ष अपने काशी वाले स्थान, ज्ञान गुफा की देख-रेख के लिए वहाँ गए। बरसी के अवसर पर वापस कनखल आ गए। इस वर्ष महाराज की बरसी गतवर्षों की भाँति संत-महात्मा तथा भक्तजनों के साथ मिलकर धूम-धाम से मनाई गई।

सन् 1948 दोबारा कोलंबो यात्रा

सेठ कुंदन मल कोलंबो वाले के पुत्र मुन्नीलाल का विवाह सेठ हुंदामल दिल्ली निवासी की पुत्री से होना निश्चित हुआ। सेठ कुंदनमल ने सेठ हुंदामल को हमें साथ लाने को लिखा। इसके अतिरिक्त हमें उन्हीं के साथ लंका आने को कहा। सेठ हुंदामल के लेने आने पर हम नारायण सिंह तथा केशर सिंह को साथ लेकर 1-8-48 को रात की गाड़ी से प्रथम दर्जे का टिकट लेकर यात्रा आरंभ की। दिल्ली पहुँचने पर सेठ रामचंद्र ने सेठ हुंदामल से कहा कि जिस

प्रकार महाराज प्रत्येक बार हमारे यहाँ ठहरते हैं उसी प्रकार इस बार भी हमारे पास ही ठहरेंगे। इसे स्वीकार करने पर हम सेठ रामचंद मिट्ठाराम के ही घर ठहरे। दिल्ली के गुरुद्वारों की यात्रा कर 10-8-48 को फ्रंटियरमेल से रवाना होकर 11-8-48 को बंबई पहुँचे। उसी दिन मद्रास की गाड़ी में बैठकर 13-8-48 को मद्रास पहुँचे । सेठ कुंदनमल का आमंत्रण ताराचंद जी द्वारा पहले ही भेज दिया गया था, मिला और हवाई जहाज की टिकटें रिज़र्व करवा रखी थी सो 14-8-48 को हवाई जहाज से कोलंबो पहुँचे । सेठ कुंदनमल परिवार सहित तथा अन्य भक्त हवाई अड्डे पर मिले। प्रेम और श्रद्धा से आव-भगत की। सेठ कुंदनमल मोटर द्वारा अपने घर ले गया। सत्संग आरंभ हुआ। प्रतिदिन लंका के भक्तजन आने लगे और प्रेम से श्रद्धा-भक्ति पूर्ण सत्संग करने लगे। मुन्नीलाल का विवाह भादों वदी अष्टमी को हुआ। जिस प्रकार सेठ लोग अपने बच्चों का विवाह उत्साह से किया करते हैं, उसी प्रकार कुंदनमल ने भी अपने प्रिय पुत्र मुन्नीलाल का ब्याह (विवाह) बड़े उत्साह और धूम-धाम के साथ किया। श्री गुरुदेव जी की बरसी निकट होने के कारण अधिक समय तक सेठ के पास न रह सके। अतः कुंदनमल ने कार से लंका के सारे कोलंबो शहर की सैर कराई। संगत तथा सेठ कुंदनमल की श्रद्धा-भक्ति और प्रेम को देखकर बड़ी खुशी हुई। गुरु महाराज उन्हें सुख और यश का आशीर्वाद देकर 2-9-48 को हवाई जहाज से ही वापस हुए। जहाज तीन घंटे में मद्रास पहुँचा। सेठ लालचंद, केवलराम, सुखराम, टोपनदास महतानी, द्वारकादास तथा हरदयाल आदि भक्तजन पूजा तथा सत्कार से सेवा कर 12-9-48 तक मद्रास रहकर तथा सत्संग की परिसमाप्ति कर हवाई जहाज द्वारा बंबई आ गए। यहाँ के हवाई अडडे पर सेठ देवीदास तथा अन्य भक्तजन पहुँचे हुए थे। बड़े आदर से सत्कार किया तथा देवीदास मोटर द्वारा अपने घर ले गया। दीवान ताराचंद की धर्मपत्नी चेतीमाई के दोहते की इच्छा अपने पास बैकुला में रखने

की हुई। उसकी प्रार्थना पर हमने वहाँ ठहरना ही ठीक समझा। सभी भक्तजन हमारे पास सैंट्रल तप बैकुला में नित्य ही सत्संग के लिए आते रहे। इन भक्तों के अतिरिक्त सेठ तोलाराम, संतदास, दीवान लालचंद, सेवाराम आडवानी प्रेम से संगत में आते रहे। धन्नामल चेलाराम, मोतीराम, कान सिंह जगत्यानी आदि भी प्रेम से शामिल होते तथा पूजा-सेवा करते थे। भक्तजनों की सेवा-श्रद्धा तथा उनकी पूजा लेते हुए 23-9-48 को बंबई से चलकर बड़ौदा तथा दिल्ली के भक्तजनों की पूजा लेते हुए 25-9-48 को कनखल पहुँच गए। श्री गुरुदेव जी की ग्यारहवीं बरसी का प्रबंध किया। सर्व संत-महात्माओं तथा सद्‌गृहस्थों के साथ मिलकर धूम-धाम एवं उत्साह से मनाई। भिन्न-भिन्न स्थानों से भक्तजन आए थे।

सन् **1949** लखनऊ की ओर

इस वर्ष स्थानों की देख रेख तथा उनके प्रबंध में लगे रहने के कारण कहीं भी न जा सके। अगस्त में सेठ लालचंद के पुत्र प्रीतमदास के ब्याह (विवाह) के अवसर पर ज्ञानी भाई की प्रार्थना पर 14-6-49 को लखनऊ गए। सेठ टहलराम की प्रार्थना पर उनके निवास स्थान पर ठहरे। 17-8-49 को शादी हुई जोड़ी को सिरोपाव तथा आशीर्वाद दिया। ज्ञानी बाई ने परिवार सहित तथा लखनऊ की संगत ने बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से सेवा पूजा की। उनकी सेवा सफल कर 20-8-49 को वापस कनखल आ गए। महाराज की बारहवीं बरसी की तैयारी करने लगे। यह बरसी भी पहले की तरह ही संतों तथा सद् गृहस्थों के साथ मिलकर बड़े प्रेम से मनाई। इस महायज्ञ में भक्तों द्वारा दिए गए धन पदार्थ आदि को सकार्थ किया।

सन् **1950** हरिद्वार कुंभ का स्नान एवं कलकत्ता-यात्रा

डॉक्टर सीताराम दास चेनानी ने बंबई आकर दर्शन देने की प्रार्थना की, तथा किराये के लिए 200 रु. भेज दिए। संत रामदास तथा उनकी पत्नी

सुशीला की प्रार्थना पर 21-2-50 को कनखल से चलकर दिल्ली सेठ रामचंद के पास ठहरे तथा गुरुद्वारों का दर्शन कर पंजाब मेल से बंबई पहुँचे । रास्ते में नासिक में आतुमल, खेमचंद, पपड़ भाई मिले। त्रयंबक में भी स्नान करने को गए। इन स्थानों की यात्रा की। इस यात्रा में संत नारायण सिंह तथा दर्शन सिंह साथ थे। 27-2-50 को बंबई पहुँचे। सारी संगत स्टेशन पर आई हुई थी। मोटर द्वारा हम मैरीनड्राईव पहुँचे तथा संत रामदास की इच्छा पूर्ण की। सारी संगत तथा संत रामदास ने परिवार सहित सेवा की। शिकारपुरी तथा ठट्टा के भक्तों ने बड़े आदर से सेवा की। इस वर्ष हरिद्वार का कुंभ होने के कारण प्रबंध के लिए शीघ्र आना पड़ा। अतः 3-3-50 को बंबई से चलकर सीधे कनखल पहुँच गए।

निर्मल बाग में आकर कुंभ का प्रबंध किया। इस अवसर पर संत महात्मा भी अत्यधिक संख्या में कुंभ-स्नान को आए थे। सद् गृहस्थ तथा भक्त जन भी बहुत अधिक आए थे जिन्होंने गंगा स्नान कर तथा संत महात्माओं की सेवा करके अपने जीवन को सफल एवं पवित्र बनाया। हमने भी सभी संत महात्माओं तथा सद् गृहस्थ सज्जनों का भली प्रकार सेवा सम्मान किया। 13 अप्रैल को कुंभ पर्व का अंतिम स्नान हुआ जिस में शानदार आखिरी शाही जुलूस सभी संप्रदायों के अखाड़ों के निकाले गए जिन की शोभा न्यारी और वर्णनातीत थी। इस स्नान के पश्चात् सभी संत महात्मा तथा सद् गृहस्थ अपने अपने स्थानों को चले गए। हम स्थान की देख रेख सेवा संभाल करते रहे कि गुरुदेव जी की तेरहवीं बरसी आ गई जिसका सुचारू रूप से प्रबंध किया। हर साल की तरह इस वर्ष की बरसी भी गुरुभाई संत महात्माओं तथा महाराज के चरणसेवी सद् गृहस्थों के साथ श्रद्धा पूर्वक मनाई। सभी साधु सज्जन सद् गृहस्थों ने सहर्ष सहयोग दिया।

इस वर्ष सेठ दौलतराम के सुपुत्र नानक चंद का विवाह होना निश्चित हो चुका था जिसके लिए दौलतराम ने कलकत्ता पधार कर वर-वधू को शुभाशीर्वाद

देने के लिए प्रार्थना की और किराये के लिए 400 रु. भेजा। प्रार्थना स्वीकार करके 10-12-50 को चलकर 12-12-50 को कलकत्ता पहुँचे । वहाँ स्टेशन पर सेठ दौलत राम परिवार सहित तथा अन्यान्य प्रेमी जन उपस्थित थे। उनके प्रेम तथा भक्ति को स्वीकार कर कार द्वारा सेठ दौलत राम के घर पहुँचे। उनकी पत्नी जो संत सेवी साध्वी है ने परिवार सहित श्रद्धापूर्वक प्रेम से सेवा की। हमारे साथ संत करतार सिंह जी, संत मानसिंह जी तथा नारायण सिंह थे। परम प्यारे नानक चंद का विवाह कोयंबटूर के सेठ मंधाराम की पुत्री सतीदेवी से होना था। विवाह खूब धूमधाम से सम्पन्न हुआ। हमने जोड़ी को गुरुमर्यादा- नुसार सिरोपाव तथा आशीर्वाद दिया। बंबई से सेठ मुरलीधर मानी की प्रार्थना थी कि कलकत्ता से वापसी पर हमें दर्शन दें। सो उसकी प्रार्थना स्वीकार कर हृदय से बंबई जाने का संकल्प किया।

सन् 1951

8-1-51 को कलकत्ता से बंबई के लिए रवाना हुए। नासिक रास्ते में होने के कारण आतुमल, खेमचंद की प्रार्थना पर वहाँ उतरे तथा त्रयंबक में गोदावरी के स्नान कर 12-1-51 को गाड़ी द्वारा बंबई पहुँचे। बंबई में बोरीबंदर स्टेशन पर सारी संगत स्वागत करने को पहुँची हुई थी। दीवान मुरलीधर मानी एडवोकेट परिवार सहित स्टेशन पर आया हुआ था। अपनी कार में बैठाकर घर ले गया और वहाँ बड़े प्रेम से सेवा करने लगा। ठट्टे की संगत सेवाराम, जमनादास तथा देवीदास ने बड़े प्रेम से सेवा की। कुछ दिन घुमाने के वास्ते मोटर से पूना ले गए। वहाँ महाकालेश्वर तथा पंचाग्नि की यात्रा की। वापस फिर बम्बई आकर मुरलीधर के यहाँ ठहरे। फतहचंद मुखी ने भी हृदय से सेवा की तथा मोटर द्वारा सारे बंबई शहर की यात्रा करवाई। कनखल वापस आने की इच्छा जानकर फतहचंद मुक्खी ने फस्टक्लास की सीटें रिज़र्व करवा दीं। 1-4-51 को बंबई से चलकर दिल्ली आए और रामचंद के पास ठहरे। संगत से मिलकर दिल्ली गुरुद्वारों का दर्शन कर 6-4-51 को कनखल वापस आ गए।

स्थान की देखभाल आरंभ कर दी। मसूरी के स्थान की देखभाल करते हुए महाराज की चौदहवीं बरसी पास आ गई। अतः उसकी तैयारी करने लगे। इस वर्ष भी प्रत्येक वर्ष की भाँति भाई दौलतराम जेठी भाई भी अपने परिवार सहित आए। गुरुदेव जी की यह चौदहवीं बरसी प्रत्येक वर्ष की भाँति गुरुभाइयों संत महात्माओं के साथ मिलकर श्रद्धा पूर्वक मनाई।

इस वर्ष सेठ फतहचंद मुक्खी ने अपने पास बुलाने के लिए प्रार्थना की और 2-11-51 को किराये के लिए 500 रु. का मनीआर्डर भेज दिया। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें अपने आने का पत्र लिख दिया। सेठ भगवानदास ने भी कोलंबो से 1-12-51 को 500 रु. भेज दिया और लंका आकर उनके पास ठहरने की प्रार्थना की। इसी वर्ष सेठ भगवान दास के छोटे भाई लालचंद का ब्याह (विवाह) सेठ दौलतराम की पुत्री चंदा से होना निश्चित हुआ था। अतः भगवानदास ने इस शादी में सम्मिलित होने का आग्रह किया। ब्याह (विवाह) की तिथि भी बहुत पास थी। अतः फतहचंद को लिख दिया कि हम अपने सेवक के विवाह में लंका जा रहे हैं। विवाह के पश्चात् लौटती बार तुम्हारे पास आकर ठहरेंगे। इस योजना के अनुसार 1-12-51 को दिल्ली पहुँचे । सेठ रामचंद्र मिट्ठाराम, बी. लीला राम लेने आए। इन्हें भी भगवानदास ने पत्र तथा किराया भेजा था। अतः यहाँ से मद्रास की गाड़ी में मद्रास जाने को चढ़े। राह में जिस स्थान पर कलकत्ते वाली गाड़ी आकर मिलती है वहाँ ज्ञानी भाई प्रीतमदास जो इसी ब्याह में जा रहे थे मिले, सीटें न मिलने के कारण हम जागपुर उतर गए। प्रेमियों ने बड़े आदर से आव भगत एवं सत्कार किया। अगले दिन सीटें मिलने पर हम फिर मद्रास के लिए रवाना हुए। मद्रास स्टेशन पर सेठ लालचंद, बलराम, सोमराज, आत्माराम, द्वारका दास, धर्मदास तथा सुखराम टोपनदास स्वागत हेतु आकर मिले। सेठ सुखराम अपने बंगले पर ले गए और वहाँ 6-11-51 से 11-12-51 तक रहे। हमारे साथ इस यात्रा में संत करतार सिंह, निश्चल सिंह, नारायण सिंह तथा दर्शन सिंह थे। 11-12-51 को यात्रा संबंधी

कागजात तैयार हो गए। अतः उसी दिन हवाई जहाज द्वारा कोलंबो की यात्रा आरंभ की। कोलंबो के हवाई अड्डे पर लंका की संगत तथा सेठ भगवानदास परिवार सहित स्वागत के लिए उपस्थित थे। श्रद्धा भक्ति से सेठ भगवानदास कार से अपने निवास स्थान पर ले गए। भक्तजनों ने तन मन धन से सेवा की। उनका उत्साह दिन प्रतिदिन बढ़ता रहा। विवाह बहुत ही धूमधाम के साथ हुआ। हमने भी गुरुमर्यादानुसार लालचंद को सिरोपाव तथा आशीर्वाद दिया। सेठ दौलतराम जेठी भाई, गुन्नामल तथा परिवार ने प्रेम से संतों की सेवा की। लंका की सारी संगत की सेवा से संतुष्ट होकर बंबई के भक्तजनों की श्रद्धा भक्ति के वशीभूत होकर वापिस आने का प्रोग्राम बनाया।

सन् 1952

26-1-1952 को हवाई जहाज द्वारा मद्रास वापस लौटे। संगत हवाई अड्डे पर उपस्थित थी। इस बार सेठ लालचंद की प्रार्थना पर उनके पास ठहरे। उन्होंने कार द्वारा मैसूर, बंगलौर, कोयम्बेतूर में घुमाया। तत्पश्चात् सत्संग होने लगा। कुछ दिन मद्रास में निवास कर भक्तजनों को आशीर्वाद देकर 13-2-52 को रेल द्वारा बंबई रवाना हुए। रास्ते में पूना की संगत स्टेशन पर मिली। सेवा सफल कर 15-2-52 को बंबई पहुँचे। स्टेशन पर सारी संगत उपस्थित थी। आव भगत के उपरांत मुखी फतहचंद कार द्वारा अपने निवास स्थान पर ले गया, सत्संग होने लगा। बैकुला सैंट्रल आदि की संगत नित्य आने लगी। पूना की संगत भी आई और प्रेम से पूना ले गई। कुछ दिन पूना में रहकर हम फिर बंबई आ गए। बस्सी भाई, फतहचंद प्रेम से सेवा करते रहे। सत्संग का आनंद बना रहा। सेवक जन सेवा कर अपनी मनोकामनाएं पूरी करते रहे। अपने स्थानों की देखभाल तथा प्रबन्ध करने हेतु हमें वापस आने का प्रोग्राम बनाना पड़ा। सो 6-6-52 को रेल से वापस हुए। राह में एक दिन दिल्ली ठहर कर 13-6-52 को कनखल पहुँच गए। महाराज की पंद्रहवीं बरसी का प्रबन्ध करते रहे। इस बरसी पर कलकत्ता से भाई दौलतराम का परिवार व बंबई, दिल्ली,

पूना, लखनऊ से संगत आई। बरसी धूमधाम के साथ मनाई गई। 1-12-52 को डॉक्टर संत रामदास चेनानी ने 250 रु. किराया भेजकर विनती की कि इस वर्ष बंबई आकर मेरे पास ठहरने की कृपा करें और सत्संग करके प्रसन्नता का रंग लगाएं तथा हमें सेवा करने का अवसर दें। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर 25-11-52 को सीटें रिज़र्व करवाकर हम दिल्ली गए। वहाँ यमुना स्नान कर गुरुद्वारों की यात्रा की। यहाँ हम सेठ रामचंद, मिठूठाराम के पास रहे थे। अगले दिन पंजाब मेल से नासिक पहुँचे । कार द्वारा त्रयंबक स्नानकर वापस नासिक आ गए। भक्तों की भक्ति सफल कर 3-12-52 को बंबई पहुँचे। भक्तजन बोरीबंदर स्टेशन पर उपस्थित थे। सत्कार पूर्वक डा. संत रामदास कार द्वारा अपने निवास स्थान मैरीन ड्राईव ले गए। सत्संग होने लगा, प्रेमीजनों की भीड़ लगने लगी, बड़े उत्साह-श्रद्धा से सेवा करने लगे। सत्संग से आनंदित होकर दीवान धर्मदास ककरी भाई मतसुखानी प्रार्थना कर अपने निवास स्थान माटुंगा ले गए, वहाँ भी सत्संग होता रहा, श्रोतागण सुनकर आनंद से झूमने लग जाते। दीवान दीवानीमल पकौरी भाई हीरानंद आदि भी सत्संग से बहुत प्रभावित हुए और अपने निवास स्थान पर ले जाने की प्रार्थना की।

सन् 1953

13-3-53 से 17-4-53 तक दीवानीमल तथा धर्मदास के निवास स्थानों पर रहकर सत्संग कर सर्व भक्तजनों की मनोकामना पूर्ण कर आशीर्वाद दे माटुंगा से सीटें रिज़र्व कराकर दिल्ली होते हुए कनखल पहुँचे। यहाँ स्थानों की देख-भाल की। महाराज की सोलहवीं बरसी की तैयारी में लग गए। इस बरसी पर भी बड़े-बड़े नगरों से भक्तजन आए। पूर्ण उत्साह एवं धूम-धाम से बरसी मनाई गई। भारत में बन रहे सब से बड़े भाखड़ा-नांगल-डैम को देखने तथा अमृतसर के स्नान की भावना लेकर दीपावली के शुभ-अवसर पर अमृतसर पहुँचे । सरोवर-स्नान कर तथा दीपावली देखकर तरन-तारन, गोइंदवाल तथा खंडूर साहिब की यात्रा कर। स्थानों की यथाशक्ति पूजा करके 10-11-53 को

अमृतसर आ गए। एक दिन वहाँ रहकर सरहिंद फतेहगढ़ की यात्रा करते हुए आनंदपुर पहुँचे । यहाँ के सभी स्थानों के दर्शन कर कीरतपुर तथा बाबा गुरुदित्ता जी के जन्म-स्थान की यात्रा करके भाखड़ा-नांगल गए। भाखड़ा-नांगल योजना को भली प्रकार देखकर आनंदपुर से होते हुए कनखल आ गए।

इन्हीं दिनों निर्मल विरक्त कुटिया की आर्थिक दशा कमजोर होने के कारण संतों को भोजन का कष्ट होता था। अतः उन्हें छः मास का अन्न लेकर दिया, जिससे निर्मल कुटिया निवासी संतों का कष्ट निवारण हुआ और स्थान फिर से उन्नति की ओर बढ़ने लगा। इस वर्ष प्रयागराज का कुंभ होने के कारण वहाँ जाने का कार्य-क्रम बनाया। 17-12-53 को बनारस गए, यहाँ कुछ समय रहकर स्थान ज्ञानगुफा की मरम्मत कराई और सब संतों को भंडारा दिया।

सन् **1954** कुंभ-स्नान

6-1-54 को कुंभ के अवसर पर प्रयाग इलाहाबाद पहुँचे और वहाँ की प्रवेश-शाही (संतों का शाही जुलूस) में सम्मिलित हुए। 11-1-54 को ध्वजा-रोहण उत्सव में 51 रु. ध्वजा की पूजा की, तथा 11 रु. कड़ाह-प्रसाद के लिए दिए। जब तक यहाँ रहे 11 रु. का कड़ाह-प्रसाद नित्य कराते रहे। 12-1-54 को पंच-परमेश्वर निर्मल अखाड़ों को 184 रु.की लागत का कच्चा भंडारा दिया। इसके पश्चात् 769 रु. का पक्का भंडारा पंच को दिया। 155 रु. निर्मल अखाड़े की पूजा की। चंद्र-ग्रहण के कारण फिर वापस बनारस चले गए। प्रयाग में पीली कोठी में ठहरे थे। चन्द्र-ग्रहण बनारस में करके मौनी अमावास्या का स्नान त्रिवेणी-प्रयाग में करने हेतु फिर 1-2-54 को प्रयाग गए। पीली कोठी में ही ठहरे थे। इस अवसर की शाही में 11 रु. दर्शनी पूजा तथा 105 रु. अखाड़े की पूजा की। स्नान करने की अंतिम शाही के चित्र भारत सरकार की ओर से लिए गए थे जो 1955 की सरकारी डायरी में तथा बाद में सिनेमा में, खबरों में तथा खेल में दिखाई गए थे। 6-2-54 को फिर वापस बनारस आए। यहाँ आने पर कोलंबो वाले भगवानदास का पत्र मिला, जिस में लिखा था कि

आढ़ती के पास 1000 रु. का धन भेजा है तथा उसको भी आपका पता दिया है। आप उससे ले लो और प्रार्थना है कि इस वर्ष आप लंका आकर हमें दर्शन देने की कृपा करें और आशीर्वाद देकर कृतार्थ करें। धन मिल गया, उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर हमने लिखा कि कनखल होकर आपके पास आएगे। इसी दौरान दीवान दिवानीमल का पत्र तथा 300 रु. का धन मिला। उन्होंने भी प्रार्थना की कि इस वर्ष बंबई आकर हमारे यहाँ ठहरें और हमें सेवा करने का अवसर प्रदान करें। प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें लिखा कि कोलंबो से लौटते समय आपके पास आकर ठहरेंगे, सत्संग करेंगे। 9-2-54 को कनखल आए। कार्य ठीक ठाक कर 17-2-54 को लंका के लिए चले। दिल्ली होकर वहाँ दर्शन करते एवं सेवकों को आशीर्वाद देते हुए 21-2-54 नागपुर पहुँचे । 19-2-54 को नागपुर से चलकर 21-2-54 को मद्रास पहुँचे। इस यात्रा में हमारे साथ मदन सिंह, नारायण सिंह तथा दर्शन सिंह थे। मद्रास के सभी भक्तजन स्वागत के लिए आए हुए थे-सेठ लालचंद, धर्मदास, परसराम तथा सुखराम महतानी। सुखराम कार पर हमें अपने घर ले गए। पार-पत्र बनने में कुछ समय लगा। सत्संग चलता रहा, भक्तजन आते रहे। अपनी श्रद्धा-भक्ति सफल करते रहे। यहाँ से 7-3-54 को हवाई जहाज से लंका के लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँचने पर हवाई अड्डे पर संपूर्ण संगत आई हुई थी। सेठ भगवानदास परिवार सहित आए हुए थे। सम्मान सत्कार के साथ कार द्वारा भगवानदास के निवास स्थान पर पहुँचे। सत्संग आरंभ किया, संगत अधिक से अधिक संख्या में आने लगी। ''भूखे भक्ति न कीजे, यह माला अपनी लीजे।'' इस वाक्य की कथा पूरे दो माह तक चलती रही। भक्तजन बड़े आनंद एवं श्रद्धा से कथा सुनते रहे और सेवा का लाभ उठाते रहे। भगवानदास के कार द्वारा सारी लंका की तथा वहाँ के बौद्ध मंदिरों की यात्रा कराई। बंबई के सेवकों को सेवा देने का समय निकालने के लिए वापस आने का ख़याल किया। 9-5-54 को हवाई जहाज द्वारा मद्रास आए। सेठ द्वारिकादास कोलंबो से ही हमारे साथ आया था। मद्रास हवाई अड्डे

पर सारी संगत थी। प्रेम से स्वागत किया। द्वारिकादास की प्रार्थना पर उस के स्थान में रहकर सत्संग करने का निर्णय किया। इस सप्ताह मद्रास में सेठ द्वारिकादास के पास रहकर सत्संग करते रहे। भक्तजनों ने तन-मन-धन से सेवा कर पहुँच की अभिलाषा पूरी की। 18-5-54 को मद्रास से रेल द्वारा बंबई पहुँचे। गत वर्षों की तरह प्रेमीजन स्वागत के लिए स्टेशन पर आए हुए थे। बड़े प्रेम-आदर से मिले और हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। दीवान दिवानीमल पर्व निश्चयानुसार कार से अपने स्थान कोलंबो में ले गया और बहुत प्रेम से सेवा सुश्रूषा करने लगा। सत्संग होने लगा, अगस्त तक यहाँ रहकर प्रेमीजनों की सेवा लेते रहे और वे भी प्रसन्नता से सेवाकर अपने मन की अभिलाषाएं पूर्ण करते रहे। ठट्टे की संगत शिकारपुरी, हैदराबाद एवं कराची की संगत की प्रेम भावना पूरी कर 12-8-54 को बंबई से चलकर 15-8-54 को कनखल पहुँचे। यहाँ आकर मसूरी के स्थान की संभाल करने को वहाँ गए। ऋषिकेश जाकर भी डेरे की देख-रेख की। इस वर्ष भी सदा की भाँति कलकत्ता, बंबई, लखनऊ तथा दिल्ली की संगत आई थी। बरसी बड़े हर्षोत्साह के साथ मनाई गई। संगत ने प्रसन्नता के साथ सेवा-पूजा की। 11-12-54 को डॉक्टर संत रामदास चेनानी का पत्र 250 रु की रकम के साथ मिला। उन्होंने पत्र द्वारा बंबई आकर सेवा का अवसर देने की प्रार्थना की थी। हम जाने को तैयार ही हुए थे पर महंत करतार सिंह जी का 8-11-54 को स्वर्गवास हो जाने के कारण कुछ समय के लिए रुक जाना पड़ा। उनकी अमानत में से ही उनका सतारीआ (सतरहीं) 24-11-54 को मनाया गया, अखंड पाठ और पक्का भंडारा किया गया। 1-12-54 को सीटें रिज़र्व कराके रेल द्वारा दिल्ली नासिक के सेवकों की सेवा लेते हुए 3-12-54 को बंबई पहुँचे। वहाँ स्टेशन पर वहाँ की समस्त संगत आई हुई थी। आदर सत्कार के बाद कार द्वारा डॉ. संत रामदास अपने घर ले गया। परिवार सहित प्रेम से सेवा करने लगा। सत्संग नित्य होने लगा जिसमें श्रोतागण अधिकाधिक संख्या में आने लगे और सत्संग

कर तथा सेवा कर पुण्यार्जन करने लगे। सत्संग से प्रभावित होकर शिकारपुरी सेठ लछमनदास ने अपने निवास स्थान पर ले जाने की शुभाभिलाषा व्यक्त की। हमारे कहने पर उसने डॉ. संत रामदास से पूछा–उन्होंने कहा कि पूना से वापस आने पर अपने यहाँ ले जाना।

सन् 1955

13-2-55 को गुलाब चेनानी के पास पूना गए। वहाँ की संगत ने स्वागत किया तथा सेना के मध्य रहे। खडकवासला में गुलाब भवनानी के यहाँ भी गए। सत्संग में भक्तजनों के अलावा सेनाधिकारी भी आने लगे और प्रेम से सत्संग करने लगे। 9-3-55 को सभी पूनावासी भक्तों की सेवा लेकर तथा सत्यधर्म का उपदेश देकर बंबई वापस आए। लछमनदास ज्ञानचंद स्टेशन पर ही संगत के साथ मिले। कार द्वारा अपने निवास स्थान पर ले गए। सत्संग होने लगा, बंबई की संगत ने यहाँ आना आरंभ कर दिया।

हमने अपना ऑपरेशन करवाना था जो लछमनदास ने बड़े प्रेम और उत्साह से करवाया। सारा काम घर पर ही हुआ। हृदय खोलकर व्यय किया। सेवा से प्रसन्न किया, उसकी आंतरिक अभिलाषा पूरी हुई। ऑपरेशन के ठीक होने पर सत्संग की समाप्ति की गई। 24-6-55 को कनखल के लिए वापस हुए। सभी सत्संगी स्टेशन पर छोड़ने के लिए आए। बड़े सत्कार के साथ विदा किया गया। एक दिन रहकर कनखल वापस आ गए। स्थान के प्रबंध का संचालन करने लगे। मसूरी भी गए। स्थान की देख-रेख की। महाराज की अठारहवीं बरसी पास आ चुकी थी। अतः उसका प्रबन्ध किया। इस वर्ष भी प्रेमीजन दूर-दूर से आए थे। भाई दौलतराम का परिवार आया। बड़े उत्साह प्रेम से संत-महात्माओं तथा भक्तजनों के साथ बरसी मनाई।

सन् 1956

4-7-56 को सेठ परमानंद को कुमला महतानी ने पत्र तथा 200 रु. की रकम भेजी और चतु के ब्याह (विवाह) पर कलकत्ते आने की प्रार्थना की। अतः

15-7-56 को कनखल से सीटें रिज़र्व कराकर 17-7-56 को कलकत्ता पहुँचे। वहाँ स्टेशन पर सेठ परमानंद, भाई दौलतराम, टोपनदास आदि भक्त स्वागत के लिए आए हुए थे। हमारे साथ नारायण सिंह तथा दर्शनसिंह थे। चतु का ब्याह बड़े उत्साह एवं धूम-धाम के साथ हुआ। जोड़ी को चिरंजीवी एवं सौभाग्यशाली होने का आशीर्वाद दिया। 11-8-56 को सर्वकार्य सम्पन्न कराकर बनारस आए और वहाँ संतों को पक्का भंडारा देकर 17-8-56 को कनखल आए। यहाँ वासदेव महतानी ने अपने निवास स्थान पर चलकर रहने की प्रार्थना की। एक सप्ताह लखनऊ रहे। भाई टहलराम तथा लखनऊ के अन्य भक्तों ने श्रद्धा से सेवा की। 26-8-56 को कनखल वापस आ गए। श्री पूज्य महाराज की उन्नीसवीं बरसी की तैयारी आरंभ की। भाई दौलतराम का परिवार इस वर्ष भी आया और बड़े श्रद्धा-प्रेम से बरसी में शामिल हुए। बरसी धूम-धाम से मनाई गई। संत-महात्माओं तथा सद्गृहस्थों ने बड़े प्रेम से भाग लिया।

महाशोक

भाई दौलतराम का परिवार बरसी के बाद जैसे ही कलकत्ता वापस गया कि पहुँचने के कुछ ही दिनों बाद भाई दौलतराम का स्वर्गवास हो गया जिसका जेठी भाई को बहुत अधिक दुःख हुआ। उनके हृदय को शांति एवं धैर्य देने के लिए हमें दोबारा फिर कलकत्ता जाना पड़ा। 15-12-56 को यहाँ से चलकर 17-12-56 को कलकत्ता पहुँचे। स्टेशन पर स्वागत के लिए भक्तजन आए हुए थे। हम कार द्वारा निवास स्थान पर पहुँचे। सत्संग, पाठ, उपदेश आरम्भ किया, भाई को शान्ति मिली।

सन् 1957

जेठी भाई को धैर्य देकर 26-1-57 को गाड़ी से चलकर सीधे कनखल पहुँचे। इस वर्ष आयु अधिक होने के कारण, स्वास्थ्य लाभ हेतु यहाँ आश्रम में ही रहे, अन्यत्र कहीं नहीं गए। श्री पूज्य महाराज की बरसी भी बड़े प्रेम-श्रद्धा से सद्गृहस्थ एवं संत-महात्माओं के साथ मिलकर मनाई। यह बीसवीं बरसी थी

महाराज की।

दीवान धर्मदास किंकरी माई मनसुखानी की पुत्री की शादी पर बुलाया पर जब जाने में विवशता बताई तो उन्होंने कहा-अपने स्थान पर अपना संत भेज दीजिए। अतः हमने नारायण सिंह को भेजा। वह वहाँ सम्मिलित होने के लिए 21-3-58 को यहाँ से रवाना होकर 29-3-58 को शादी में शामिल हुए। मेरे द्वारा भेजा गया बखर जोड़ी को दिया गया तथा उन्हें आशीर्वाद दिया। बंबई में सत्संग कर तथा सेवा-पूजा ले 15-5-58 को वापस आए। मेरे अस्वस्थ होने पर महंत मान सिंह जी कुशल पूछने व देखने के लिए आए और यहीं मेरे पास कनखल में रहे। दुर्भाग्य हमारा कि 24-7-58 को उन्हें अधरंग (पक्षाघात) हो गया। उनकी चिकित्सा सुचारू रूप से आरंभ कर दी गई। 12-9-58 को दीवान किशनचंद भम्भीमाई गिदवानी ने मन्नु के विवाह पर दर्शन देने तथा आशीर्वाद देने के लिए आने की प्रार्थना की और 200 रु. किराये के लिए भेज दिया। अतः 21-9-58 को बस द्वारा दिल्ली पहुँचे। अड्डे पर किशनचंद के अलावा रामचंद तथा दिल्ली की संगत आई हुई थी। ब्याह के कारण अधिक मेहमानों के आ जाने से किशनचंद के पास ठहरकर रामचंद बी. लीलाराम के यहाँ ठहरे। ब्याह धूम-धाम से हुआ, हमने बखर तथा आशीर्वाद जोड़ी को दिया। 26-9-58 को दिल्ली की संगत की सेवा स्वीकार कर कनखल आ गए तथा महाराज की 21वीं बरसी की तैयारी आरंभ कर दी। समय पर संत-महात्माओं के साथ मिलकर धूम-धाम के साथ बरसी मनाई। सेठ मिट्ठाराम दिल्ली वालों के पुत्र का ब्याह होना था जिस पर उन्होंने आने की प्रार्थना की तथा किराया भेजा। इस अवसर पर पहुँचने के लिए 22-11-58 को बस से दिल्ली गए। यहाँ की संगत ने बड़े उत्साह से आदर-सत्कार किया। ब्याह होने पर जोड़ी को बखर तथा चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया। मिट्ठाराम ने भी प्रेम-आदर से सेवा की। 1-12-58 को सब की सेवा लेकर कनखल वापस आ गए।

सेठ लछमनदास ज्ञानचंद ने अपने पुत्र गिरधारी लाल की शादी पर आकर आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। अतः उक्त अवसर पर पहुँचने के लिए 8-12-58 को नारायण सिंह तथा दर्शन सिंह को साथ लेकर बंबई रवाना हुए। 10-12-58 को रास्ते के भक्तों की सेवा स्वीकार करते हुए बंबई पहुँचे। सभी सेवक लोग बंबई सेंट्रल स्टेशन पर आए हुए थे। स्वागत सत्कार के पश्चात् कार द्वारा लछमनदास के निवास स्थान पर पहुँचे। गिरधारीलाल का ब्याह 5-12-58 को खूब धूम-धाम तथा उत्साह से हुआ हमने भी गुरु मर्यादानुसार परख तथा शुभ-आशीर्वाद दिया। सत्संग होने लगा।

निर्मल पंचायती अखाड़े के श्री महंत पंडित सुच्चा सिंह जी ने त्रयंबक में नया मकान बनवाया था, उसके उद्‌घाटन हेतु हमारे पास बंबई आए और त्रयंबक चलने के लिए प्रेरणा दी।

सन् 1959

31-1-59 को विरक्त निक्का सिंह जी, नारायण सिंह, दर्शन सिंह को साथ लेकर कार द्वारा त्रयंबक पहुँचे। वहाँ श्री गुरु ग्रंथ साहिब का अखंड-पाठ करवाया तथा गुरुग्रंथ साहिब भवन में स्थापित किए। जुलूस निकाला तथा समष्टी भंडारा किया। अखंड-पाठ तथा भंडारे का व्यय 1152 रु. हुआ। 3-2-59 को वापस लछमन दास के पास बंबई आ गए।

विरक्त जी ने दक्षिण के तीर्थों की यात्रा नहीं की थी किंतु वे करना चाहते थे। इस उददे्श्य का पता लछमनदास को लगा, उन्होंने 1000 रु. का खर्च देकर यात्रा के लिए कहा, पर विरक्त जी ने 500 रु. ही लिया, बाकी वापस कर दिया। विरक्त जी दर्शन सिंह को साथ लेकर यात्रा के लिए गए। खर्च के लिए कुल रकम दर्शन सिंह के पास ही रही।

जगन्नाथ रामे वर तथा और प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों की यात्रा करते हुए कलकत्ता पहुँचे। वहाँ लछमन दास के पुत्र अंबु के पास ठहरे। उसने भी बड़े आदर-सत्कार से सेवा की। पटना की यात्रा कर दर्शन सिंह हमारे पास आ

गया। विरक्त जी राजगढ़ आदि की यात्रा करने के लिए रुक गए।

सेठ देवीदास डेवनमल बजीरानी की इच्छा हमें अपने घर ले जाकर सेवा करने की हुई। हमारे कहने के अनुसार उन्होंने सेठ लछमन दास से आज्ञा माँगी। उससे आज्ञा लेकर 8-2-59 को संतों सहित हमें अपने निवास स्थान पर ले गए। सत्संग यहाँ भी होने लगा, संगत आने लगी।

29-3-59 तक यहाँ रहकर सेवकों की सेवा-पूजा लेकर और उन्हें आशीर्वाद देकर कनखल वापस हुए। राह में भक्तजनों से परस्पर सद्व्यवहार से संतुष्ट होकर 31-3-59 को कनखल पहुँचे। कनखल में महंत मान सिंह जी की सेवा संभाल और लगन के साथ उनकी दवा-बूटी कराते रहे। ऋषिकेश, मसूरी तथा बनारस के स्थानों की देख-रेख की। श्री पूज्य महाराज की 22वीं बरसी की तैयारी की। समय पर संतों, प्रेमी भक्तजनों सहित श्रद्धापूर्ण रीति से मनाई। इस वर्ष भी जेठी माई मंघाराम अपनी पत्नी मंघी के साथ आए थे। इस वर्ष इस के पश्चात् कहीं नहीं गए।

❑

तरंग 58

सन् 1960 महंत मान सिंह जी का बैकुंठवास

संत मान सिंह जी अति निर्माण, नम्र, निष्कपट एवं सर्वजन हितकारी अतएव सर्वप्रिय महापुरुष थे। अतः सर्व महात्मा गुरु-भाई उनकी दवा-दारू की बहुत चिंता रखते थे। सब की मनोभावना थी कि उन्हें किसी किस्म का कष्ट न होने पाए। हर समय एक-दो व्यक्ति हाथ जोड़कर सेवा में हाजिर रहते थे पर फिर भी उन्हें असाध्य रोग का जो स्वाभाविक कष्ट था उसे कौन दूर कर सकता था। बहुत इलाज किया पर सब व्यर्थ। कोई दवा कारगर साबित न हुई। शरीर हृदय और श्वास प्रतिपल क्षीण होते चले गये। उनकी दशा अत्यंत दयनीय हो गई थी पर क्या कर सकती थी शक्तिहीन विवश जीवों की दया? आखिर मेहरबान मौत ही उन पर मेहरबान हुई। दयालु काल भगवान ने उन्हें प्यारे पुत्र की तरह गोद में उठा लिया। 17-2-60 को वे इस फानी दुनिया को अलविदा कह गए।

सवेरे आठ बजे थे, सर्व संत समाज सम्मिलित था। इस दर्द विछोड़े की घड़ी में आँखें डबडबा आयीं गुरु-भाइयों की। जब उन्हें बिना मुहूर्त के गुरु-भाई की डोली को उठाना पड़ा। जुलूस शुरू हुआ, बैंड बाजे की स्वर-लहरी करुणा की वेदना बिखेर रही थी, कनखल के बाजारों में। अन्ततः पुण्यतोया जगदम्बा गंगा की गोद में उन्हें जल-समाधि दे दी गई। वापस आकर महंत आत्मा सिंह जी व गुरु-भाइयों ने श्री अखंड पाठ का शुभारम्भ किया और सात पाठ एक रस किए गए। पाठों की समाप्ति 27-2-60 को हुई। पाठों की समाप्ति पर सज्जन जनों ने भरे दिल से श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। बिछोड़े के असहाय दर्द को हल्का करने

के लिए महंत आत्मा सिंह व गुरुभाइयों की ओर से समष्टि भंडारा किया गया। सर्व समागत सज्जनों को सत्कार पूर्वक दक्षिणा दी गई।

इन सब का व्यय निम्नलिखित अनुसार हैः-

497 रु० पाठियों की पूजा।

1203 रु० 58 पाठियों को कपड़ा दिया।

1200 रु० दक्षिणा संतों को भंडारा में।

1336 रु० भंडारे पर व्यय हुआ।

4236 रु० 58 कुल खर्च हुआ।

इस अवसर पर महंत आत्मा सिंह जी के भातृ-प्रेम और उदारता की समाज में बहुत प्रशंसा हुई।

श्री महाराज की तेईसवीं वर्षी प्रत्येक वर्ष की भांति संत महात्माओं तथा श्रद्धालु भक्तजनों के साथ मिलकर श्रद्धा पूर्वक मनाई। प्रेमीजनों ने सेवा-पूजा कर अपनी मनोकामना पूर्ण की। 16-11-60 को सेठ देवीदास डेवनमल ने अपने निवास स्थान पर बुलाकर सेवा का अवसर देने की प्रार्थना की तथा किराये के लिए 300 रु. भेज दिये। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर 25-11-60 को कनखल से चलकर रास्ते में भक्तजनों की सेवा लेते हुए 27-11-60 को बंबई सैंट्रल स्टेशन पर पहुँचे। संगत ने बड़े प्रेम से स्वागत किया। कार द्वारा बांदरा के देवीदास के निवास स्थान पर पहुँचे। सत्संग होता रहा। 24-12-60 को गुरु मंदिर के अधिकारियों की प्रेरणा से वहाँ गए,दर्शन किया। पाठ की समाप्ति पर गुरु-भगवान को भोग लगाया। संगत ने दर्शन किये। बम्बई के सेवकों के विवाह आदि अवसरों पर वर-वधू को बखर तथा आशीर्वाद देते रहे।

सन् 1961

लखनऊ में विवाहों में उत्सवों की फुलझड़ियाँ

11-1-61 को लखनऊ वाले रामचंद खुशालदास के बेटे की शादी पर गए, बखर एवं आशीर्वाद दिया। 15-1-61 को मोहन सिंह-स्वरूप सिंह आडवानी

की पुत्री शकुंतला का ब्याह गुरु-मंदिर में हुआ। जोड़ों को बखर तथा आशीर्वाद दिया। 23-1-61 को इंद्र संहानी कृपाल दास के बेटे का ब्याह हुआ, बखर तथा आशीर्वाद दिया। 29-1-61 को देवीदास के बेटे किशनचंद का विवाह फतेहचंद सेवाराम की पुत्री निमी से हुआ। महाराज ने बखर तथा सुभागी होने का आशीर्वाद दिया। किशन मलकानी और रुकमा, देवीदास से आज्ञा लेकर आठ दिन के लिए नारायण सिंह तथा दर्शन सिंह को अपने निवास स्थान पर ले गए। प्रेम से सेवा की। 2-2-61 से 9-2-61 तक किशन के घर तथा 9-2-61 से 23-2-61 तक भगवानदास सेवानी के निवास स्थान पर रहे। सेठ भगवानदास उनकी माता कुलमी माई तथा उनकी स्त्री ने प्रेम से सेवा की। 23-2-61 से 10-3-61 तक किशनचंद संतदास के घर रहे। सत्संग होता रहा। 10-3-61 को पहुँच, माई के देवर के बेटे का विवाह हुआ। जोड़ी को बखर तथा आशीर्वाद दिया। 10-3-61 को फिर देवीदास के पास बांदरा में आ गये। 18-3-61 को दीवान जे. बी. किशनचंद आडवानी आया और प्रेम से सेवा करने लगा। हीरानंद मोहनी ने भी बड़े आदर सत्कार से सेवा की।

14-4-61 को सेठ किशनचंद मोटमल कोलम्बो वालों के बेटे लछमनदास का ब्याह हुआ। जोड़ी को बखर तथा आशीर्वाद दिया। किशन मलकानी का विवाह इंदिरा के साथ हुआ। उन्हें भी बखर तथा आशीर्वाद दिया।

बम्बई ठट्टे की संगत, शिकारपुरी, कोलम्बो, पूना तथा दिल्ली की संगत ने बड़े आदर सत्कार से सेवा और पूजा की। उन्होंने प्रेम से सेवा कर अपने मन की अभिलाषा पूरी की। सबकी भक्तिपूर्ण सेवा-भेंट स्वीकार करके 22-4-61 को बम्बई से चलकर रास्ते में बड़ौदा तथा दिल्ली के सेवकों की सेवा लेते हुए 24-4-61 को कनखल निर्मल बाग पहुँच गए।

इस वर्ष भी आपने अपने गुरुदेव बाबा बुड्ढा सिंह महाराज की चौबीसवीं वर्षी धूमधाम के साथ मनाई। ❑

तरंग 59

पूर्ण चंद्रोदय

जब से सृष्टि का प्रारंभ हुआ है तभी से प्रकृति के नियमानुसार एक वस्तु के गुजर जाने के बाद उसके स्थान की पूर्ति के लिए दुसरा पूरक वस्तु तुरंत आ जाती है। काली रात के अंधेरे को छिन्न-भिन्न करती हुई उषा पदार्पण करती है। उसके बाद रक्ताभ सूर्य सुनहरी किरणों का जाल धरातल पर बिछा देता है या यों कहिये कि प्रकृति गृहिणी के विशाल प्रांगण की हर एक वस्तु पर सोने की झाल-सी फेर देता है। तदनंतर तीव्रतर किरणों से विश्व के हर कोने में छिपकर बैठे हुए अंधकार रूपी काले दैत्य को मार भगाता है। जीव-जंतुओं की आँखों को प्रकाश देता है। रात की सर्दी से जकड़े हुए शरीरों को गर्मी देकर चुस्ती प्रदान करता है। अपने प्रखर प्रताप से संसार को संतप्त करता हुआ आखिर अस्ताचल की गहरी गुफा में जा गिरता है। सूर्यास्त के बाद प्रकृति स्व-नियमानुसार सूर्य के स्थान-पूर्ति के लिए चाँद को भेजकर नई दुनिया को उजाला प्रदान करती है। पूर्ण चंद्रोदय से संतप्त धरातल को शांति मिलती है। श्रम-क्लांत मेहनतकशों को राहत मिलती है। बस इसी प्रकार यह सिलसिला जारी रहता है। इसी नियम के अनुसार संसार में एक दूसरे के बाद महापुरुष आते-जाते रहते हैं।

आतस दुनीया खुनक नामु खुदाइआ। (पन्ना **1291**)

गुरु नानक के इस वचनानुसार तापत्रयी के ताप की आग से जल रही दुनिया को प्रभु के नाम-अमृत की शीतल धारा बहाकर शांति प्रदान करते हैं।

प्रकृति का यह नियम यहाँ पर भी लागू होता है। महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी

प्रबल प्रतापी सूर्य के समान तेजस्वी थे। उनका इतना प्रभाव था कि किसी को उनके सामने ऊँची साँस लेने का साहस नहीं होता था। यहाँ तक कि उनकी जान लेने के लिए गए खूँखार व्यक्तियों को उनके सामने आते ही दुम दबाकर छिप जाना पड़ा था। मेरे मित्र म. बसंत सिंह जी को इन क्रूर व्यक्तियों ने खुद बताया था कि हम उन्हें मारने के लिए गये पर उन्हें देखते ही हमें इरादा बदल देना पड़ा और वापस लौट आए।

कुदरत के कानून के मुताबिक इस शहंशाह फकीर ने जब अगली दुनिया के लिए सफर किया या यों कहिये कि धरातल के इस सूर्य का तेज जब अनंत महातेज में लीन हो गया तो संतप्त संसार को शांति प्रदान करने के लिए पूर्ण चंद्रोदय के रूप में महाशांत आत्मा, महंत आत्मा सिंह जी का आविर्भाव हुआ। आपने धर्म-प्रेमी भक्तजनों के लिये भक्ति-ज्ञान और धार्मिक विचारों की निर्मल गंग-धार को बराबर जारी रखा। भक्तजनों के हृदय-मंदिर को अध्यात्म-ज्ञान का दीप जलाकर आलोकित करते रहे। आपके मुखारविंद से भक्तिभाव की ज्ञान-गंभीर बातों को सुनकर प्रेमीजनों के मन-मंदिर आनंद से परिपूर्ण हो जाते और उन्हें शांति मिलती।

ज्यों-ज्यों आपकी आयु बढ़ती गई त्यों-त्यों प्रभु-चरणों में प्रेम और परोपकार-वृत्ति प्रबल होती गई। दीन-हीन और दुःखी-दरिद्रों को देखकर आपका हृदय व्याकुल हो उठता था। वे उनके दुःख-दर्दों को देखकर अधीर हो जाते थे। वे अपने प्यारे प्रभु से विनय करते कि हे प्रभु! अगर उन दुखियों के तमाम दुखों को मैं ही भोग लूँ और वे बेचारे दुख-मुक्त होकर असीम सुख और अलौकिक आनंद का अनुभव करें तो कितना अच्छा हो। दयानिधे! कितना संतोष मिले मेरी अधीर आत्मा को।

यहाँ तक उक्त महापुरुष का स्वयं गुरुदेव सिंह बी.ए. के हाथ से लिखवाया हुआ जीवन कुछ संशोधन और संवर्धन के साथ लिख चुके हैं। अब आगे उन्होंने कुछ नहीं लिखा। अतः हम उनकी लिखी डायरियाँ और बहीखाते से जो कुछ

उपलब्ध हो सका या उनके शिष्यों से सुना और कुछ आँखों-देखा जीवन लिखने का यत्न करेंगे।

बंबई, बड़ौदा और दिल्ली की यात्रा कर 24 दिसम्बर सन् 1961 को आप कनखल पहुँच गए। आगे वे इस वर्ष कहीं नहीं गये। अपने स्थानों की देख-रेख, मरम्मत व नव-निर्माण में लगे रहे और शिष्यों को साधना की त्रुटियाँ बतलाकर उन्हें सावधान करते रहे कि देखना कभी साधना से प्रमाद न करना। सेवा-सत्संग, स्वाध्याय, सिमरन से उदासीन मत हो जाना। ईर्ष्या-मद-मत्सर मोहनी माया की ओर से जागरूक रहकर देखते रहना कि कहीं किसी खिड़की से वे भीतर न घुस आये।

इस वर्ष भी आपने गुरु-भाइयों और प्रेमीजनों के साथ मिलकर अपने गुरुदेव की चौबीसवीं वर्षी अति उत्साह और श्रद्धा-पूर्वक मनाई। इस वर्ष विरक्तवर श्रीमान् पंडित निक्का सिंह जी, उनके शिष्य गोपाल जी, मुनि जी, भिक्षु जी आदि एवं ज्ञानी बिशन सिंह जी क्रीट, पंडित रघुवीर सिंह जी शास्त्री संतपुरा, निर्मल पंचायती अखाड़ा के श्री महंत पंडित सुच्चा सिंह जी और इन पंक्तियों का लेखक तथा मोहनी बाई की कीर्तन-मंडली आदि शामिल हुए। वक्ताओं ने अति प्रेम से श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। षट्-दर्शन साधु-समाज को पक्का भंडारा दिया गया।

सन् **1962** कुंभ मेला हरिद्वार

सत्रह (17) फरवरी, सन् 1962 को जेठी बाई कनखल पहुँची। उसने प्रार्थना की कि 12 मार्च को मैंने अपनी माता के निमित्त अखंड पाठ कराने का कार्यक्रम बनाया है अतः आपके चरणों में विनीत प्रार्थना है कि आप उक्त अवसर पर अवश्य पधारिये, किराये के लिये उसने 300 रुपया निकाल कर चरणों पर रख दिए, पर महाराज ने रुपये वापस करते हुए विवशता व्यक्त की क्योंकि इस वर्ष हरिद्वार का कुम्भ पर्व है अतः इस वर्ष हम कहीं नहीं जा सकते।

बहुत सा सामान जुटाना है और अखाड़े के काम में सहयोग देना है। बहुत साधु महात्मा और प्रेमी भक्त भी आएंगे, उन सब की सेवा संभाल का बहुत बड़ा काम है। उस काम में अभी से जुट जाएंगे तभी इस महान पर्व को सफलता पूर्वक मना सकते हैं। तब जेठी बाई और उसके साथ आये भक्तों ने आपसे पूछा कि महाराज! कुंभ का अर्थ क्या है और इसका प्रारंभ कब हुआ ? तब आपने कहा कि इसका ऐतिहासिक प्रमाण तो कहीं नहीं मिलता यानी जो इतिहास की परिभाषा के अंतर्गत आता हो। किसी ऐतिहासिक पुस्तक में इसका कहीं उल्लेख भी नहीं है। हां ! अति प्राचीन पुराणों में इसका वर्णन इस प्रकार है-

अति प्राचीन काल में देवता और दैत्यों ने मिलकर समुद्रमंथन किया। इस काम के लिए मंदराचल पर्वत को मथनी और वासुकी नाग को नेत्रा (मथनी को इधर उधर विलोडन करने की रस्सी) बनाया था। समुद्र मन्थन से चौदह रत्न निकले। उन चौदह रत्नों में एक अमृत और शराब थी। देवता स्वयं अमृत लेना चाहते थे और दैत्यों को उससे वंचित रखना चाहते थे। तो दैत्य अड़ गए और युद्ध के लिए तैयार हो गए तो भगवान विष्णु ने मोहनी रूप बनाया और नृत्य गान करने लगे। बस दैत्य मोहनी के संगीत नृत्य पर मोहित हो गए। इस मंत्र-मुग्ध की अवस्था में, इस निराली मस्ती में उन्हें शराब पिला दी गई और अमृत घट को छिपा लिया गया। जब दैत्य होश में आए तो उन्हें देवताओं के कपट का पता चला और इस अमृत पूर्ण कुंभ के लिए देव-दैत्य संग्राम छिड़ गया। इसी दौरान देवराज का पुत्र जयंत अमृत कलश को लेकर भाग निकला। स्वर्ग की ओर भागते हुए जयंत ने थक कर चार स्थानों में विश्राम किया। वे स्थान थे नासिक, उज्जैन, प्रयाग और हरिद्वार। इन स्थानों में कुंभ के रखने के कारण यहाँ अमृत की कुछ बूँदे गिरीं, वहाँ-वहाँ कुंभ का मेला लगने लगा। किसी पुराण में जयंत की जगह गरूड़ का नाम आता है कि वह अपने मजबूत पंजों में कुंभ को पकड़ कर ले गया था।

कुंभ कब और कहाँ-कहाँ होता है ?

बृहस्पति देवताओं के गुरु हैं। अतः वे बुद्धि के और वृद्धि के ग्रह माने जाते हैं। बृहस्पति एक राशि से दूसरी राशि में बारह वर्ष के बाद प्रवेश करते हैं। वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ स्थाई राशियां हैं। जिस काल में बृहस्पति का प्रवेश इन स्थिर राशियों में होता है तो कुंभ के योग से कुंभ का पावन पर्व माना जाता है। उसे कुंभ मेले का नाम दिया जाता है। कुम्भ के चार मेले होते हैं। बृहस्पति जब माघ में कुंभ राशि में जाता है तब प्रयाग में कुंभ मेला लगता है। बैशाख मास में बृहस्पति का प्रवेश वृष राशि में होता है तो भागीरथी गंगा के तट पर हरिद्वार में द्वितीय कुंभ होता है। सिंह राशि में प्रवेश के अवसर पर नासिक में तीसरा कुंभ माना जाता है और चौथा उज्जैन में कुंभ मेला होता है।

इसी प्रकार चार नदियों के किनारे चार कुंभ मेले लगते हैं। वेद शास्त्रों या ऐतिहासिक ग्रंथों में इनका कहीं उल्लेख नहीं किया गया है परंतु पुराणों में वर्णित है। सब संप्रदायों ने इनको पवित्र पर्व मान लिया है और यह भी मानते हैं कि इन पावन पर्वों पर स्नान दानादि करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। पाप धुल जाते हैं। जल परम पवित्र है। जल जीवों का जीवन है अथवा जीवों को जीवन प्रदान करने वाला महारसायन है। जल स्वास्थ्य वर्धक है। जल जीवित और मृत व्यक्ति के लिये कल्याणकारी है। गुरु नानक देव का वचन है-

मुइया जीवदिआ गति होवै जां सिरि पाईऐ पाणी।। (पन्ना **150**)

वैसे तो समस्त जल पवित्र, पावन, स्वास्थ्यकर और सुखदाई है, शान्तिप्रद है, पर नदियों का जल तो अति महत्त्व पूर्ण है। अत्यधिक गुण सम्पन्न हैं। नदियाँ चाहे वे किसी ओर बह रही हों सभी मानव के लिए कल्याण कारिणी हैं-पतित पावनी हैं, जगजननी हैं। मत्स्य पुराण में कहा है-

सर्वाः पुण्य जलाः पुण्याः सर्वगाश्च समुद्गाः।।
विश्वस्य मातरः सर्वः सर्वा पाप हराः शुभाः।।

विशेष कर निम्नलिखित नदियाँ अति पूज्य हैं-

यथा–

गंगा, सिंधु, सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा।।
कावेरी सरयु महेंद्र तनया चर्मणवती वेदिका।।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी, ख्यातगमा गंडकी।।
वरुणा तापहरा महासुरनदी सर्वा शुभं कारिणी।।

ऊपरि लिखित सभी नदियों का जल श्रेयस्कर है। पर गंगा जल की महिमा तो वर्णनातीत है। कोटिशः श्रद्धालुओं के लिए गंगा जल अति पवित्र और उपादेय वस्तु है। गंगा तीर निवासी कई महात्मा गंगा जल के अतिरिक्त जल ग्रहण नहीं करते। गंगा जल पान से ही वे मोक्ष पद की प्राप्ति मानते हैं। बोतलों में भरकर रखा हुआ गंगा जल कभी दूषित नहीं होता। इसी कारण भगवान वेदव्यास ने हर पुराण में गंगा जी का मुक्त कंठ से यशोगान किया है–

यत्र गंगा महा भागा, स देशः सर्व लोकानां।।
सिद्ध क्षेत्रं विज्ञेयं, गंगातीर समन्वितम्।।

गंगातीर संलग्न देश सब के लिये सिद्धि प्रद क्षेत्र है। इसी से गंगातीर पर जगह-जगह तीर्थ स्थान बने हुए हैं।

तीर्थ स्थानों में किया हुआ जप, तप, पुण्यदान विशेष फलदायी होता है। गुरु तेगबहादुर जी ने कहा है कि हरिभजन और तीर्थ सेवन के बिना मानव जीवन निष्फल है। यथा

ना हरि भजे न तीरथ सेवे चोटी कालि गही। (पन्ना **631**)

इत्यादि। गुरु तेगबहादुर जी ने तीर्थों में जाकर दान पुण्य आदि भी भरपूर मात्रा में किए थे। आप जब प्रयाग पधारे तो वहाँ गंगा के समान दान की नूतन धारा बहा दी। आपकी आदर्श तीर्थयात्रा के संबंध में स्वयं श्री गुरु गोविंद सिंह जी महाराज ने सुंदर शब्दों में लिखा है–

मुर पित पूरब कियसि पयाना।। भाँति-भाँति के तीरथि नाना।।
जब ही जात त्रिबेणी भए।। पुंन दान दिन करत बितए।।

इत्यादि वचनों से गुरु महाराज ने पुण्यदान का विधान किया है। पुराण शास्त्रों में तीर्थों की महिमा का बहुत ही रुचिकर वर्णन किया गया है। यथा ही-

तीर्थाणां सर्दशं नास्ति शोधनं पाप कर्मणाम्।।
नहि तीर्थाणां-पवित्रमिह विद्यते।।

पाप कर्मों को धोने के लिए तीर्थ-सेवन के समान अन्य कोई साधन नहीं है। तीर्थ-जल के समान अन्य कोई वस्तु मन को पवित्र करने वाली नहीं है।

तीर्थ में जाकर पुण्य, दान, भजन, सुमिरन, पूजा-पाठ, नाम-जप, संकीर्तन, सत्य-सम्भाषण, सेवा-सत्संग, आदि शुभकार्य करते रहना चाहिए। झूठ बोलना, चोरी, छल-कपट, व्यभिचार, अनाचार आदि दुष्कर्मों से बच कर रहना चाहिए, अन्यथा तीर्थ-सेवन का फल नहीं मिलता।

तीर्थ-स्नानादि का फल किसे मिलता है। इस बात को नीचे लिखे लोक में स्पष्ट किया गया है-

यस्य हस्तौ च पादौ च मन चैव तु संयतम्।।
सर्वेन्द्रियाणि बुद्धि च स तीर्थ फलम नुते।।

तीर्थादि पवित्र स्थानों में जाकर मन, बुद्धि, हस्त पाद, और वाणी आदि पर शासन कर संयम रखने वाला व्यक्ति ही तीर्थफल को प्राप्त कर सकता है।

तीर्थों पर जाकर चोरी-ठगी आदि घृणित कर्म करने वालों का ज़िक्र करते हुए गुरु नानक देव जी ने प्रताड़ना की है-

नावण चले तीरथी मनि खोटै तनि चोर।।
इकु भाउ लथी नातिआ दुइ भा चड़ीअसु होर।।
बाहरि धोती तूमड़ी अंदरि विसु निकोर।।
साध भले अणनातिआ चोर सि चोरा चोर।। (पन्ना **789**)

अर्थ स्पष्ट है- ऐसे स्नान से तो स्नान न करना ही अच्छा है।

आध्यात्मिक व्याख्या

यह शरीर ही कुम्भ है। इस में सत्कर्म रूप अमृत भरा है। जैसे कुंभ का

अमृत, अमृतत्व रूप मोक्ष का साधन है, वैसे ही यह शरीर सत्य सम्भाषण, संयम और उपासना आदि सत्कर्मों के द्वारा आत्म-ज्ञान का साधन है और आत्म-ज्ञान ही अमृत स्वरूप मोक्ष का साधन है।

कुम्भ ब्रह्मज्ञानी गुरुदेव हैं, उन्हीं के पास आत्मज्ञान रूप अमृत है। वही अमरता प्रदान करने वाला अमृत है। गुरु नानक देव महाराज का वचन है-

जिसु जल निधि कारणि तुम जगि आए
सो अंम्रितु गुर पाही जीउ।। (पन्ना **598**)

कुंभ मनुष्य का हृदय है, उस में आनंद-निधि भगवान विराजमान हैं। उसी का निजात्म रूप से अभेद-ज्ञान हो जाने पर ही अमर पद प्राप्त होता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं-

मन रे थिरु रहु मतु कत जाही जीउ।।
बाहरि ढूढत बहुतु दुखु पावहि घरि अंम्रितु घट माही जीउ।।
(पन्ना **598**)

यथा-

महल महि बैठे अगम अपार।। (पन्ना **1255**)

जिन गंगा आदि तीर्थों में अमृतपूर्ण कुम्भ रखा गया था वे तीर्थ भी मानव के अन्तःप्रदेश में स्थित हैं। गुरु नानक देव जी निजवाणी के द्वारा कहते हैं-

मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा।।
एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा।। (पन्ना **795**)

हाँ ! इस बात को भूलना मत कि इन तीर्थों में स्नान वे ही पुण्यात्मा, महात्मा, महापुरुष करते हैं जिन्होंने निरंतर अभ्यास के द्वारा निज देह, इंद्रिय, मन, बुद्धि आदि पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया है। उन्हीं के प्राण में एक अमृत शब्द का निवास होता है जिन के प्राण में सोऽहं शब्द का निवास हो जाये तो यह सम्भव नहीं कि उनका पुनर्जन्म हो क्योंकि वे तो ब्रह्म में अभेद हो गए।

ब्रहमविद्ब्रहमैव भवति।

इस प्रकार भक्तों को दो दिन कुंभ की कथा सुनाते रहे और अगले दिन जेठी बाई आदि भक्त कलकत्ता को रवाना हो गये।

कुंभ का आरंभ

ज्वालापुर में, नहर किनारे, जटवाड़ा के पुल पर दिन के आठ बजे हैं, गंगा जी की प्रातः कालीन शीतल पवन में दिन की ऊष्मा का समावेश हो गया है। पवन की शीतलता समाप्त हो जाने से पवन-स्पर्श अत्यंत सुखदायी बन गया है। यह मंदशीतल पवन, गुणग्राही सदात्मा के समान, नहर-तीरस्थ उपवनों से व आस-पास के बाग-बगीचों से पुष्प सौरभ लेकर उसे दिग्दिगंतर में बिखेर रहा है। नहर के किनारे की सुंदर तरुमाला मस्ती में झूम रही है, मानो पवन देवी उन्हें अपनी सुखद गोद में सुलाकर लोरियां दे रही हो। गंगा नहर भी भरी पूरी जवानी की मस्ती में उछल-कूद और शोर-मचाती चल रही है। वह यौवन के मद में किनारे के पत्थरों से टकरा-टकरा कर चल रही है। तीरस्थ पेड़-पौधे उस की इस चंचलता को आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहे हैं। तरु-शिखरों की टहनियों पर बैठे पंछी इन सब की शरारत भरी हरकतों को देख कर उनकी प्रेम-लीला पर प्रसन्न हो मधुर कलरव करते हुए मानो खुशियों के गीत गा रहे हैं। समस्त वातावरण ही खुशियों से भरा हुआ है।

जटवाड़े के पुल के बिल्कुल पास एक छोटा-सा सुंदर मंदिर है। इस में कुछ काषाय वेषधारी और कुछ श्वेत वस्त्र वाले, कोई पीला पटका लिए, यानी रंग-बिरंगे संत-महात्मा इकट्ठे हो रहे हैं। मंदिर में आने वाले संतों की भीड़ बढ़ती जा रही है, कोई सोने-चांदी का सामान पेटियों से बाहर निकाल रहा है तो कोई उसकी सफाई पर लगा हुआ है। राजा-राणाओं के घर ब्याह की तरह चहल-पहल है। यह भीड़ उसी तरह की सुहावनी थी जैसी राम के जमाने में चित्रकूट पर भीड़ लगी थी, संत तुलसी दास ने निम्नलिखित दोहे में उसका उल्लेख किया है-

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर।।

तुलसीदास चंदन घिसै तिलक देत रघुवीर।।
हो तो रहा था सब उसी तरह ही, पर तिलक लगाते हुए रघुवीर को किसी ने देखा कि नहीं, यह नहीं बताया जा सकता। हाँ ! हो सकता है किसी हनुमान ने चुपके से देख लिया हो। रघुबीर को नहीं देखा पर मंदिर के अंदर पेड़ों पर बहुत से बंदर तो दर्शन दे रहे थे।

कोई गा रहा था, कोई बजा रहा था, कभी-कभी बैंड वाले कोई धुन बजा लेते तो कभी रणसिंघों की घनघोर आवाज सुनाई दे जाती। कभी मुनिजन-मनमोहनी मुरली की ध्वनि सुनाई पड़ती थी। जटवाड़ा पुल का यह क्षेत्र मुखरित हो उठा था, भांति-भांति की स्वर लहरियों से।

पुल पार से आने वाले देहाती देख-देख कर हैरान हो रहे थे। कोई एक टोली महात्माओं का दर्शन करने को आ जाती। कोई शहरी भी आ निकलता। किसी एक ने पूछ ही लिया-अजी बाबा जी ! यह कैसी है भीड़ महात्माओं की ? क्या माजरा है, यह समझ में नहीं आता। तो एक संत ने कहा, जानते नहीं कि आज एकादशी का पावन दिन है। हाँ यह तो ठीक है कि आज एकादशी है पर इस भीड़ का कारण क्या है यह नहीं मालूम, एक दर्शक ने कहा। संत ने कहा, यह तो मालूम है कि इस वर्ष गंगा जी का कुंभ है। जी हाँ यह तो मालूम है, कुंभ मेले की बातें तो घर घर में चल रही हैं। संत ने कहा बस उसी कुंभ मेले के उपलक्ष्य में यहाँ से निर्मल अखाड़े की जमात का शाही जुलूस निकलेगा। ज्वालापुर कनखल के बाजारों से होता हुआ हरिद्वार स्थित अपने शिविर में जाएगा, बस इसी शाही के लिये यह सब ठाट-बाट है।

इनकी बात समाप्त होते ही महंत आत्मा सिंह जी अपने शिष्यों सहित तांगे से उतरे तो उन्हें देख, निर्मल अखाड़ा के महामंत्री महंत सरमुख सिंह जी उनके स्वागत के लिए उठे तो अन्यान्य महात्माओं ने भी उठकर उनका स्वागत किया। मंदिर फिर आनंद पूर्ण वार्तालाप से गूंजने लगा। इसी कोलाहल भरे वातावरण

में महंत आत्मा सिंह जी अखाड़ा के महंत पंडित सुच्चा सिंह जी व अखाड़े के अन्य कर्मचारियों से परस्पर मिले। सब महात्माओं ने खुशी मनाई। इसी समय महंत आत्मा सिंह जी ने 111 रुपये अखाड़ा की पूजा की।

इसके तुरंत बाद जुलूस के मुख्य प्रबंधक महंत त्रिलोक सिंह जी ने आकर महंत आत्मा सिंह जी को अति नम्रता और सत्कार पूर्वक नमस्कार किया और प्रार्थना की कि हाथी बिलकुल तैयार हैं, आप बैठने के लिये तैयार हो जाइए। इतना कहते ही सजे-धजे हाथियों की कतार सामने आ गई। बैंड की ध्वनि के बीच प्रमुख हाथी पर महंत साहिब और सोने के सामान से सुंदर सजे हुए हाथी पर महंत आत्मा सिंह जी को बिठाया। इनके साथ पृष्ठ भाग में इनके सुयोग्य शिष्य संत ज्ञानी नारायण सिंह जी जरीदार छत्र लेकर बैठे। सोने के सामान से किया गया इन दो प्रमुख हाथियों का श्रृंगार अत्यंत दर्शनीय था। इनकी शोभा निराली थी। ये देवराज इंद्र के ऐरावत के समान झूम-झूम कर चल रहे थे। इनके आगे दिल्ली वाला बैंड, जिसमें सत्तर बैंड वादक थे, चल रहा था। इन दर्शनीय दोनों हाथियों के पीछे अन्यान्य महात्मा हाथियों पर बैठे आ रहे थे। चाँदी के हिरनों वाले रथ पर सवार थे, पंडित त्रिलोक सिंह जी और पंडित निहाल सिंह जी ठाकुर।

इस प्रकार यह शाही जुलूस निराली शानों शौकत के साथ निकला। ज्वालापुर और कनखल के बाजारों में जनता ने हृदय खोल कर महात्माओं की शाही का स्वागत किया। मकानों की छतों पर बैठी जनता ने स्वर्ग के देवताओं की तरह जुलूस पर फूल बरसाए। जगह-जगह पर प्रेमी भक्तजनों ने ठंडी मीठी लस्सी का प्रबंध कर रखा था। लोग बड़ी श्रद्धा-सत्कार के साथ महात्माओं को लस्सी पिला रहे थे।

ज्वालापुर कनखल के बाजारों में गुरु नानक की झांकी झुलाता हुआ जुलूस शाम के सात बजे निर्मला छावनी में सकुशल पहुँचा। यहाँ पर हाथी से उतर कर

फिर अखाड़े की पूजा 111 रुपये महंत सरमुख सिंह जी महामंत्री अखाड़ा को दिए। 5 रुपये हथवान को और 5 रुपये धर्मध्वजा को अर्पण किए। इस समय वहाँ से लौटकर निर्मल बाग कनखल में आ गए। फाल्गुन सुदी 13 संवत् 2019 तदनुसार 1 मार्च सन् 1962 दिन रविवार को प्रातः 8 बजे धर्मध्वजा की पूजा की रस्म आरंभ हुई। यह रस्म ध्वजारोहण के समय यानी झंडा खड़ा करते समय होती है। इसमें सब संत-महंत धर्मध्वजा की पूजा करते हैं। हर महंत-संत को अपनी शक्ति के अनुसार लाज़िमी (अनिवार्य) तौर पर यह पूजा करनी होती है। सब संत-महात्मा इस पूजा को पंच परमेश्वर की पूजा मानते हैं। जिस दिन ध्वजा-पूजन हो जाता है उस दिन से कुंभ की समाप्ति पर्यंत, सब की रिहायश, रोशनी, राशन, भोजन-चाय-पानी आदि का तमाम (सारा) खर्चा अखाड़ा की ओर से होता है।

1111 रु० सब संत महंतों के साथ महंत आत्मा सिंह जी ने।
1111 रु० धर्म ध्वजा की पूजा के अर्पण करके इस रकम (राशि) का शुभारंभ किया।
1111 रु० अखंड पाठ की समाप्ति पर श्री गुरुग्रंथ साहिब की पूजा की।
90 रु० 2 अखंड पाठ के पाठियों की पूजा।
1111 रु० श्री महंत साहिब की पूजा की।
1111 रु० इस दिन के भंडारे की पूजा की।
105 रु० श्री गुरुग्रंथ साहिब को नमस्कार दर्शन करने के साथ मत्था टेका।
05 रु० धर्मध्वजा को नमस्कार करते समय।
105 रु० हाथी की गणेश की पूजा।
10 रु० गाड़ीवान को इनाम दिया।
4879 रु० यह खर्चा 19 मार्च को धर्मध्वजा की पूजा के दिन का है।

उद्घोष

इस दिन आपने यह घोषणा प्रसन्न मन से की कि जिस दिन किसी संत

महंत की ओर से भंडारा न हो यानि जो दिन खाली हो उस दिन के भंडारे का कुल खर्चा हमारी ओर से होगा। अखाड़े का खर्चा नहीं होना चाहिए।

इस उद्‌घोषणा से आपकी जय-जयकार तथा जिंदाबाद के नारे लगाए गए।

इन जयकारों से आसमान गूंज उठा था।

1443 रु० इसके पाँच दिन बाद 23 मार्च चैत्रवदी 2 तदनुसार 23 मार्च को फिर पक्का भंडारा भेष भगवान व आम जनता को दिया।

नोट-अखाड़े में होने वाले भंडारे में गरीब अमीर हर कोई भोजन पा सकता है।

चैत्रवदी **13** तदनुसार **3** अप्रैल सन् **1962**

1340 रु० निर्मल पंचायती अखाड़ा को महंत साहिब ने चेक् द्वारा भेजा।

507 रु० जुलूस के लिए।

416 रु० आपकी ओर से नित्यप्रति कड़ाह प्रसाद का भोग लगा करता था और अरदास होती थी। कड़ाह प्रसाद और अरदास दोनों को मिलाकर 1340 रु० दिया गया।

417 रु० तीन दिन का लंगर अन्नक्षेत्र का खर्चा। यह तीन दिन खाली थे यानी इन दिनों में किसी अन्य संत महंत की ओर से भण्डारा न था। इसलिये इन रिक्त तीन दिनों की रसोई का खर्चा आपने अपने ऐलान के अनुसार दिया।

4-4-62 चैत्रवदी अमावस का शाही जुलूस

2 रु० रिक्शा का भाड़ा।

5 रु० धर्मध्वजा की पूजा शोभा यात्रा के आरंभ के समय।

15 रु० श्री गुरुग्रंथ साहिब की पूजा जुलूस के आरंभ के समय।

5 रु० हाथीवान महावतद्ध को शाही से वापिस आकर, हाथी से उतरते समय।

10 रु० धर्म ध्वजा को भेंट चढ़ाए, हाथी से उतरने के समय।

12 रु० गुरुग्रंथ साहिब की पूजा, हाथी से उतर कर।

इस शाही जुलूस में भी महंत मंडली में सबसे अग्रिम स्थान देकर आपको

सम्मानित किया गया। इस जुलूस में भी संत नारायण सिंह जी आपके साथ छाता लेकर बैठे थे।

श्री महंत साहिब पंडित सुच्चा सिंह जी व आपके स्वर्ण सज्जित हाथियों की शोभा निराली थी।

13 अप्रैल सन् 1962

बैसाखी स्नान के शाही जुलूस में आपने हाथी पर बैठने से इंकार कर दिया था। स्वयं टैक्सी लेकर शोभा यात्रा में सम्मिलित हुए थे।

12 रु० इस दिन पंच परमेश्वर की पूजा की।

नोट-इसी दिन कुंभ पर्व की समाप्ति मानी जाती है। कईं एक संत पूर्ण बैसाख मास पर्यंत गंगा जी का स्नान करते हैं। बैसाख मास की समाप्ति पर कुंभ पर्व की समाप्ति मानते हैं। पर अखाड़े वाले 13 अप्रैल तक भोजन आदि के लिए बाध्य हैं। पर फिर भी निर्मल अखाड़ा सौजन्य के अधीन 15-16 अप्रैल तक भोजन आदि का प्रबंध करता है। इस के बाद कनखल कोठी में लंगर का प्रबंध होता है। जिस संत ने और कुछ दिन रहना हो वह कनखल कोठी में जाकर रह सकता है पर जमात एक महीना सवा महीना हरिद्वार में ही टिकती है।

बैशाख सुदी 7 संवत 2029
बृहस्पतिवार 10 मई 1962

339 रु० 50 पै० निर्मल अखाड़े की जमात को कनखल बाग में भंडारा दिया।

62 रु० 50 पै० दूध खीर वास्ते।

17 रु० सब्जी और मिर्च, मसाला, धनिया वगैरा (आदि)।

111 रु० पंच परमेश्वर की पूजा।

25 रु० श्री महंत साहिब की पूजा।

121 रु० संतों महंतों की पूजा।

3 रु० कुटिया के पुजारी की पूजा।

सन् 1962 से 1334 रु० 50 पै० कुंभ मेला पर निर्मल छावनी हरिद्वार में महंत श्री आत्मा सिंह जी की ओर से ऊपर लिखा कुल खर्चा जनता जनार्दन के भोजन आदि पर किया गया।

नोट-वह कुल खर्च जो आपने निर्मल बाग कनखल में ठहरे संत महात्मा और बंबई, कलकत्ता आदि शहरों से तथा कनखल आ गए। अगले दिन निर्मल अखाड़ा में 11 रु० श्री महंत साहिब की पूजा की।

22 सितंबर 1965 को 27वीं वर्षी मनाई। इस शुभ अवसर पर 130 रुपये अखंड पाठियों की पूजा। 125 रुपये श्री महंत साहिब निर्मल अखाड़ा की पूजा। 151 रु० अखबार निर्मल उददेश्य को सहायतार्थ प्रदान किए।

नोट-सन् 1937 से लेकर इसी प्रकार हर साल इस पुनीत अवसर पर ऊपर लिखे अनुसार पूजा सहायता करते थे और जीवन पर्यंत करते रहे, अब तक भी वह रीति प्रचलित है।

बंबई आदि की यात्रा

इसके बाद 23 दिसंबर सन् 1962 तक कहीं अन्यत्र नहीं गए। केवल निर्मलबाग कनखल में ही रहे। यहाँ निर्मलबाग निवास काल में आपने संत नारायण सिंह जी को शंकरानंदी गीता पढ़ाई और मनन करवाई और दूसरे संत महात्माओं को अन्य पुस्तकें पढ़ाते रहे। मास्टर गुरुदेव सिंह बी. ए., को जपु जी साहिब, रहरास और कीर्तन सोहिला आदि पावन गुरुवाणी आदि पढ़ाईं। संत नारायण सिंह आदि संतों के जीवन को सार्थक बनाने की शिक्षा देते रहे और उन्हें साधना के पथ पर अग्रसर करते रहे। पर भगवान ने जिन्हें अपना दिव्य संदेश दुनिया को सुनाने के लिए ही सिरजा, वे कब तक आराम से बैठ सकते हैं? सिंधी भगत रामदास, रामचंद, दीवानी मल्ल ने 500 रु. सफर खर्च के लिए भेज दिया तो आप 23-12-62 को बंबई के लिये रवाना हो गए। 3 दिन रास्ते में दिल्ली ठहरे और 29-12-62 को बंबई दीवनीमल के घर पहुँच

गए। यहाँ सवा तीन माह, कथा वार्ता सत्संग आदि के द्वारा सद्उपदेश शुभ शिक्षा देते हुए और भगवान नाम का अमृत पिला कर 8 अप्रैल को दिल्ली पहुँच गए। यहाँ केवल एक दिन आराम करके 9-4-63 को कनखल पहुँच गए। अगले दिन निर्मल पंचायती अखाड़ा और श्री महंत जी महाराज की पूजा की।

चूँकि आप एक अद्वितीय शिष्टाचारी महापुरुष थे, शिष्टाचार का बाकायदा (नियमित) पालन करते। जब कभी बाहर की यात्रा से कनखल में पहुँचते तो अगले दिन पंच परमेश्वर निर्मल अखाड़ा की यात्रा अवश्य किया करते थे और श्री महंत जी महाराज की दर्शनी भेंट भी अवश्यमेव करते थे। दो दिन यहाँ यात्रा कर फिर ऋषिकेश को जाते थे।

सन् **1963** की वर्षी

पहले की तरह इस साल भी आपने अपने गुरुदेव स्वामी बुड्ढा सिंह जी महाराज की 26वीं वर्षी असाधारण उत्साह के साथ मनाई। इसमें बाहर से संत महात्मा और प्रेमीगण बहुत आए थे। विरक्त जी महाराज कनखल से मंडली समेत पधारे। ज्ञानी बिशन सिंह जी किरीट बंबई से आए थे। अखंड पाठ चल रहा था। सवेरे 8 बजे तक गुरुवाणी की मधुकरी भारत-कोकिला मोहनी देवी ने 'श्री आसा की वार' का अमृतमय कीर्तन किया।

अखंड पाठ की समाप्ति के अनंतर आरती अरदास के बाद विद्वान् महात्माओं ने श्रद्धांजलियां अर्पित कीं, अनंतर षड्दर्शन को एवं जनता जनार्दन को खुला भंडारा दिया गया।

27वीं वर्षी बंबई की ओर

14 नवंबर सन् 1963 को रवाना हुए (यात्रा आरंभ की)। दिल्ली होते हुए 20-11-63 को बंबई पहुँचे। यहाँ हासाराम महल में रहे, बंबई करीबन (लगभग) चार महीने तक धार्मिक जनता की उपदेश अमृत के द्वारा प्यास बुझाते हुए 18-4-63 को नागपुर एक दिन रह कर 20-4-63 को कलकत्ता पहुँच

गए। यहाँ कमल मोहन टाटा के घर रहे। साथ में मधुरभाषी संत नारायण सिंह जी, संत दर्शन सिंह जी थे। यहाँ आध्यात्मिक उपदेशों से भारतीय संस्कृति की परिपुष्टि करते हुए, गीता गुरुवाणी का अमर संदेश देकर दो माह के बाद 14-5-64 को आपने मद्रास में पावन पदार्पण किया। यहाँ सवा महीना प्रभु के नाम के जाप व चरित्र निर्माण के द्वारा मानव-जीवन को पवित्र बनाने का उपदेश देकर नागपुर, देहली आदि शहरों में नाम अमृत की वृष्टि करते हुए 22-6-64 को कनखल पहुँच गए। यहाँ आकर अखंड पाठ कराया, पाठिओं आदि की पूजा के अलावा 111 रुपये अखाड़े की पूजा की, 25 रुपये निर्मल उद्‌देश्य साप्ताहिक पत्र अमृतसर को सहायतार्थ भेजा।

❑

तरंग 60

सन् 1965 -विचारों की शिथिलता

प्रायः यह देखा जाता है कि मानव के विचारों में शिथिलता आ जाती है। जिन साधकों के विचार परिपक्व नहीं होते, उन पर अन्यों के लौकिक विचारों का, विज्ञानवादियों के नास्तिक विचारों का प्रभाव पड़ जाता है तो उनके विचारों में शिथिलता आ जाती है। कई-एक के दिलोदिमाग पर सांसारिक पदार्थों की चकाचौंध का प्रभाव पड़ने से उनके विचारों में शिथिलता आ जाती है और वे अपने मार्ग से गिर जाते हैं। यह मानव स्वभाव की कमज़ोरियां हैं। जो विचारशील पुण्यात्मा महात्मा इस तथ्य को जानते हैं वे सत्संग का सहारा कभी नहीं छोड़ते। वे इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि उनके जिज्ञासुओं और प्रेमी भक्तों के विचारों में शैथिल्य न आ जाए, इसलिए वे उन्हें सत्संग का अमृतपान कराकर उनके विचारों को दूषित होने से बचाने के लिए जिज्ञासुओं के यहाँ आते जाते रहते हैं। वे अपने इस परम कर्त्तव्य से कभी चूकते नहीं। बस इस परम सत्य को समझते हुए महापुरुष भक्तों के कहने पर 28-1-65 को मोदीनगर होकर दिल्ली पधारे। वहाँ से 30-1-65 को बंबई रवाना हो गए। आपके साथ पाँच संत- ज्ञानी संत नारायण सिंह जी, ज्ञानी बलवंत सिंह जी, संत दर्शन सिंह जी, संत मंगल सिंह जी व संत हरिभजन सिंह जी आदि थे। वहाँ राधी बाई बुलचंद के घर में रहे। दोनों समय सत्संग में कथा का प्रवाह जारी हो गया। सवेरे संत बलवंत सिंह जी श्री गुरु ग्रंथ साहिब के एक शब्द की व्याख्या करते और सायं संत नारायण सिंह जी प्रकृति प्रदत्त मधुर स्वर से पवित्र विचारों से परिपूर्ण कथा सुनाकर सत्संगियों के हृदयों को आनंदित करते। आप स्वयं

जिज्ञासु जनों द्वारा किए गए प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें संतुष्ट करते थे। इस प्रकार यह कार्यक्रम लगातार चार मास चलता रहा। अध्यात्म पथ के पथिक इस उपदेश अमृत का पान कर कृतार्थ होते रहे।

यहाँ 4 माह तक प्रेमीजनों को प्रभु-चरणों का पीयूष पिला कर, भक्तों के बुलावे पर बड़ौदा चले गए। वहाँ से 15 मई को कनखल आ गए। अगले दिन निर्मल अखाड़ा में 11 रु० श्री महंत साहिब की पूजा की।

22 सितंबर 1965 को 27वीं वर्षी मनाई। इस शुभ अवसर पर 130 रुपये अखंड पाठियों की पूजा, 325 रुपये श्री महंत साहिब निर्मल अखाड़े की पूजा, 151 रु० अखबार निर्मल उद्देश्य की सहायतार्थ प्रदान किए।

नोट-सन् 1937 से लेकर इसी प्रकार हर साल इस पुनीत अवसर पर उपर लिखे अनुसार पूजा सहायता करते थे और जीवन पर्यंत करते रहे। अब तक भी वह रीति प्रचलित है।

सन् 1966 के कुंभ पर्व प्रयाग में

पूर्व के जन्म-जन्मांतरों में निष्काम होकर किए हुए पवित्र कर्मों से जिस महापुरुष का हृदय गंगा-जलवत् निर्मल हो जाता है, गुरु की पूर्ण कृपा और अपने सतत् प्रयत्न के द्वारा पूर्वार्जित ज्ञान विज्ञान से जिनकी आत्मा तृप्त हो चली है, जो लोक और परलोक के तमाम (सारे) मोहक पदार्थों से पूरी तरह वितृष्ण हो चुके हैं, इस ज्ञानपूतात्मा महात्मा को अपने लिए तो किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रहती, पर वह 'लोक-संग्रह' के लिए शुभ कार्यों को प्रीतिपूर्वक करते रहते हैं। भगवान श्री कृष्ण जी ने गीता में अर्जुन को सुंदर उपदेश देते हुए कहा है-

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोक-संग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।।

भावार्थ-इस प्रकार ज्ञानी महापुरुष आसक्ति रहित होकर कर्म करते हुए परम सिद्धि को प्राप्त कर गए हैं। इसलिए लोक-शिक्षा के वास्ते भी तुझे कर्म

करना उचित है क्योंकि महापुरुष जैसा-जैसा आचरण करते हैं, जिसे वे प्रमाणित कर देते हैं अन्य जिज्ञासुजन भी उसी के अनुसार आचरण करते हैं। बस यही कारण है कि ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा महात्मा जन भी पुण्य-दान, तीर्थ-स्नान एवं जनगण सेवा आदि शिक्षाप्रद पुनीत कर्म करने में हर समय प्रयत्नशील रहते हैं। बस इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर पुण्यात्मा महापुरुष आत्मा सिंह जी ने भी प्रयाग के कुंभ स्नान का संकल्प किया। इसी भावना को लेकर वह अपने श्रद्धालु शिष्यों को साथ लेकर 10 जनवरी सन् 1966 को प्रयाग के लिए प्रस्थान कर गए।

माघ वदी 5 संवत् 2022 तदनुसार 11 जनवरी, सन् 1966 को कुंभ-मेला इलाहाबाद में पहुँच गए। आपने 11 रु० पंच परमेश्वर की पूजा की। 12 रु० जनवरी को फिर, 11 रु० पंच की पूजा की। तेरह (13) जनवरी को ध्वजारोहण के समय 1111 रु० धर्मध्वजा की पूजा की। 7 रु० ध्वजा (झंडे) के सीधा स्थिर हो जाने की खुशी में पूजा की।

नोट-गुरुद्वारा पक्की संगत अहियापुर इलाहाबाद में ठहरे थे और वहाँ से रोज त्रिवेणी-स्नान करके निर्मल अखाड़े के कैंप (शिविर) में जाकर नित्य पंच की पूजा करते थे।

प्रयाग की प्राचीनता और महिमा

कुंभ पर्व के स्नानादि के वर्णन काल में प्रयाग की चर्चा अप्रासंगिक न होगी। प्रत्युत आवश्यक प्रतीत होती है। प्रयाग एक अति प्राचीन तीर्थ स्थल है। यह सत्य है कि आर्ष ग्रंथों में इसका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता पर तब भी पुराणों में तो इसकी महिमा बड़े विस्तार से कही गई है। मत्स्य पुराण में ऋषि कहते हैं कि-

प्रसिद्धंश्रुतिमल तु त्रिगुणाघरं मतम्।।
पदे पदे अश्वमेधस्य फलदं यत्स्मृतं बुधैः।।

यह बात प्रसिद्ध है कि यह श्रुति मूलक है। सब प्रकार के पाप समूह को

हरने वाला है। प्रयाग की ओर एक-एक पद चलने से अश्वमेध का फल मिलता है। स्मृतियों में भी प्रयाग का उल्लेख किया गया है। यहाँ विशेष रूप से दान-पुण्य किया जाता था-

यद्यदाति गयाक्षेत्रे प्रभासे पुश्करे तथा।
प्रयागे नैमिशारण्ये सर्व मानन्त्यमुच्यते।। (शंख स्मृति)

यानी (अर्थात) गया में प्रभास, पुष्कर तथा प्रयाग और नैमिषारण्य आदि पवित्र स्थानों में जो दान पुण्यादि पवित्र कर्म किया जाता है उसका फल अनंत होता है, अक्षय होता है।

प्रयाग एक अत्यंत प्राचीन तीर्थ है, इसमें तो संदेह नहीं। यह इतिहास से पूर्वकाल में, पुराण स्मृति आदि से प्रमाणित है और इतिहास काल के राजा-महाराजा और सम्राट यहाँ आकर स्नान-दान यज्ञानुष्ठान करते रहे हैं। हर्षवर्धन आदि सम्राटों ने रानियों समेत आकर स्नान आदि से अक्षय पुण्य की प्राप्ति की। इनसे भी प्राचीन सूर्यवंशी पुण्यात्मा महा सम्राट इक्ष्वाकु ने यहाँ यज्ञानुष्ठानादि से प्रसिद्धि प्राप्त की थी। जैन विद्वानों का मत है कि ये इक्ष्वाकु जैन धर्म के आदि आचार्य ऋषभदेव ही हैं। ऋषभदेव ने अपने शासन काल में यहाँ यज्ञादि किए और फिर राज्य त्याग कर महात्यागी बने। उन्होंने यहाँ कठिन तपस्या और योग साधना के द्वारा पूर्ण सिद्धि प्राप्त की। स्वरूप का साक्षात किया, ऐसी जैनों की मान्यता है। संभव है वही हों योग करने वाले इक्ष्वाकु सम्राट, हमें इसमें कुछ कहना नहीं है। इससे यह निर्णय तो हो जाता है कि यह तीर्थ अति प्राचीन है। यहाँ तक कि यहाँ ब्रह्मा ने अश्वमेध यज्ञ किए। इसीलिए इसका नाम प्रयाग पड़ा। इन्हीं कारणों से इसे तीर्थराज कहा जाता है। एक लोकोक्ति से भी इस बात की पुष्टि एवं सिद्धि होती है। पंजाब में बहुत से प्राचीन वृद्ध स्नान करते समय यह दोहा पढ़ा करते हैं-

गंगा बड़ी गुदावरी, तीर्थ बड़े प्रयाग।
छाला बड़ी समुद्र की पाप कटे हरिद्वार।।

यानी प्रयाग सबसे बड़ा तीर्थ है। हम तो पुराण और स्मृतियों के मत पढ़कर और आधुनिक विचारकों के विचार पढ़कर इस नीति पर पहुँचे हैं कि यह प्रयाग का कुंभ स्नान, पुराणों में वर्णित समुद्र-मंथन से भी पहले से प्रचलित है क्योंकि कुंभ स्नानादि की महिमा बढ़ाने के लिए ही समुद्र मंथन से अमृतपूर्ण कुंभ की कथाएं कथन की हैं। माघ माहात्म्य, बैसाख माहात्म्य आदि की तरह ये कथाएं कुंभ स्नानादि की प्रशंसा करने वाला अर्थवाद है। कुछ लोगों का विचार है कि यह बौद्ध भिक्षुओं के संघों के धर्म प्रचार अभियानादि का अनुकरण हैं, नकल हैं ये कथाएं।

बौद्ध धर्म एक प्रचारक धर्म है। इसके अनुयायियों ने देश-विदेशों में घूम-घूम कर बौद्ध धर्म का प्रचार किया है। इनके भिक्षु संघ घूमते हुए यत्र-तत्र सभाएं किया करते थे। प्रयाग आदि तीर्थ-स्थानों में भी आते थे और बौद्ध धर्म का प्रचार करते थे। काबुल कंधारादि में भी इनका अत्यधिक प्रचार था। इन मुस्लिम देशों में अब तक भी बुद्ध की मूर्तियों के अवशेष मिलते हैं। बुत शब्द बुद्ध शब्द का ही अपभ्रंश लगता है। बुतों के विरुद्ध यानी बुत शिकनी (बुद्ध मूर्तियों को तोड़ने) के लिए मुसलमानों के अभियान होते रहे हैं। मुसलमानों के ख़लीफ़ा और उनके अनुगामी 'बुत शिकन' कहलाने में गर्व मानते थे।

बौद्धों की सभाओं का अनुकरण करते हुए ब्राह्मणों और संन्यासियों ने अधिकाधिक जनता यहाँ आकर लाभ प्राप्त करे इसलिए ये रोचक कथाएं गढ़ लीं। इसमें किसी की स्वार्थ भावना न भी हो, और यही भावना रही हो कि यहाँ आकर जनता अपनी जानकारी में वृद्धि करे। धर्मी विद्वानों के विचार सुनकर अपने आचरण को सुधारने का प्रयत्न करे, धार्मिक उन्नति के पथपर अग्रसर हो, सत्संग से व्यवहार परमार्थ की बातें सुन अपनी जानकारी में वृद्धि करे। शायद इसीलिए स्वामी शंकराचार्य ने चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की हो। तभी से साधु-महात्माओं की मंडलियां आने लगीं और उन्हें देख कर जनता आने लगी। जनता के अधिक संख्या में आने से व्यापारियों को अधिक लाभ होता है। देश विदेशों, अन्यान्य प्रदेशों, प्रांतों में घूमने से व्यावहारिक ज्ञान की

वृद्धि होती है। यहाँ स्नानादि से पुण्य की उत्पत्ति होती है।

इस बात को कोई माने या न माने पर इस सच्चाई से तो कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि अन्य जलों में स्नान की अपेक्षा नदी-स्नान अधिक स्वास्थ्यकरहै, सेहत के लिए ज्यादा फायदेमंद (लाभदायक) है। जल से शरीर की शुद्धि होती है। शरीर की तंदुरुस्ती के लिए नदी स्नान उत्तम है क्योंकि उसमें तैरने आदि से व्यायाम भी होता है। व्यायाम उत्तम स्वास्थ्यकर है और खासकर तैरने का व्यायाम स्वास्थ्यवर्धक है, पर आत्मशुद्धि करने में समर्थ नहीं। इस सिद्धांत की पुष्टि महापुरुषों के वचनों से भी होती है। भगवान कृष्ण जी ने तीर्थ-यात्रा को जा रहे पांडवों को कहा था-

आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरू पाण्डुपुत्र? न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा।।

गुरु नानक देव जी ने भी कहा-

सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ।।
अंतरगति तीरथि मलि नाउ।। (पन्ना **4**)

यथा

मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा।।
एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा।। (पन्ना **795**)

गुरु नानक देव जी ने इन पंक्तियों में भी अंतर्गत तीर्थ यानी आत्मा नदी में ही उत्तम स्नान बतलाया है एवं अन्य कबीर आदि भक्तों का अनुभव भी इनसे मिलता है-

जब नखसिख इहु मनुचीना। तब अन्तर्मज्जन कीना।।

भक्त शिरोमणि नामदेव भी अंतरात्मा रूपी नदी के स्नान का ही समर्थन करते हैं-

तीरथ देखि न जल महि पैसउ जीअ जंत न सतावउगो।।
अठसठि तीरथ गुरू दिखाए घट ही भीतरि नूहाउगो।। (पन्ना **973**)

भक्त नामदेव राग रामकली-इसी प्रकार भक्त बेणी जी भी अपना अनुभव कहते हैं-

इड़ा पिंगुला अउर सुखमना तीनि बसहि इक ठाई।।
बेणी संगमु तह पिरागु मनु मजनु करे तिथाई।।
संतहु तहा निरंजन रामु है।। (पन्ना **974**)

इत्यादि महापुरुषों के अनुभव-वचनों से भी यही ध्वनित होता है कि वास्तविक तीर्थ आत्मा है। आत्म-चिंतन रूप ही स्नान है। आत्मचिंतन से चित्त शुद्ध होकर आत्मा का साक्षात्कार होना आत्मज्ञान होना, ब्रह्मचैतन्याभिन्नत्वे आत्मा का ज्ञान होना, यही स्नान का माहात्म्य है, यही अक्षय पुण्य है।

महाभारत में भी प्रयागराज की महिमा के श्लोक आते हैं।

प्रयागं सर्वतीर्थेभ्यः प्रवदन्त्यधिकं विभो।
श्रवणात्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्तनादपि।।
मृतिकालम्भनाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते।

इसे भी प्रशंसापादक अर्थवाद व रोचक उपदेश ही समझना चाहिए। वास्तविक तीर्थ तो वहाँ सत्संग है। वैराग्य, भक्ति और ज्ञान यही त्रिवेणी है। वास्तविक कुंभ सत्संग है। यह कुंभ नाना विधि के उपदेश अमृत से परिपूर्ण है।

महात्मा तुलसीदास ने भी संत-समाज सत्संग को ही तीर्थ-राज प्रयाग बताया है-

मुद मंगल मय संत समाजू, जो जग जंगम तीर्थ राजू।
राम भक्ति जह सुरसरि धारा, सरसै ब्रह्मविचार प्रचारा।।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी, करमकथा रविनंदिनी वरनी।
हरि हर कथा बिराजत बेनी, सुनत सकल मुद मंगल देनी।।
बटु बिस्वासु अचल निज धरमा, तीरथराज समाज सुकरमा।।
सबहि सुलभ सबदिन सब देसा, सेवत सादर समन कलेसा।
अकथ अलौकिक तीरथराऊ, देइ सघ फल प्रगट प्रभाऊ।।

सुनि समुझहिं जन-मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।।

आगे भारद्वाज मुनि के आश्रम और मुनि के परमार्थ मार्ग पर चलने, रामभक्ति, शम, दम, दया आदि गुणों का वर्णन करते हुए महात्मा तुलसीदास ने आगे कहा है कि वहाँ जुटकर संत समाज कैसे रहता था। क्या कार्यक्रम था उनका, यह बताते हुए लिखते हैं-

तहां होई मुनि विषय समाजा, जाहिं जे मज्जन तीरथराजा।
मज्जहिं प्रातः समेत उछाहा, करहिं परस्पर हरिगुन गाहा।।

जो महात्मा तीर्थराज पर स्नान करने जाते थे वे प्रातः काल उत्साह पूर्वक स्नान करते थे और परस्पर भगवान हरि का गुणानुवाद करते थे। भगवान के उदार चरित और उनकी महिमा की धवल कीर्ति, संकीर्तन व पवित्र कथा प्रसंग सुनते सुनाते थे। गुरु नानक जी ने भी कहा है-

सतसंगति कैसी जाणीऐ।। जिथै एको नामु वखाणीऐ।।
एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ।। (पन्ना **72**)

इसी बात को आगे के दोहे में महात्मा जी ने कहा है-

ब्रह्म निरुपन धर्म विधि वरनहिं तत्त्व विभाग।
करहिं भक्ति भगवंत के संजुत ज्ञान बिराग।।

वे संत महात्मा सम्मिलित होकर ज्ञान वैराग्य युक्त भगवान की भक्ति करते थे। बस वैराग्य ज्ञानयुक्त भक्ति ही पुनीत कर्त्तव्य है कुंभ स्नान करने वालों का।

कुंभ कब से? किसने चलाया?
कुंभ में करने योग्य काम

कुंभ कब से चला? इस प्रश्न का उत्तर नहीं बताया जा सकता क्योंकि इसके काल का कहीं उल्लेख नहीं है। इसे किसने चलाया? इसका भी यथार्थ उत्तर कोई नहीं दे सकता। हाँ, अटकल वाजियां चाहे कोई कितनी क्यों न लगा ले पर सही उत्तर इसका कोई नहीं दे सकता। इतना सत्य है कि यह अति प्राचीन है। किसी

भी काल में चला हो पर यह सत्य है कि किसी अनंत शक्तिशाली और अति तेजवान पुरुष ने ही चलाया होगा। अवश्य ही इसके पीछे कोई अदम्य शक्ति काम कर रही है।

कुंभ में करने योग्य काम-यहाँ आने वाले श्रद्धालु को संयम, सादगी, संतोष, समाज सेवा और सुमिरन करते हुए यह समय बिताना चाहिए। सत्संग में जाकर संत महात्माओं से सदुपदेश लेना चाहिए। स्नान अवश्य नदी जल में ही करना उचित है। जपुजी साहिब, सुखमनी साहिब आदि गुरुवाणी का तथा गीता का पाठ करते रहना चाहिए। गुरु मंत्र व गायत्री आदि का जाप करना चाहिए। स्वाध्याय करते रहना चाहिए। अगर बन पड़े तो कुछ पुण्य दानादि भी करना उचित है। स्वाध्याय या सत्संग से अपने ज्ञान में वृद्धि करना भी मनुष्य का पुनीत कर्त्तव्य है। निरर्थक समय नहीं बिताना चाहिए। महापुरुष महात्मा मुनिजनों ने कहा-

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव तु संयतम्।
सर्वेन्द्रियाणि बुद्धिश्च स तीर्थ फलमश्नुते।।

शरीर इंद्रिय, मन, बुद्धि को संयत रखने वाला संयमी विवेकी मनुष्य ही तीर्थ-स्नान का पूर्ण फल प्राप्त कर सकता है।

यह याद रखने की बात है कि तीर्थों में जैसे पुण्य, दान, सेवा, सत्संग, जप, तप, सुमिरन भजनादि का अधिक फल होता है, उसी प्रकार झूठ, छल, कपट, चोरी, ठगी, अनाचार, व्यभिचार आदि दूषित कर्मों का फल (दुष्परिणाम) भी अति उग्र होकर कई गुणा अधिक होता है। अतः पवित्र स्थानों में भूल कर भी निषिद्ध और निंदित कर्म नहीं करना चाहिए। गुरुघर के महान विद्वान् महापुरुष भाई गुरुदास जी ने लिखा है-

बज्र पाप न उतरै जो कीजै गंगा, हरिओं तत्सत्।

महंत आत्मा सिंह जी का कृत्य

14 जनवरी को आप ने पंच परमेश्वर निर्मल अखाड़ा को पक्का भंडारा दिया।

नोट–यह याद रखना चाहिए कि निर्मल कैंप (शिविर) में जितनी जनता निवास करती है सारी की सारी भोजन निर्मल कैंप में करती है और बाहर से आने वालों को सादर भोजन खिलाया जाता है। कैंप में जाते ही आप ने पहले

5 रु० श्री गुरु ग्रंथ साहिब को भेंट किया।

105 रु० शाही जुलूस की पूजा की।

1111 रु० पंगति में श्री महंत निर्मल अखाड़ा की पूजा की।

1111 रु० भंडारा का कुल खर्चा दिया।

2332 रु० कुल जोड़ पहले भंडारे के खर्चे का।

15-1-66

15 रु० पंच की पूजा।

17-1-66

1465 रु० अखंडपाठ और पक्का भंडारा के लिए श्री निर्मल अखाड़ा के श्री महंत जी को चेक् दिया।

18-1-66

11 रु० परमेश्वर की पूजा अखाड़ा में।

19-1-66

5 रु० संत नारायण सिंह जी ने पूजा की।

20-1-66

11 रु० पंच निर्मल अखाड़ा की पूजा।

21-1-66

31 रु० श्री गुरु ग्रंथ साहिब की पूजा।

23-1-66

15 रु० श्री महंत निर्मल अखाड़ा की पूजा।

25-1-66

25555 रु० पंच परमेश्वर को अर्पण किए–वास्ते पालकी (गंगा जमनी बनवाने, 40 फुट 6 इंच लंबाई, गुरुद्वारा निर्मल अखाड़ा में रोजाना श्री गुरु ग्रंथ साहिब के प्रकाश करने के लिए) 1 नग छत्र गंगा जमनी सोना चाँदी का श्री गुरु ग्रंथ साहिब के लिए इसी रकम में से बनाया जाएगा। अगर इससे कुछ बचे तो चाँदी की छड़ियां बनाई जाएं।

111 रु० शाही जुलूस की पूजा।

4 रु० एतदर्थ फुटकर खर्चा।

26-1-66

111 रु० बसंत पंचमी के शाही जुलूस की पूजा।

55 रु० नौकरों को इनाम। यह भी एक गौरव की बात है कि इस जुलूस में महंत आत्मा सिंह जी व संत नारायण सिंह जी हाथी पर बैठे थे। इस जुलूस की सरकार की ओर से फोटो व फिल्में ली गई थीं। महंत आत्मा सिंह जी जिस हाथी पर सवार थे उसे पिक्चर में दिखाया गया था। वह रंगीन फोटो निर्मल आश्रम में फ्रेम कराकर रखी हुई है।

1056 रु० पक्का भंडारा बसंत पंचमी पर।

27-1-66

129 रु० धर्मादे खाते निर्मल अखाड़ा के शिविर में।

29-1-66

10 रु० धर्मादे खाते नौकरों को इनाम, पीलीकोठी इलाहाबाद में।

51 रु० धर्मादे खाते कोठी में।

31-1-66

96 रु० बनारस मे अखंड पाठियों की पूजा और महाराज की पूजा।

70 रु० भंडारे में महंतों की पूजा।

65 रु० विद्यार्थियों व संतों की सहायता।

62 रु० पंगत पूजा भंडारे में यानि दक्षिणा भोजन करने वालों को।

200 रु० रसगुल्ले भंडारे के लिए।

350 रु० इससे पहले हरिसिंह के द्वारा भंडारा किया। उसका चेक श्री हरि सिंह को दिया।

2-2-66

25 रु० महंत साहिब महंत गुरुदीपसिंह जी केसरी लाहौरी टोला की पूजा।

25 रु० महंत साहिब महंत बसंत सिंह जी ब्रह्मकुटी की पूजा।

3-2-66

5 रु० संत रामपाल सिंह जी शास्त्री को।

10 रु० उक्त स्थानों के भंडारियों को इनाम।

(सन् 1966 प्रयाग-कुंभ के कुल खर्च का जोड़ 33117 रु०)

काशी से आप 4 फरवरी को कनखल लौट आए थे, वहाँ इस वर्ष इमारत का काम बहुत करवाया। 1 दिसम्बर को टैक्सी द्वारा देहली में महंत दयाल सिंह जी के स्थान जीवन भवन महाबीर नगर में पहुँच गए। अगले दिन गुरुद्वारा बंगला साहिब की यात्रा की और 10 रु० पूजा भेंट किया। 450 रु० कड़ाह प्रसाद के लिए दिए। 4 को गुरुद्वारा सीसगंज की यात्रा की। 5 रु० पूजा भेंट, 250 रु० कड़ाह प्रसाद खातिर अर्पण किए। 2 रु० रागिओं को अरदास कराई।

11 रु० महंत दयालसिंह जी की पूजा की। 8 रु० नौकरों को इनाम दिया। पाँच दिसंबर को कनखल वापस आ गए।

आश्विन वदी **12** द्वादशी
11 अक्तूबर सन् **1966** को **29**वीं वर्षी मनाई

140 रु० पाठियों की पूजा, उक्त वर्षी पर कराए गए अखंड पाठ की।

700 रु० पंगत पूजा कुल भोजन पाने वालों को।

125 रु० श्री महंत निर्मल अखाड़ा की पूजा।

151 रु० साप्ताहिक पत्र निर्मल उद्देश्य की सहायतार्थ।

सन् 1967

भगवानदास कमला आदि के बुलाने पर आप तीस (30) मई को कनखल से देहली पहुँचे। वहाँ एक दिन रहकर 2 जून सन् 1967 को बम्बई पहुँच गए। यहाँ संत नारायण सिंह जी ज्ञानी कथा करते रहे। आप तो केवल दर्शन देते, कोई प्रश्न करता तो यथोचित उत्तर देकर संतुष्ट कर देते। लगातार 2 महीने के सत्संग में गीता, गुरुवाणी आदि से धार्मिक उपदेश देकर 1 अगस्त को बम्बई से चलकर 2 अगस्त सन् 1967 को कनखल निर्मल बाग में पहुँच गए। पूर्ववत 5 अगस्त को निर्मल अखाड़े की यात्रा की, 21 रु० पंच परमेश्वर की पूजा की।

29वीं वर्षी

1 अक्तूबर सन् 1967 को महाराज ने उनतीसवीं वर्षी बड़ी धूमधाम के साथ मनाई।

125 रु० अखंड पाठियों की पूजा।

125 रु० श्री महंत पंडित सुच्चा सिंह जी महाराज की पूजा।

767 रु० पंगत पूजा।

150 रु० निर्मल उद्देश्य पत्र की सहायता को दिया।

19 अक्तूबर को कनखल से चलकर 20 अक्तूबर को बम्बई दोबारा जाना पड़ा। 15 नवम्बर को निर्मल विरक्त कुटिया में 373 रुपये संतों को चाय पिलाने के लिए दिए।

नवंबर 16 को दिल्ली गए। रकाब गंज सीस गंज आदि गुरुद्वारों की यात्रा की। जमुना जी में स्नान किया। 21-11-67 को महाबीर नगर महंत दयाल सिंह जी को मिलने गए, 11 रुपये उनको नज़र भेंट दिए। टैक्सी द्वारा फिर दिहली से हरिद्वार। अगले दिन फिर दिहली गए और वापस हरिद्वार टैक्सी द्वारा आ गए, तारीख 22 नवम्बर को।

सन् 1968

556 त्रयंबक गोदावरी कुंभ के लिए पंच परमेश्वर को अर्पण किए। इस वर्ष निर्माणाधीन इमारत के काम में व्यस्त रहने के कारण स्वयं न जा सके अतः कनखल श्री महंत साहिब को दे आए।

2-7-68 त० 2 जुलाई सन् 68 को

11 रु० देहली को प्रस्थान करने से पहले अखाड़ा में पूजा की।

5 रु० कड़ाह प्रसाद खातिर दिए।

66 रु० नौकरों को इनाम दिया। देहली सेठ होतचन्द के घर रह कर नौकरों को इनाम दिया।

22-7-68 को हवाई जहाज द्वारा बम्बई पहुँच गए। डेढ मास तक आध्यात्मिक विचारों की बारिश करके 9 सितम्बर को कनखल के लिए प्रस्थान किया। 19 सितम्बर 1968 तदनुसार आश्विन वदी 12 को ब्रह्मलीन बाबा बुड्ढ़ा सिंह जी महाराज की 31वीं वर्षी मनाई गई।

375 रु० निर्मल कुटिया के महात्माओं को चाय पान के वास्ते 14-11-68 को प्रदान किए।

सन् 1969

सेठ होतचन्द के याद करने पर 2-4-69 को देहली रवाना हो गए। 21-4-69 को गुरुद्वारा बंगला साहिब की यात्रा की, 5 रु० कड़ाह प्रसाद के लिए दिए। 12 रु० नौकरों को इनाम दिए और 23-4-69 को बम्बई के लिए प्रस्थान किया। 24-4-69 को बम्बई में चेनानियों के घर में पहुँच गए।

25 रु० बम्बई में नौकर आदि को इनाम देकर 11-7-69 को बड़ौदा में पदार्पण किए। वहाँ से 13-7-69 को देहली लौट आए, 14-7-69 को निर्मल अखाड़ा की यात्रा करने गए।

121 रु० पंच परमेश्वर की पूजा की।

2 रु० कड़ाह प्रसाद के लिए दिए।

45 रु० रुपये दीन-हीन हितकारी महंत साहिब ने भंडारी आदि नौकरों को बखशीश दी। 16-7-69 को फिर अखाड़े में दर्शन करने गए।

5 रु० श्री महंत साहिब की पूजा की।

4 रु० अन्य दो संतों को दिए।

11 रु० संत हरि सिंह को प्रदान किए।

20 रु० जुलाई सन् 69 को निर्मल बाग में आपने सब संतों को भंडारा दिया।

22 रु० श्री महंत जी की पूजा की।

262 रु० पंगत-पूजा यानि सब संतों को दक्षिणा दी।

11 रु० ज्ञानी जगत सिंह जी की पूजा की।

29-7 को ऋषिकेश जाने से पहले अखाड़े की यात्रा की।

11 रु० श्री गुरु ग्रंथ साहिब की पूजा की।

5 रु० श्री महंत जी महाराज की पूजा।

5 रु० गद्दी की पूजा की।

7 रु० फलफूल अखाड़े में।

17-8-1969 को यात्रा आरंभ करने से पहले अखाड़े में गए।

2 रु० 50 कड़ाह प्रसाद के लिए दिए।

21 रु० पंच परमेश्वर की पूजा।

18 रु० विद्यार्थी संतों और अखाड़े के नौकरों को दिए।

18-8-69 को लखनऊ पहुँचे।

350 रु० (तीन सौ पचास रुपये) काशी के महात्माओं को भंडारा देने के लिए अपने स्थान के प्रबंधक संत हरि सिंह को देकर भेजा। बनारस से कलकत्ता के लिए टिकट लिए।

20-8-69 को विश्वनाथ मंदिर की यात्रा की

5 रु० मंदिर में पूजा की।

21-8-69 को-

90 रु० अखंड पाठिओं और महाराज की पूजा की।

160 रु० संतों के वास्ते रसगुल्ले (बनारस में)।

140 रु० संतों, महंतों की पूजा की। फिर 23-8-69 को संतों को दूध जलेबी का भंडारा दिया।

23 रु० पंगत पूजा भंडारा में की।

50 रु० पाठशाला के लिए महंत गुरुदीप सिंह जी शास्त्री को दिए। 24-8-69 को काशी जी से कलकत्ता पधारे। यहाँ प्रेमीजनों को 20-22 दिन नाम जाप और शुभ कर्म करते रहने का उपदेश अमृत पिलाकर लखनऊ पधारे। यहाँ दो दिन धर्मोपदेश देकर 17-9-69 को अखाड़ा में दर्शन करने गए और वहाँ 24 रु० पंच परमेश्वर की पूजा की।

2 रु० कड़ाह प्रसाद के लिए दिए।

25-9-69 को अखाड़ा में 12 रु० गुरु महाराज व पंच परमेश्वर की पूजा की। 30-9-69 को 86 रु० अखंड पाठ के पाठिओं की पूजा।

11 रु० पंच परमेश्वर की पूजा।

5 रु० श्री महंत साहिब की पूजा।

असौज वदी 12 संवत् 2026 तदनुसार 8 अक्तूबर सन् 1969 को ब्रह्मलीन बाबा बुड्ढा सिंह जी की वर्षी बहुत ही धूमधाम के साथ मनाई। समस्त संतों को भंडारा और तीन अखंड पाठ करवाए।

175 रु० तीन पाठों की पूजा।

125 रु० श्री महंत साहिब निर्मल अखाड़ा की पूजा।

700 रु० दक्षिणा (सब संतों को पंगत में दिए)।

151 रु० निर्मल उद्देश्य पत्र की सहायता।

9 रु० नौकरों को इनाम।

महापुरुषों की दूर दृष्टि

भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है, इसे कोई नहीं जान सकता पर हाँ, ईश्वर अंतर्यामी भगवान सर्वज्ञ है अतः वे सब कुछ जानते हैं या मृगमरीचिका के समान मायामय पदार्थों का मोह त्याग कर जिन्होंने निजात्मा और चंचल मन को स्वाधीन करके आनंदनिधि भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया है, ऐसे योगी-जन, जान सकते हैं कि भविष्य की बातों को और जो प्रभु-प्रेमी, मंगलमय भगवान के चरणों के प्रेमसागर में गहरे गोते लगाते रहते हैं, जो अनंत वैभव के अधिपति होते हुए भी अपना कुछ नहीं समझते, किंतु त्वदीय वस्तु गोविंद तुभ्य मेव समर्पये-

कबीर मेरा मुझ महि किछु नही जो किछु है सो तेरा।।
तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागै मेरा।। (पन्ना **1375**)

के अनुसार अपनी समस्त विभूतियों की जनता जनार्दन के हित में अर्पण करते रहते हैं, वे प्रभु-प्रेम में मग्न महात्मा, जान लेते हैं भविष्य की समस्त बातों को।

बात 17 जनवरी सन् 1967 की है। महापुरुष महंत आत्मा सिंह जी अपने कमरे और गद्दी वाले स्थान के दरम्यान सीमेन्ट का छः फुट लम्बा तख्त बनवा रहे थे। दिन के 10 बजे थे, प्रेम-दीवाने अपने अनन्य प्रेमी, चरण-सेवक, संत करतार सिंह जी को प्रसन्न मुद्रा में बोले-करतार सिंह जानते हो यह तख्त मैं क्यों बनवा रहा हूँ? नहीं महाराज, मैं नादान क्या जान सकता हूँ आपके हृदय की बातों को, क्या कोई जान सकता है अनंत सागर के अंतस्थल में क्या छिपा पड़ा है, संत करतार सिंह जी ने नम्रतापूर्वक कहा। अच्छा! तो सुन ले कान खोलकर-मैं इसी पर मरूँगा, इसी स्वनिर्मित तख्त पर ही विश्वशरण मेरे सर्वस्व दयार्द्र सुख-सागर प्रभु के चरणों में अर्पित करूंगा, अपनी अंतिम श्वासों को।

सो आपने 8 अगस्त सन् 1973 को शरीर छोड़ा तो तीन घंटे पहले इसी तख्त पर आ विराजे, ये दूर दृष्टि वाले महान आत्मा।

सात वर्ष पहले ही जान लिया था आपने भविष्य के अंतर्निहित इस बात को।

नोट– इस बात को उचित स्थान पर लिखना भूल गया था, मैं इस रहस्य का उल्लेख करना बिलकुल ही न भूल जाऊँ इसलिये यहाँ लिख दिया याद कराने पर।

आज से सत्रह दिन पहले आपके गुरुभाई संत मदन मोहन सिंह जी (बोलचाल का प्रसिद्ध नाम सन्त मदनहरि जी) 6 अक्तूबर को शरीर छोड़ गए थे। उनकी सत्रहवीं पर आपने कनखल में अखंड पाठ करवाकर समष्टि भंडारा किया, उस पर कुल 2154 रुपये खर्च आया।

सत्ताईस अक्तूबर को पुनः पाठ कर सर्व संतों को ऋषिकेश में भंडारा दिया जिस पर 2010 रुपये खर्च आया। इनमें से 100 रुपये गऊशाला में दान दिया।

18 नवंबर सन् 1969 को

300 रुपये महन्त हरदयाल सिंह ठाकुर जी, अमृतसर को दिया। 200 रु० जो चेक महंत हरदयाल सिंह जी को 12 अक्तूबर को दिया था उसमें से महंत हरदयाल सिंह जी के कहने पर ज्ञानी करनैल सिंह जी को 200 रुपये दिए। 13-10-69 को बाकी आज म० हरदयाल सिंह जी को नकद दिया।

25 रु० महंत हरदयाल सिंह ठाकुर जी की पूजा की।

29 नवम्बर सन् 1969 को आप महंत हरदयाल सिंह जी के मकान के बारे में संत नारायणसिंह जी को साथ लेकर अमृतसर गए।

15 रु० श्री दरबार साहिब में कड़ाह प्रसाद के लिये अर्पण किए।

30-11-1969 को बाबा मिशरा सिंह के डेरे में महंत साहब महंत हाकिम

सिंह जी से मिलने गए। उसी दिन शाम को चलकर 1 दिसम्बर को कनखल आ गए।

सन् 1970

महंत आत्मा सिंह जी महाराज ने अपनी कुल चलाचल सम्पत्ति की वसीयत 24-4-1970 को संत नारायण सिंह जी के नाम कर दी थी।

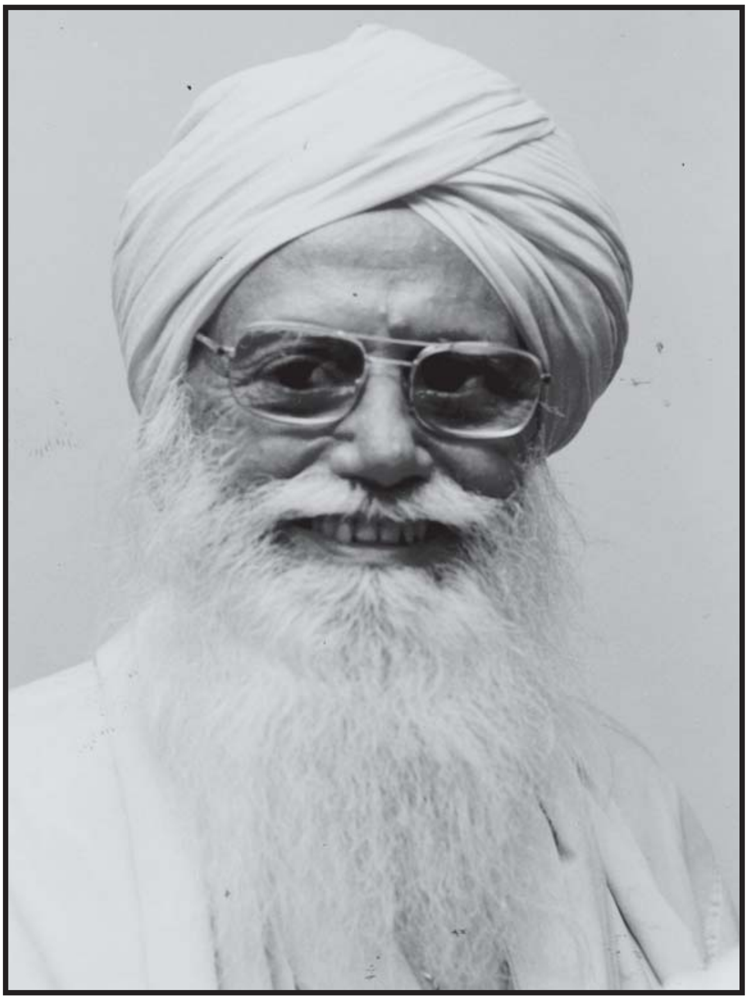

महंत नारायण सिंह जी महाराज

महंत आत्मा सिंह जी की नज़रों में कोई अन्य व्यक्ति गद्दी के योग्य नहीं था। यदि वह संत नारायण सिंह जी से अनुरोध करते तो असमर्थता प्रकट करते और वे इनकार कर देते परन्तु वह महंत योग्य इन्हें ही अधिकारी मानते थे। अतः वह एक दिन बिना संत नारायण सिंह जी को सूचित किए, संत करतार सिंह जी को साथ लेकर चुपके से देहरादून होते हुए 24-4-70 को सहारनपुर एडवोकेट रामगोपाल के यहाँ पहुँचे। उन्हें सारी बात समझाई और संत नारायण सिंह जी के नाम वसीयत लिखने को कहा। इसके लिए वे कुल कागजात साथ ले गए थे। संत नारायण सिंह जी के नाम कुल चलाचल सम्पत्ति की वसीयत करवाई और जज साहिब के सामने उसे अदालत के अधीन लाकर रख दिया ताकि न किसी को पता चले और न कोई उसे निकाल सके। यहाँ तक कि संत नारायण सिंह जी को उसका पता नहीं चलने दिया। उसकी नकल कच्ची वसीयत अपने पास तिजोरी में रख ली। अंत के दिनों में केवल पाँच दिन पहले संत नारायण सिंह जी को कुल बात बताई।

यह वसीयत 24-4-1970 में लिखी गई थी। यह वास्तविक वसीयत महंत नारायण सिंह जी को अदालत से एडवोकेट रामगोपाल मेहरा के तसदीक करने के बाद 10-9-73 को मिली थी पर मुझे इसका पता 26-9-73 तक लिख चुकने के बाद लगा और कागज लेकर आज लिखा।

❑

तरंग 61

सन्त हृदय नवनीत समाना

शीशम का पेड़ ज्यों-ज्यों पुराना होता जाता है त्यों-त्यों उसका रंग अधिकाधिक लाल होता चला जाता है।

इसी प्रकार उदार चरित महामानव के हृदय पर भी आयु की वृद्धि के अनुसार प्रेम के रंग की लालिमा बढ़ती जाती है। प्रभु-भक्ति का रंग तेज़ होता जाता है। इतना ही नहीं प्रत्युत महापुरुषों की मानवता के प्रति प्रेम और उपकार भावना भी उत्तरोतर तीव्र होती जाती है। भर्तृहरि की यह सूक्ति 'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः' सांसारिक लोगों पर ही लागू होती है, प्रभु रंग में रंगे हुए प्रेम दीवाने मस्ताने महात्मा पर नहीं। इसके उदाहरण पुरातन पुस्तकों में अनेकानेक स्थानों पर मिलते हैं। अति दूर की बात नहीं, बात समीप की है-अकबर के जमाने के महान् संगीताचार्य संत हरिदास को बादशाह अपने दरबार में बुलाकर उसका संगीत सुनना चाहता था, पर वह बीतराग महात्मा तो संगीत सुनाते थे अपने प्रभु प्यारे को, जो प्रेम की तान को ही कान लगाकर सुनते हैं अन्य स्वार्थी संगीतों की ध्वनि उनके कान में नहीं पहुँच पाती। पर चूँकि उनके मानस पटल पर रंग चढ़ चुका था प्रेम का, मंजीठ का पक्का रंग, फिर वे क्यों सुनाने जाते माया के कीड़ों को अपना प्रेम संगीत ?

यह परम सत्य है कि जो वस्त्र मंजीठ के रंगलला में रंगा जाता है उस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता। इस प्रकार प्रभु-प्रेम के रंग से रंगीन हृदय पर माया मोहिनी का रंग नहीं चढ़ सकता, पर यह रंग चढ़ता है भाग्यवानों के हृदय पटल पर ही, इसी रंग की महिमा में लिखा है गुरु अर्जुन देव महाराज ने-

लाल रंगु तिस कउ लगा जिस के वडभागा।।

मैला कदे न होवई नह लागै दागा।। (पन्ना **808**)

वह लाल रंग कभी मैला नहीं होता, उसकी शोखी में कभी कमी नहीं आती और दाग भी किसी किस्म का उस पर नहीं लग पाता। गुरु नानक देव जी ने कहा है कि ऐसा रंग कहीं देखा नहीं है पर इस रंग के लिए पीतल-पात्र की जरूरत नहीं पड़ती। इसके लिए तो इस कमनीय काया को ही पात्र बनाना होता है।

काइआ रंङणि जे थीऐ पिआरे पाईऐ नाउ मजीठ।।

रंङण वाला जे रंङै साहिबु ऐसा रंगु न डीठ।। (पन्ना **727**)

हाँ ! ऐसा ही रंग चढ़ा था हमारे महंत आत्मा सिंह जी की अमल आत्मा पर। वह कैसे उतर जाता माया मोहिनी के खारे पानी से? भले ही उनके पास माया लाखों की संख्या में थी, अतुल धनराशि थी, इमारतें थीं, पार्क थे पर वह उन्हें अपना नहीं मानते थे। वह कहा करते थे-यह धन धरती तो मेरे प्रभु-प्यारे की है, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक भुवनेश्वर की है। वह ही इसके एक मात्र स्वामी हैं, मेरा क्या है इसमें। वह तो इस मायामय जल में कमल की तरह निर्लेप रहते थे, गुरु नानक देव जी ने कहा है-

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे।।

सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे।। (पन्ना **938**)

उन पर चढ़ चुका था प्रभु-प्यारे के प्रेम का रंग। अतः वह माया विरचित भव सागर में रहते हुए भी पुष्कर-प्लाशवत निर्लेप रहते थे, माया के मोहक पदार्थों से।

क्योंकि उनकी सुरति तो लगी रहती थी शब्द के साथ 'ओम सोऽहं'- शब्द के साथ, फिर कैसे पर्दा डाल सकती थी माया उनकी रोशन आँखों पर। वह दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से दूर थे। वह दुनिया के बाज़ार में आए थे मगर खरीदार बनकर नहीं।

दुनिया में हूँ दुनियादार नहीं हूँ।

बाजार से गुजरा हूँ खरीदार नहीं हूँ।

वह माया मोहिनी के पदार्थों से पूर्णतया वितृष्ण थे। तृष्णा की गर्म हवा उनके हिम-शीतल हृदय को पिघला नहीं सकती थी, या यों कहिए कि उनका हृदय हिमाचलवत अचल था, अडोल था, फिर तृष्णा की झंझावात कैसे हिला सकती थी उसे।

दूसरी बात कही थी महा मानव के बारे में। उपकार भावना या मानवता के प्रति प्रेम की, थोड़ी झाँकी उसकी भी देख लें-

27 अक्तूबर को अपने गुरुभाई मदनहरि जी के निमित्त भंडारा किया। उसमें संत आश्रमों के तो सब महात्मा आ गए पर जिनका कोई आश्रम नहीं, कोई कुटिया-कंदरा भी नहीं, जो बेचारे आकाश की नीलिमा के तले धरती मां की नग्न छाती पर चीथड़ों में लिपटे हैं, उन धरा धान्य, धन धाम एवं मान विहीन दीनों को कौन जाता है निमंत्रण देने। कौन पूछता है उनके दुख-सुख की बात, कौन देता है उन्हें दान-दक्षिणा, कौन देने जाता है उन्हें दवा-दारू, कौन पिलाने जाता है उन बीमार बेचारों को दूध, वे बेचारे मातृ विहीन तो धरती माँ से ही माँगते हैं दूध।

दूध की बात लिखते हुए मुझे अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के एक मंत्र की स्मृति हो आई। मंत्र है-

यामश्विन्तावभिमाता विष्णुर्यस्यां विचक्र मे।।
सा नो भूमिर्विसंसृजता माता पुत्राय मे पयः।।

अश्विनी कुमारों ने जिसे मापा, विष्णु भगवान ने जिस पर भ्रमण किया वह भूमि माता मुझे उस ममता के साथ दूध पिलाए जैसे माँ अपने प्रिय पुत्रों को पिलाती है।

पर हाय! पृथ्वी माँ कहाँ से पिलाए दूध। उसके पास तो वही दूध की शुभ्रधारा है जिसके किनारे पड़े वे बेचारे तारे गिन गिन कर रातें बिताते हैं।

हाँ ! तो कौन याद करता है उन्हें, उन दयार्द्र हृदय महात्मा के सिवा जिन्हें परमात्मा ने स्वयं भेजा है इन अनाथों की सेवा के लिए। बस अगले दिन ये

महापुरुष चल पड़े त्रिवेणी घाट की ओर जहाँ पड़े हुए थे समस्त संसार से उपेक्षित ये नर कंकाल। सड़क के दोनों ओर कुछ पेड़ों के सहारे बैठे हुए हैं बेचारे ये मानव शरीर के ढाँचे। इन्हें देखने के लिए आप महावृक्ष पीपल के पेड़ के तले आखिर एक सीढ़ी पर खड़े हो गए और उन्हें स्नेह-पूर्ण नैनों से निहारने लगे। उन बेचारों के चिपके हुए चेहरे और पीठ के साथ लगे पेट को देखकर इनका हृदय विदीर्ण होता जा रहा था, हृदय की वेदना से विचलित हो उठी इनकी कोमल निर्मल आत्मा। सचमुच आपका हृदय,

सन्त हृदय नवनीत समाना

तुलसी के इस वचनानुसार मक्खन के समान कोमल था। इनका हृदय जो फूट पड़ता था किसी के किंचित मात्र दुःख को देखकर। महात्माओं का अपना दुःख तो कोई होता ही नहीं। उनकी हृदय गुफा तो दूसरों के दर्द से ही भरी रहती है। उर्दू के शायर अमीर ने कितना अच्छा कहा है-

खंजर चले किसी पे तड़पते हैं हम अमीर।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है।

इनका अपना तो कोई होता नहीं, पर सारी दुनिया के साथ हमदर्दी तो होती ही है इनकी, किसी शायर ने कहा है-

अगर कोई हमारा नहीं तो कुछ ग़म नहीं।
दर्द हमदर्दी के हमारे कम नहीं।

चूँकि आपके कोमल हृदय पर करुण रस का राज था, फिर वह अधीर कैसे न हो जाता इन दुखियों को देखकर। सो रोते हुए हृदय से आपने अपने प्रिय शिष्य संत नारायण सिंह जी को कहा-नारायण सिंह! कुछ रेजगारी (सिक्के) है तुम्हारे पास? नारायण सिंह जी ने झोला आगे करते हुए कहा-हाँ महाराज! हैं चार-पाँच रुपये के छोटे-मोटे सिक्के। बस दीन हीन हितकारी महात्मा ने झोले में से मुट्ठी भरी और बाँटने लग गए। फिर क्या था झुंड के झुंड जमा हो गए, हाथ फैलाए हुए भिखारियों के याचक जन आगे आते गए झोला खाली हो गया, पर

इतना अच्छा हुआ कि पैसे सबको मिल गए, वरना पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता महात्मा को। अस्तु वे यहाँ के दर्दों को हृदय में समाकर पहुँच गए अपने डेरे पर।

रात को उनसे खाना नहीं खाया गया। संत नारायण सिंह जी ने अनुनय विनय करके मुश्किल से उन्हें थोड़ा दूध पिलाया। नारायण सिंह जी को सोने की आज्ञा देकर वे जाकर बिस्तर पर लेट गए। पर नींद कहाँ दुखियारे नैनों को, उनके हृदय सागर में किस्म-किस्म की तरंगें उठती रहीं। चार बजे संत नारायण सिंह जी ने स्वयं स्नान किया। फिर गर्म जल से उनको स्नान कराया। प्रातः नित्य नियम का पाठ कर खाली हुये तो नारायण सिंह जी को बुलाया और कहा-भंडारों से बचा हुआ मदनहरि का आठ हजार रुपया अभी बाकी है। मेरी इच्छा है उसे इन किस्मत के मारों की सेवा में लगा दें। सो बोलो तुम्हारी क्या राय है? मैं क्या कह सकता हूँ महाराज। जो आपकी रज़ा में हो उसी में राज़ी हूँ, उसी में प्रसन्न हूँ। संत नारायण सिंह जी ने हाथ जोड़कर कहा। मैं उन दिनों वहीं था। वह मुझ से बोले - क्यों अरविंद जी ! उस बची हुई माया को यदि इन बेबसों की सेवा में लगा दें तो अच्छा उपयोग होगा उस बची हुई धन राशि का। अपने कृपण स्वभाव के अनुसार मैंने कहा- महाराज आप झुग्गी झोपड़ी में थोड़ा ही बैठे हैं, यह तो एक महान आश्रम है आपका। राज महलों के समान भव्य भवन है यहाँ इस में हजार प्रकार के खर्च पड़ते रहते हैं, अतः संभाल कर रखिये इसे, किसी काम में आ जाएगा। व्यर्थ फेंकने से क्या लाभ? वह अपने उदार स्वभाव से बोले-गलत कहते हो हकीकत सिंह, मुझे पसंद नहीं तुम्हारा कहना। तुम मकान के खर्च की चिंता करते हो, मकान के तमाम खर्च के लिए पर्याप्त पूँजी है। यहाँ प्रभु-कृपा से सब काम होते चलेंगे। चिंता की जरूरत नहीं। दूसरी बात है कि पैसा लोकोपकार पर ही लगना उचित है।

संग्रह की प्रवृत्ति

वह फिर दृढ़ता के साथ बोले-तुम्हारे कहने का भाव तो अरविंद जी यह निकलता है कि इसे जमा कर दें। पर जमा की आदत से ही तो संग्रह की प्रवृत्ति का जन्म होता है। इसलिए संत-जन तो यह कहते हैं-

पूंजी पंड उतार कर हो मन हौल चट्ट।
जो आवे सो खाय ले संग्रह की जड़ पट्ट।

यह पूँजी तो मनुष्य के मस्तिष्क पर बोझा है, भार है, इसे उतार फेंकने में ही कल्याण है। हलका हो जा मेरे मन ये हैं संतों के विचार। इस पर विचार कीजिए, यह एक ठोस सच्चाई है कि-संग्रह ही सब बुराइयों की, अनर्थों की, गुनाहों, दुर्गुणों और पापों की जड़ है। इसी से ही विविध प्रकार के अपराध, व्यभिचार, अनाचार, ऐयाशियाँ, दुराचार, ऐशो इश्रत, आराम तलबी आदि मिथ्याचार का आविष्कार होता है। छोटी-छोटी लड़ाइयाँ इस संग्रहीत सरमाए के कारण ही तो होती हैं। यहाँ तक कि विश्व-युद्धों का जन्म भी अति संग्रह ही से होता है।

शायद तुम्हें इसकी जानकारी होगी कि नहीं। लो याद कर लो, सब से पहले गुरु नानक ने ही इस घोर अपराध पर वज्र प्रहार किया है। उन्होंने डंके की चोट से इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि बिना पाप कर्मों के माया का संग्रह संभव नहीं है। वह आसा राग में कहते हैं--

पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई।। (पन्ना **417**)

गुरु नानक ने ये शब्द कब और क्यों कहे? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने के लिए आज से साढे चार सौ वर्ष पहले का एक लोभ हर्षक दृश्य देखना पड़ेगा। लो लौटो साढ़े चार सौ वर्ष के पहले ज़माने की ओर।

जिक्र सन् 1521 का है जब मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने ऐमनाबाद (लाहौर और अटक के दरम्यान महत्वपूर्ण स्थान) पर हमला किया तो

हिन्दु और वहां का शासक चाहते थे कि इस खुंखार बला के सामने झूका जाए ताकि यह जूल्मी बला दूर से ही आए और निकल जाए तो शहर का बचाव हो जाए। पर पीर-फकीर और सैय्यद् लोग जिनका यह प्रधानगढ़ था, ये कहते थे कि हम अपने जादू टोने और तन्त्र मन्त्र के बल से इन मुगलों को अन्धे कर डालेंगे। इन की बंदुक तोपों के मुंह बंद कर देंगे। दुसरे थे पठान सूरमे, जो इनके अन्धानुयायी थे, वे कहते थे कि हम हमलावरों को यहीं से पीछे लौटने पर मजबूर कर देंगे। ये बेचारे तो डींगे हांकते ही रह गए। बाबर के लड़ाकुओं ने दूर से ही तोपें दाग दीं और बंदुकों से गोलियों की बौछार करने लगे। याद रहे कि बंदूक और तोप उस समय के नवीनतम अस्त्र थे और पठानों के पास तीरों तलवारों और नेज़ों भालों के सिवा कोई कारगर शस्त्र नहीं था। वे बेचारे तीर कमान लेकर फ़सीलों पर चढ़ गए और तलवार नेज़े लेकर हाथिओं पर चढ़कर लड़ने लगे। पर उनके सामने कुछ न कर सके। बाबर की तोपों के गोलों ने किले की दीवारों में बड़े-बड़े सुराख कर दिये। बंदूकों की गोलियों से पठानों के सीनों को छलनी करते हुए मुगल सिपाही किले में घुस गए और शहर में ऐसा कत्ले आम किया कि हिन्दु, मुस्लमान, स्त्री, बाल वृद्ध आदि किसी को न छोड़ा, मौत के घाट उतार दिया। बेगमों और सेठानियों के गले के मोती-हार तोड़ डाले और उनकी जगह बेबस बेचारी बेगमों और नव विवाहित सुंदरियों के गले में रस्सियां और ज़ंजीरें डाल जकड़ लीं और उन्हें बालों से पकड़ कर बाजारों में घसीटा। इनके बच्चे और किशोर बालक रोटी के टुकड़ों को तरसते हुए रो चिल्ला रहे थे।

गुरु नानक देव जी ने उस समय के दर्दनाक दृश्य की फड़कती हुई दो तीन शब्दों में तसवीर उतारी। पाठकों की जानकारी के लिए मैं उन्हें यहां उद्घृत करता हूँ-

राग आसा महला १ असटपदीआ घर-३
१ ओंकार सतिगुर प्रसादि।।
जिन सिरि सोहनि पटीआ मांगी पाइ संधूरु।।
से सिर काती मुंनिअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलन्हि हदूरि।। १।।
आदेसु बाबा आदेसु।।
आदि पुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि देखहि वेस।। रहाउ।।
जदहु सीआ वीआहीआ लाड़े सोहनि पासि।।
हीडोली चड़ि आईआ दंद खंड कीते रासि।।
उपरहु पाणी वारीऐ झले झिमकनि पासि।। २।।
इकु लखु लहन्हि बहिठीआ लखु लहन्हि खड़ीआ।।
गरी छुहारे खांदीआ माणन्हि सेजड़ीआ।।
तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ।। ३।।
धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिन्ही रखे रंगु लाइ।।
दूता नो फुरमाइआ लै चले पति गवाइ।।
जे तिसु भावै दे वडिआई जे भावै देइ सजाइ।। ४।।
अगो दे जे चेतीऐ तां काइतु मिलै सजाइ।।
साहां सुरति गवाईआ रंगि तमासै चाइ।।
बाबरवाणी फिरि गई कुइरु न रोटी खाइ।। ५।।
इकना वखत खुआईअहि इकन्हा पूजा जाइ।।
चउके विणु हिंदवाणीआ किउ टिके कढहि नाइ।।
रामु न कबहू चेतिओ हुणि कहणि न मिलै खुदाइ।। ६।।
इकि घरि आवहि आपणै इकि मिलि मिलि पुछहि सुख।।
इकन्हा एहो लिखिआ बहि बहि रोवहि दुख।।
जो तिसु भावै सो थीऐ नानक किआ मानुख।। ७।। (पन्ना **417**)

कठिन शब्दों के अर्थ- पटीआ-पट्टि व पट्टिका। मांगी-मांग, माने मांगों में संघूर-सिंदूर। काती-कैंची-कतरने वाली छुरी वगैरह (आदि)। होदीआ अर्थात् उन महलों के सामने जिन महलों की ये मालिक थीं। हुण-अब, अब उन महलों के समीप भी बैठना नहीं मिलता। हीडोली-पालकी। दंद-खंड-हाथी दाँत के टुकड़े, भाव- हाथी-दाँत के चूड़े वगैरा, श्रृंगार की वस्तु। झल-पंखे-हवा के लिए। सिलकां-रस्सीयां, जंजीर आदि। मोतसरीआ-मोतीहार की लड़ीआं। सुरति-समझ। बाबरवाणी-बाबर के नाम की दूहाई। खुआईअहि- गंवाइ या जा रहा है, व्यर्थ जा रहा है।

आगे वाला शब्द भी पूर्वोक्त शब्द में उल्लिखित आक्रमण के समय ही लिखा गया है। जब गुरु नानक बाबर की कैद में पड़ कर गए और आगे बाबर के साथ बातचीत करके सब कैदियों को लेकर शहर में वापस आए तो शहर की दुर्दशा देखकर आगे वाला शब्द लिखा।

आसा महला १।।
कहा सु खेल तबेला घोड़े कहा भेरी सहनाई।।
कहा सु तेगबंद गाडेरडि कहा सु लाल कवाई।।
कहा सु आरसीआ मुह बंके ऐथै दिसहि नाही।। १।।
इहु जगु तेरा तू गोसाई।।
एक घड़ी महि थापि उथापे जरु वंडि देवै भांई।। रहाउ।।
कहां सु घर दर मंडप महला कहा सु बंक सराई।।
कहां सु सेज सुखाली कामणि जिसु वेखि नीद न पाई।।
कहा सु पान तंबोली हरमा होईआ छाई माई।। २।।
इसु जर कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई।।
पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई।।
जिस नो आपि खुआए करता खुसि लए चंगिआई।। ३।।

कोटी हू पीर वरजि रहाए जा मीरु सुणिआ धाइआ।।
थान मुकाम जले बिज मंदर मुछि मुछि कुइर रुलाइआ।।
कोई मुगलु न होआ अंधा किनै न परचा लाइआ।। ४।।
मुगल पठाणा भई लड़ाई रण महि तेग वगाई।।
ओन्ही तुपक ताणि चलाई ओन्ही हसति चिड़ाई।।
जिन् की चीरी दरगह पाटी तिन्हा मरणा भाई।। ५।।
इक हिंदवाणी अवर तुरकाणी भटिआणी ठकुराणी।।
इकन्हा पेरण सिर खुर पाटे इकन्हा वासु मसाणी।।
जिन् के बंके घरी ना आइआ तिन् किउ रैणि विहाणी।। ६।।
आपे करे कराए करता किस नो आखि सुणाईऐ।।
दुखु सुखु तेरै भाणै होवै किस थै जाइ रूआईऐ।।
हुकमी हुकमि चलाए विगसै नानक लिखिआ पाईऐ।। ७।।

(पन्ना **417-18**)

भेरी-वड़ा नक्कारा। सहनाई-शहनाई-नफीरी प्रसिद्ध वाद्य। तेग बंद-तलवार धारी योधा। गारेडर-गाडी रथ आदि पर सवार सिपाही। लाल-कवाई-लाल रंग का चोगा जिसे पहन कर वीर रणागण में जाते थे आरसीआं-शीशे वाले ज़ेवर को स्त्रियां अंगूठे में पहनती थी। हरमा-विवाहित स्त्रियां एवं दासियां। बिज-मंदर-पत्थरों से बने राज भवन। परचा-परिचय किसी पीर फकीर ने करामात का परिचय नहीं दिया जो यह कहते थे कि हम जादु मंत्र आदि से तोपों के मुंह बंद कर देंगे। मुगल अंधे हो जाएंगे, सो सब व्यर्थ की बातें थीं। तुपक-बंदूक, चीरी-चिटटी-पेरण औरतों के लम्बे चोले अमीर जातिआं पहनती थीं।

जिस तत्त्व की व्याख्या हम करते थे वह है-संग्रह की ओर प्रवृत्ति। संग्रह के प्रति अति अनुराग। माया के अति संग्रह पर गुरु नानक जी ने दो लाइनें पंक्तियाँ लिख कर प्रबल प्रहार किया। वे दो पंक्तियाँ हैं-

इसु जर कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई।।

पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई।। (पन्ना **417-18**)

बाबर द्वारा किए गए कत्लेआम का कारण धन संग्रह ही तो था। लोधियों ने पाप करके संग्रहीत किया था। इसे बाबर पाप कर्म करके अति संग्रह पर तुला हुआ था। इन दोनों ने तलवार के बल से अर्थ संग्रह किया और इन दोनों से ही तलवार की ताकत से ही यह जर (धन, दौलत) आखिर छिन भी गई। वे केवल पापों का भार सिर पर उठाकर ले गए और कुछ नहीं। उन पंक्तियों का अक्षरार्थ कर देना अनुचित न होगा-इस धन-दौलत के कारण-

'धणी' ज्यादा, बहुत दुनिया 'विगुती' माने ख्वार हुई।

इस माया की तृष्णा ही ने घणी खुआई बहुत लोभी लोगों को परमेश्वर के रास्ते से गुमराह कर पापों के मार्ग पर लगा दिया है। बाझहू बिना, अर्थात् क्रूरता पूर्ण पाप कर्मों के बिना यह जर, यह धन-सम्पत्ति, अति मात्रा में संग्रहीत नहीं हो सकती। इस पर तुर्रा (आश्चर्य) यह कि मरण काल में इसमें से एक कौड़ी भी साथ नहीं जाती।

याद रखिए यह जमाना समाजवाद का है। अतः इसे समाज-हित में लगाने में ही बुद्धिमत्ता है। यह भी याद होना चाहिए तुम्हें, कि शरीर का जो अंग निर्बल होता है, उसी को पुष्ट करने की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। तो ये गृह-विहीन वर्ग यानि घास-फूस से व टूटे-फूटे ,सड़े-गले टीनों से बनी छोटी-छोटी झोपड़ियों में गुजर करने वाले ये गरीब लोग भी समाज का निर्बल अंग हैं अतः इनकी सेवा अधिक उपयोगी है, आवश्यक है।

एक धार्मिक पहलू भी है इस पक्ष में, उस पर भी गौर करना चाहिए। वह यह कि मान लो कि एक पति-भक्त स्त्री, अपने पति के ग्राम को जा रही है। क्या उसे रास्ते में रोक देना पाप नहीं माना जाएगा? मैंने कहा अवश्य माना जाएगा। वे बोले-यह देखते हो गंगा बह रही है, युग-युगांतर से बहती चली जा रही है अपने पति सागर से मिलने के लिए। यदि इसे रास्ते में रोक दिया जाए

तो कितना अनर्थ हो जाएगा। हजारों ग्राम बह जाएगे, घड़ी दो घड़ी में ही इसके प्रबल प्रवाह में।

इसी प्रकार लक्ष्मी देवी की अधिक प्रीति है विष्णु के चरणों मे, अतः वह विष्णु जी की चरण-सेवा में जाना चाहती है। उसे जमीन में गाड़ देने से पाप नहीं होगा? जी हाँ, अवश्य होगा, मैंने हाथ जोड़कर कहा। वह प्रगाढ़ विश्वास के साथ बोले-तो यह समाज भी विष्णु भगवान का रूप ही तो है। विष्णु का विराट् स्वरूप, यह समाज ही तो है। बस इसी समाज रूपी विष्णु की सेवा में लगाना चाहता हूँ लक्ष्मी देवी को, इसको कैद में डाले रखना सामाजिक बुराई है। अतः मैं इसके संग्रहालय में सुराख कर देना चाहता हूँ, छिद्र कर देना चाहता हूँ, इसका मार्ग प्रशस्त करने के लिए।

और सुनो, मेरी अंतरात्मा से एक और आवाज़ आ रही है और वह यह कि अब इसको कैद में रखना कठिन काम है। न केवल यह मेरी आवाज़ है, बल्कि नवयुग का उद्घोष है। यह अब तो तिजोरियों, तहखाने को तोड़कर बाहर आने को बेताब है । वह यहाँ तक कि जमीन में गाड़कर रखने वाले भी इसे रोके नहीं रख सकते। उन्हें भी जमीन से बाहर निकाल कर रख देना पड़ेगा वरना भूकंप उसे निकाल कर बाहर फेंक देगा। मैंने सिर झुकाकर कहा-सत्य है महाराज। इतने में संत नारायण सिंह जी उनका भोजन लेकर आ गए और मुझे भी कहा-चलिए, भोजन कर लीजिए। बस बात यहीं समाप्त हो गई।

13 दिसम्बर को नित्य कर्म से निवृत्त होकर बैठे तो संत करतार सिंह जी ने उन्हें चाय दी, चाय पीकर बोले नारायण सिंह को बुलाओ। नारायण सिंह जी ने हाथ जोड़कर कहा-क्या आज्ञा है? महाराज बोले-जाओ त्रिवेणी घाट पर तमाम साधु ,फकीरों को चाय, नाश्ते का निमंत्रण दे आओ। घाट पर बैठने वाले बेघरों को और जो कुटी, झोपड़ी-झुग्गी आदि में रहने वाले हैं उन सब को। संत नारायण सिंह जी आज्ञानुसार सबको निमंत्रण दे आए। 14 दिसम्बर सन्

1969 को सवेरे 8 बजे लगभग 100 सौ साधु, संत, वृद्ध, बच्चे और माइयों का जमघट लग गया निर्मल आश्रम में। उन्हें 4-4 जलेबियाँ और आधा-आधा किलो चाय देकर कहा कि पूरी सर्दी के मौसम के लिए है ये निमंत्रण, हर रोज़ इसी समय आकर चाय पिया करो।

8 अप्रैल सन् 1970 को संत नारायण सिंह जी ने सूचना दी कि संत मदनहरि जी वाला कुल पैसा खत्म हो गया है, बंद कर दिया जाए क्या चाय क्षेत्र को? महाराज ने कहा-अच्छा ! मदनहरि जी का खजाना खत्म हो गया है तो होने दो, तुम्हारा कोष तो भरपूर है ना? जी हाँ महाराज, वह तो आपकी कृपा से भरपूर है। संत नारायण सिंह जी ने मुसकराते हुए कहा, अच्छा तो तुम्हारे कोष रूपी हिमालय में छेद कर दिया है मैंने, हिमालय का यह दूसरा चश्मा (चाय का सदावर्त) भी गंग-धार के साथ निरंतर चलता रहेगा, कम से कम मेरी ज़िंदगी तक इसे बराबर चलना ही होगा, आगे तुम्हारी मर्जी।

बस तब से चल रहा है यह अपनी मनोरम गति से।

इसी दौरान आपने संत मदनहरि के निमित 125 रु० का कड़ाह प्रसाद कराकर पंजाब सिंध क्षेत्र में बाँटा 11-2-70 को।

2 दिसम्बर सन् 1970 को नारायण दास पंजाबी का पत्र आने पर आप बम्बई के लिए प्रस्थान कर गए।

461 रुपये निर्मल अखाड़े के श्री महंत साहिब को भेजा। ता० 11-1-71 को चूँकि इस साल प्रयाग की अर्द्धकुंभी का मेला था पर आप इस पर न जा सके और श्री महंत पंडित सुच्चा सिंह जी को निर्मल पंडाल में 700 रुपये भंडारा के लिए चेक बम्बई से भेज दिया था।

संत नारायण सिंह जी रामायण की चौपाइयाँ मधुर स्वर में गा कर कथा करते थे। कथा की भाषा भी होती थी सीधी सादी, यानि बोल चाल की भाषा जो आसानी से आम लोगों की समझ में आ जाती थी अतः सब लोगों को आती

थी। इस तरह बम्बई में भक्ति ज्ञान का यह स्रोत अढ़ाई मास तक जारी रहा। एक ओर यह भक्ति का शीतल चश्मा और दूसरी ओर थे भक्तों की अच्छी अभिलाषाओं को पूरी करने वाले कल्पतरु महाराज आत्मा सिंह जी। इस प्रकार बम्बई में प्रभु-नाम और सद्विचारों का पीयूष पिलाकर आप 14 फरवरी सन् 1971 को बम्बई से देहली आ गए। यहाँ दो दिन रह कर, 17-2-71 को वापस कनखल आ गए।

3-3-1971

195 रु० हरिद्वार यात्रा करने गए।

25 रु० पंच परमेश्वर की पूजा, निर्मल अखाड़े में।

11 रु० कड़ाह प्रसाद की खातिर दिए।

11 रु० गद्दी की पूजा।

43 रु० सन्तों और विद्यार्थियों को।

5 रु० गुरुद्वारा तीसरी पातशाही।

19-3-71

39 रु० श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल को दिए।

30-3-71 लखनऊ होकर इलाहाबाद में पहुँचे। पीली कोठी निर्मल अखाड़ा में।

11 रु० पंच परमेश्वर की पूजा की।

5 रु० महंत दीदार सिंह जी की पूजा।

5 रु० गुरुद्वारा में पूजा।

11 रु० रम्मत अखाड़ा निर्मल की पूजा काशी जी में।

5 रु० गुरुद्वारा काशी जी की पूजा।

2 रु० सेवादारों को इनाम।

19-4-71

11 रु० श्री महंत निर्मल अखाड़ा की पूजा पंच की यात्रा करने गए।

5 रु० ज्ञानी बिशन सिंह जी क्रीट की पूजा।

15-5-71

बनारस में आपके गुरुभाई पंडित अर्जुन सिंह जी बीमार थे, आपको इस बात का पता चला तो दयावश होकर उनकी सेवा सुश्रूषा के वास्ते संत करतार सिंह जी को काशी भेजा। जब तक प्रसन्न होकर भिक्षु जी ने संत करतार सिंह जी को वापस होने की आज्ञा नहीं दी वे वहीं उनकी सेवा करते रहे।

505 रु० भिक्षु जी की बीमारी आदि के खर्च के लिए दिया।

23 रु० संत करतार सिंह जी का किराया।

20-7-71

आप जहाँ जन साधारण पर दया का भाव व प्रेम रखते थे, वहाँ आपके हृदय सागर में गुरु भक्ति का ज्वारभाटा रहता था। आप

गुरु परमेसरु एको जाणु।। (पन्ना **864**)

के अनुसार गुरुदेव की पूजा भक्ति भी परमेश्वर समझ कर ही करते थे। आपने अपने शहनशाही स्वभाव के अनुसार गुरु बाबा महंत बुढ्ढा सिंह जी की याद को हमेशा ज़िंदा रखने के लिए-

32001 रु० अमानत बुनियादि खाता श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल द्वारा चेक नंबर 567129 तारीख 26-4-71 पंजाब नैशनल बैंक कनखल सेविंग खाता में रख दिया। इस रकम के ब्याज से प्रतिमास श्री गुरु ग्रंथ जी का सहज पाठ,कड़ाह प्रसाद रोज़ाना और पूजा पाठ होता रहेगा। यह रकम सदा के लिए जमा रहेगी और महंत श्री बाबा बुढ्ढा सिंह जी के निमित्त ऊपर लिखा खर्चा सदैव होता रहेगा और बाबा बुढ्ढा सिंह जी के नाम की अरदास होती रहेगी।

नोट-यह रकम निर्मल पंचायती अखाड़ा की बही रोज़नामचा पन्ना 110 पर जमा है।

30 रु० महंत आत्मा सिंह जी शहनशाह, महंत त्रिलोक सिंह जी सुभाश

घाट, ज्ञानी बिशन सिंह जी किरीट हरिद्वार की पूजा।
तारीख 5-8-71

100 रु० 22-8-71 को रामकृष्ण सेवाश्रम हरिद्वार को प्रदान किए, हस्ते स्वामी सेक्रेटरी रामकृष्ण मिशन कनखल।

5-9-71 को गुरुद्वारा तीसरी पातशाही वा

30 रु० निर्मल पंचायती अखाड़ा की यात्रा करने गए वहाँ पूजा की।

5 रु० गुरुद्वारा में रागियों को अरदास कराए।

24 रु० पंचायती निर्मल अखाड़ा के श्री महन्त की पूजा, उन्हें मिलने गए थे।

14 सितम्बर सन् 1971 को

136 रु० 16 सितम्बर सन् 71 को श्री बाबा बुढ्ढा सिंह जी महाराज की वर्षी अति उत्साह के साथ मनाई। डबल भण्डारा किया। भण्डारा के खर्च के अलावा।

125 रु० श्री महंत निर्मल अखाड़ा कनखल की पूजा।

600 रु० पंगत पूजा (सब भोजन पाने वाले संतों को दक्षिणा)।

151 रु० साप्ताहिक पत्र निर्मल उद्देश्य अमृतसर की सहायता।

250 रु० 17-12-71 को रक्षा फण्ड में दिए, भारत सरकार को।

❑

तरंग 62

आदर्श वर्षी सन् 1972 ऋषिकेश में क्यों ?

संत नारायण सिंह जी ने इस वर्ष मुझे पन्द्रह दिन पहले 20 सितम्बर को पत्र लिखा कि आप दस दिन पहले ही यहाँ आ जाना। इस वर्ष की वर्षी ऋषिकेश में मनाने का महाराज का विचार है। आते हुये ज्ञानी बिशन सिंह जी किरीट को भी हरिद्वार से साथ लेते आना। तदनुसार मैं 25-9-1972 को चलकर 26 तारीख को हरिद्वार पहुँच गया। अगले दिन ज्ञानी किरीट जी से मिलकर सन्त नारायण सिंह जी का पत्र सुनाया, उस दिन किरीट जी को कुछ काम था। परिणाम स्वरूप हम दोनों 28-9-72 को ऋषिकेश पहुँचे। जलपान करते हुए हम लोगों ने संत नारायण सिंह जी से पूछा अब की वर्षी ऋषिकेश में क्यों मना रहे हैं जब कि अब तक कनखल में ही मनाई जाती रही? संत जी ने कहा-मुझे तो कुछ मालूम नहीं महाराज ही इसका उत्तर दे सकते हैं। उस दिन तो शाम को हम भगवानपुरा में महंत चतुर सिंह जी से मिलने चले गए। अगले दिन प्रातःकालीन जलपान के बाद महाराज के दर्शन करने गए। मैं तो संकोचवश चुप रहा पर ज्ञानी जी ने हिम्मत करके पूछ ही लिया-

महाराज ! इस साल वर्षी ऋषिकेश में मनाने का क्या सबब? अब तक तो कनखल मे ही मनाते रहे हैं? महाराज ने कहा-चलो कहीं भी मना ली इसमें क्या फर्क पड़ता है। पर ज्ञानी जी यों ही चुप रहने वाले नहीं थे। वे फिर बोले-महाराज कुछ कारण तो जरूर होगा। बिना वजह से किसी सिस्टम को बदला नहीं जा सकता। वे बोले अगर न बताने की बात हो तो कैसे बता दें। ज्ञानी जी ने कहा-न बताने की क्या बात है। क्या हमें डर है किसी का। हम कोई चोरी की

बात नहीं करते कि किसी का डर मानेंगे। उन्होंने कहा-चोरी की नहीं, ज्ञानी जी राज़ की बात है, बताने की नहीं। तो मैंने कहा-रहस्य की बात हम यदि आप जैसे मर्मज्ञ, श्रद्धेय महात्मा से नहीं पूछेंगे तो फिर कहाँ से? तो वह बोले-आग्रह करते हो अरविन्द जी तुम तो बता देते हैं, मगर आगे किसी को बताना मत। मैंने कहा-अच्छा, आपके जीवन काल में नहीं बतायेंगे किसी को, पर दूर भविष्य की बात सम्भव नहीं। तब उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में कहा- अच्छा आगे प्रश्न मत करना, वरना ठीक नहीं होगा। मैंने कहा, स्वीकार है-आज्ञा आपकी।

बस इतना ही कहा-हमें एक ही वर्षी मनानी है। बस जाइए भण्डारा तैयार है। हम तुरंत चले आए बात यहीं समाप्त हो गई। बाहर से संत महात्मा और भक्त लोग धड़ाधड़ चले आ रहे थे। विरक्त शिरोमणि पंडित निक्का सिंह जी महाराज, महा संगीतज्ञ ज्ञानी दरवेश जी के संकीर्तनी जत्थे और करनाल के प्रेमियों सहित पहुँच गए। सिन्धी भाई भी काफी संख्या में आ गये। गुरुवाणी कीर्तन की परम श्रद्धालु मोहनी देवी भी पहुँच गईं। नित्य प्रति दोनों समय कीर्तन होने लगा। दरवेश जी के साथियों ने और कीर्तन कोकिला मोहनी देवी ने वायु-मंडल को अमृतमय बना दिया था। 4-10-72 को चार बजे से ही आसा की वार का कीर्तन दरवेश जी ने शुरू किया-फिर बाकी 4 श्लोक आसा की वार का कीर्तन मोहनी देवी सिन्धी ने किया। पाठ की समाप्ति के बाद आरती अरदास हुई। फिर एक शब्द का कीर्तन दरवेश जी ने और एक शब्द का-

भागठड़े हरि संत तुम्हारे जिन् घरि धनु हरि नामा।। (पन्ना **749**)

को मोहनी देवी ने अति मधुर स्वर में गाया। इसके अनन्तर विद्वान् महात्माओं के श्रद्धांजलि भाषण आरम्भ हुए। मंच मन्त्री की सेवा निबाह रहे थे, महंत बिशन सिंह जी किरीट। सबसे पहले विरक्त शिरोमणि श्री श्री 108 पंडित निक्का सिंह महाराज से प्रार्थना की कि आप श्री गुरु ग्रंथ साहिब के एक शब्द की व्याख्या करने की कृपा करें तो विरक्त जी महाराज ने गुरुवाणी के एक शब्द

की सुन्दर व्याख्या की। सभी समागत श्रोतागण आनंदित हुए।

विरक्त जी ने किरीट जी से कहा कि पहले आप श्रद्धांजलि अर्पित कीजिए। आपने कहा कि महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी ने सम्वत् 1904 में मुलके मुकद्दस हिन्द की ज़मीं (भारत की पवित्र धरती) पर कदमे मुबारक (मुबारक चरण) रखा। वे 72 वर्ष के लम्बे अरसे (समय) तक दुनिया में रहे। 12 साल की उम्र में श्री ठाकुर दयाल सिंह जी की खिदमत (सेवा) में उनके माता पिता ने सौंप दिया था। ठाकुर जी ने अपने गुरु भाई संत बाबा धर्म सिंह जी के सुपुर्द (देख-रेख) कर दिया। बाबा धर्मसिंह जी ने इन्हें निर्मल मत में दीक्षित किया। जब तक बाबा धर्म सिंह जी की ज़िन्दगी रही तब तक यह उनकी खिदमत (सेवा) में हाज़िर रहे। उनसे आपने श्री गुरु ग्रंथ साहिब ,गुरु प्रताप सूरज, भाई गुरुदास जी की बाणी, दशम ग्रंथ आदि गुरुमत के ग्रंथ पढ़े। उनके गुज़र जाने के बाद काशी जाकर संस्कृत की तालीम (शिक्षा) हासिल (प्राप्त) की। निर्मल अखाड़ा की बहुत अरसा (समय) सेवा की। यानी साठ साल तक पंजाब और सिन्ध को इल्मे रूहानियत की रोशनी से रौशन करते रहे। बस इन अलफाज (शब्दों) के साथ मैं उनके कदमें 'अकीदे इरादियत' पेश करता हूँ।

इसके साथ ही अपने निर्मल स्वामी पंडित मदन मोहन सिंह जी आयुर्वेदा-चार्य का नाम पेश किया। उन्होंने कहा कि ब्रह्मलीन बाबा जी महाराज जहाँ श्री गुरु ग्रंथ की वाणी के मर्मज्ञ विद्वान थे, वहाँ वे संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे वह जब कभी विद्वानों से बात चीत करते तो अनेकानेक नीति ग्रंथों के श्लोक और उपनिषदों के मन्त्र बोलते। उन्होंने अपने सदुपदेशों से लोगों को सद्धर्म की शिक्षा देकर सन्मार्ग पर चलाया। इन शब्दों के साथ मैं ब्रह्मलीन दिव्यात्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

तदनंतर मुझे आदेश हुआ, तब मैं तो इतना ही कह सका कि आदरणीय महानुभावों, पूज्य चरण श्री बाबा जी महाराज ने हमारे सामने भक्ति ज्ञान और

सेवा का आदर्श रखा। चूँकि वह अच्छे विद्वान, वक्ता और महान साधक थे अतः उन्होंने अपने अलौकिक भाषणों से भक्ति, ज्ञान और अनासक्ति योग का उपदेश दिया। वह महान साधक थे। उन्होंने अपनी साधना द्वारा जो कुछ अनुभव किया उसी का उपदेश जनता को दिया। उन्होंने अपने गुरुदेव एवं समाज की भरपूर सेवा की और सेवा का उपदेश भी दिया। पहले स्वयं आचरण किया, उसके बाद जिज्ञासुजनों को आदर्श जीवन बिताने का उपदेश दिया। यदि हम भी उनके उपदेशों पर आचरण करें तो हम भी अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। बस मैं 'वन्देमहापुरुष! ते चरणारविन्दम्' इस वाक्य के साथ महापुरुषों के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

इसके अनन्तर कई एक अन्यान्य सम्प्रदायों के महात्माओं ने विशुद्ध हिन्दी में अपने उत्त्मोत्तम भाव व्यक्त किए। एक बजे पंगतें लग गईं यथा महामंडलेश्वर रघुवीरदयाल जी आदि को पक्का भण्डारा दिया गया। दक्षिणा में सबको एक (1) रुपया और वस्त्र, फल दिए गए।

इसी प्रकार यह 35वीं वर्षी का समागम सफलता के साथ समाप्त हुआ।

101 रु० खर्चा वर्षी पर आगे लिखे अनुसार हुआ।

86 रु० जसोधी के पाठ की पूजा।

86 रु० भण्डारे के पाठ की पूजा।

214 रु० कीर्तन करने वाले रागियों को।

14 रु० के फूल-माला गुरुमहाराज और संतों के सत्कारार्थ।

151 रु० निर्मल उद्देश्य पत्र की सहायता।

30 रु० अन्य पाठ की पूजा।

500 रु० महात्माओं को दक्षिणा दी गई।

6-9-72 को तीसरे दिन हरिद्वार में, मैं और ज्ञानी जी उनके स्थान में चाय पी रहे थे। ज्ञानी बोले-महन्त जी ने कहा था-राज़ की बात है बताने की नहीं, पर इसके बाद ही कहा कि हम एक ही वर्षी मनायेंगे। तो एक वर्षी मनाना भी

कोई राज़ की बात है? मैंने कहा इसमें राज़ यह है कि वे अब केवल एक वर्षी मनायेंगे, दूसरी नहीं, एक ही वर्षी मनायेंगे। इसमें जो 'ही' शब्द है वह दूसरी का निवर्तक है और 'ही' शब्द अन्य का व्यावर्तक होता है। अगर वे राज़ शब्द न बोलते तो हम उसका आशय निकाल सकते थे कि दूसरी वर्षी कनखल में मनायेंगे, पर एक राज़, दूसरा 'ही' शब्द दोनों का प्रयोग किसी रहस्य को व्यक्त करता है। उन्होंने यह इंगित किया है कि वे अगली वर्षी से पहले ही शरीर छोड़ देंगे। इसीलिये तो कहा कि किसी को बताना मत। मनाही भी तो किसी राज़ को छिपाने वास्ते ही की जाती है। इन तीनों शब्दों से उन्होंने भविष्य की ओर इशारा किया है कि वे अब शरीर छोड़ देंगे आगामी वर्षी से पहले ही। ज्ञानी जी ने कहा-दलीलें तो आपकी ठीक हैं पर सही बात को तो भविष्य बतायेगा। 15 अगस्त 73 को मैं महंत बिशन सिंह जी हंसली वाले की सतरवीं पर अमृतसर पहुँचा तो ज्ञानी किरीट जी मिले, कहने लगे आपकी बात ठीक ही निकली। मैंने पूछा-क्या? तो उन्होंने दुःख व्यक्त करते हुआ कहा-कि महंत साहब महंत आत्मा सिंह जी का 9-8-73 को बैकुण्ठ वास हो गया। तो गर्म उच्छवास लेते हुए मैंने कहा कि मुझे तो पूर्ण विश्वास था कि उनकी भविष्य वाणी अन्यथा नहीं हो सकती। आपको याद होगा जब हम लोगों से बात करते हुये उन्होंने राज़ की बात कही थी कि हम एक ही वर्षी मनायेंगे, तो उनका राज़ यही था कि वे वर्षी से पहले ही जीवन लीला समाप्त कर देंगे।

एक बात सन् 1967 की नोट कर लीजिये! एक बात उन्होंने अपने लिए तख्त बनवाते समय संत करतार सिंह जी से कही थी करतार सिंह ! मालूम है तुझे यह मंच मैं क्यों बनवा रहा हूँ ? करतार सिंह जी ने कहा कि नहीं महाराज! मुझे तो नहीं मालूम तो उन्होंने कहा था कि मैं इसी पर मरूँगा-इसी पर मैं प्रभु का स्मरण करता हुआ अन्तिम श्वास छोडूँगा। यह बात सन् 1967 की है। जब मैं ज्ञानी जी के साथ महाराज की सतरहवीं पर आया तो निश्चय हुआ संत

नारायण सिंह जी से पूछने पर कि खुद आर्डर देकर बनवाए, इसी तख्त पर शरीर छोड़ा था महाराज ने। तब ज्ञानी जी ने कहा-धन्य थे वे महापुरुष, उनमें भविष्यत की बात को जान लेने की सिद्धि अवश्य थी।

मैंने कहा- ज्ञानी जी और सुनिये। चूँकि वे आदर्श गुरुभक्त थे जिस अगाध विश्वास एवं निष्ठा के साथ गुरुदेव की सेवा भक्ति की उसकी मिसाल दुनिया में कम ही मिलती है। उनकी गुरु भक्ति आदर्श थी। चूँकि उनके गुरुदेव का यह आदि स्थान था, यही प्रधान गद्दी थी इसलिये आखिरी वर्षी उन्होंने गुरुदेव के आदि स्थान पर मनाने का निश्चय किया। इसीलिये मैंने हैडिंग में आदर्श शब्द जोड़कर लिखा आदर्श वर्षी।

आपको वाक्सिद्धि की शक्ति प्राप्त थी। पर यह कहना कठिन है कि उनको भविष्य का ज्ञान योग शक्ति से होता था या आपके अन्दर इतना आत्मविश्वास ही अति प्रबल था कि जो कहते वह हो जाता था। इसका एक उदाहरण और मिलता है। वह यह कि एक सिन्धी देवी है। उसने महाराज के बैकुण्ठवास के बाद महंत नारायण सिंह जी को पत्र लिखा है, उसमें लड़की ने लिखा है कि महाराज के आशीर्वाद से ही मुझे पुत्र मिला और अनेक प्रकार के संकट उनके वचन से दूर हो गये। हम उसके पत्र को उसके सही शब्दों में दे रहे हैं। उसे ध्यान से पढ़िये। उस पत्र को हम अक्षरशः लिखते हैं। लड़की किक्री का पत्र-

एक ओंकार सतिगुरु प्रसाद। मेरा प्यारा लोक-परलोक का राखा पिता, बाबा नारायण सिंह साहिब जी! आपकी प्रेम पत्री अभी मिली, पढ़कर बहुत-बहुत खुशी हुई। आपकी आशीषों से मेरा परिवार हर तरह से खुश है। मेरे को अपने बाबा महंत साहिब जी की बहुत-बहुत याद आती है। मैं आपको भी कुंदी माई के घर में गुरु के तख्त पर बैठा, कथा करता देखती हूँ। मैं बाबा महाराज जी की जो कुछ मेरे ऊपर कृपा थी वर्णन नहीं कर सकती हूँ। मेरे को हमेशा कहते थे-किकरी बेटी, अपना घर ज़रूर होना चाहिए। उस वख्त तो मैं

बहुत अनजान थी क्योंकि मैं गवर्मेन्ट के घर में रहती थी। तो पता नहीं था कि घर की भी जरूरत पड़ती है। लेकिन जब मेरे पति रिटायर हुए तो मालूम किया कि बाबा तो सच बोलता कि तो अपना घर जरूर होना चाहिए। उसी में भी मेरे बाबा का कोई मतलब है। मुझे बाबा जी की दुआओं से घर अपना हो गया है। एक रहने के लिए और एक किराये पर दिया। बहुत अच्छा गुजारा होने लगा।

जब मेरी दो बेटी हुईं तो फिर तीसरा बच्चा आने वाला था। तो मैंने बाबा को चिट्ठी लिखी तो आशीष करो तो पुत्र जन्मे। बाबा ने अच्छा आशीषों से भरा खत लिखके भेजा।

जब पुत्र पैदा हुआ तो उसका नाम भी बाबा ने रखा मेहरचन्द, जो अभी तक मेहरचन्द बुलाया जाता है। बाबा की मेरे ऊपर अनन्त कृपा थी। मेरे में लिखने की शक्ति नहीं है। हमेशा कहता था मेहरचन्द बड़ा दीवान बनेगा। आज उसकी कृपा, आशीषों से सचमुच मेहरचन्द के घर पर तीन मोटर गाड़ी खड़ी हैं। बहुत लायक बेटा निकला है। अपने पिता की तन, मन, धन से बहुत सेवा की थी। जिनका शरीर तारीख एक जून महीने 1974 बीच छूट गया। मेरी बेटी चम्पा को भी हमेशा चम्पा रानी कह कर बुलाया था। उस की भी अशीषां की तो अच्छा वर-घर मिला।

चम्पा की शादी में बाबा जी को बुलाया था कि आ के शादी करवाओ। बाबा की तबीयत इतनी ठीक नहीं थी। बाबा ने महंत नारायण सिंह को भेजा। महंत नारायण सिंह जी ने आ कर धूमधाम से आनन्द मंगल सदर निजाम के महलात में करवाई। शादी 29 तारीख 1954 मार्च के महीने में हुई।

मेहरू का जन्म 10 जून 1937 में हुआ था। मैं बाबा जी की कितनी करामातें लिखूँ, पूरा किताब बन जायेगा। कभी भी कोई मुश्किल पड़ती थी तो मैं बाबा को लिखती थी। मेरे सब मुश्किल आसान हो जाती था। जब मेरे पति को आफिस की तकलीफ पड़ी नौकरी से फारग हो गया था। मैंने बाबा को चिट्ठी

लिखी मेरे को लिखा तो दिवान को-

थिरु घरि बैसहु हरि जन पिआरे।।

सतिगुरि तुमरे काज सवारे।। (पन्ना **201**)

शब्द का पाठ करने को बोले। जो रोज करना था, सब मुश्किल आसान हो गई। तीन महीने का पूरा पगार (नौकरी) भी मिला, तीन महीना आराम भी मिला। सभी आफीसर हैरान हो गये कि जरूर किसी बड़े आफीसर की सिफारिश से काम बना है। मैं तो बोलती थी, मेरा गुरु बड़े से बड़ा ऑफीसर है। जो मेरी हर वक्त रक्षा करता है। फिर भी मेरे को क्या कहते थे-बेटी? तुम्हारा विश्वास तुमको फलता है, कभी नहीं दिखाई देता था तो मेरा इतना कारज कैसे हो सकता है। हमेशा यही कहता था कि तेरा विश्वास तेरे को फलता है। 1971 में मेरे को बहुत भारी संकट आ पड़ा। मैंने बाबा को लिखा तो अभी मेरे को खुली तरह से करामात दिखलाओ, मैं बहुत दुखी हूँ। अभी मेरे को भारी संकट से बचाओ। बाबा नारायण सिंह प्यारा जी? मैं खुल के नहीं लिखती हूँ। लेकिन आपको भी याद होगा। जब मोहना की बात हुई थी। कैसे बाबा ने मेरा ऐसे भारी संकट में आ कर पैज (लाज) रखी। बाबा ने मेरी कदम-कदम पर रक्षा करी है। अभी भी कहते रहते हैं, अपनी ज्योति आप में धर गये हैं। प्यारे बाबा जी आपकी आखरी की तकलीफ है जो पढ़कर दुख हुआ। -आपकी बेटी किंकरी

सन् 1973 प्रस्थान की ओर

लीलामय प्रभु की लीला न्यारी है। वह अचिन्तनीय अनन्त शक्तियों का स्वामी है-

हरन भरन जा का नेत्र फोरु।।

तिस का मंत्रु न जानै होरु।। (पन्ना **284**)

के अनुसार नेत्रों-मेष जितने समय में वह समस्त सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय करने

में समर्थ है। कोई योगी जन भी उसकी महिमा को नहीं जान सकता। उस त्रिलोकी नाथ का कोई पार नहीं पा सकता। उसकी बनाई दुनिया का अन्त नहीं पा सकता न ही जान सकता है कोई योगेश्वर भी कि वह किस समय क्या करता है, और कब क्या करेगा ? बता सकता है कोई कि उसने दुनिया को कब बनाया? कैसे बनाया ? कितनी मात्रा में बनाया या कहाँ बनाया ? नहीं–

थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु न कोई।।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।। (पन्ना **4**)

उसके आदि अन्त का पता किसी को नहीं है। उसका अन्त तो कोई क्या पायेगा उसके चरणों की चेरी माया के चरित्रों को भी कोई नहीं जान सकता। वह भी अघटित घटना पटीयसी है। उसकी शक्तियों के सामने सम्भवासम्भव कुछ भी नहीं है। वह उलटा पलटा नियमानुकूल व प्रतिकूल हर प्रकार से सब करने में समर्थ है। इसीलिये उसके बनाये पदार्थों को कोई नहीं जान सकता। क्या कोई जानेगा उसके द्वारा रचित नदी नाले और महा समुद्रों के रहस्य को, विषमा विषम नीची ऊँची पर्वत माला और गिरि–गह्वरों की रचना के रहस्य को समझता है कोई ?अगर नहीं तो महाचल हिमालय के अन्तर्निहित सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओं को जानकारी किसी को कैसे हो सकती है ?

इनकी रचना के रहस्य को तो कौन जानेगा। किस वस्तु के अन्दर क्या गुण और क्या दोष है हम ठीक तरह नहीं समझ सकते किसी भी चीज की तमाम खूबियों का पता किसी को नहीं है।

जड़ियों, बूटियों को ही लीजिए। किसी वैद्य हकीम को, पूर्णतया किस जड़ी बूटी में कितनी बीमारियों के विनाश की शक्ति है इसकी जानकारी नहीं है। किसी को किसी जड़ी बूटी के दो गुणों का ज्ञान है तो किसी को चार का है। कईं एक ऐसे वैद्य भी देखे हैं जो एक दवाई से पच्चीसों बीमारियों का इलाज करते हैं। एक महापुरुष की कीर्ति सुनी है। वे किसी धातु की भस्म को खरल में

डालकर रख ले तो अनुपान बदल कर हर बीमार को उसी में से पुड़िया बनाकर देते जाते थे।

कौन जानता था सन् 1940 से पहले कि परमाणु के अन्दर शक्ति का कितना भण्डार भरा है ? उस कमतरीन जर्रे का करामात के करिश्मों का तब पता चला जब अमेरिका ने उसे हीरोशिमा और नागासाकी पर छोड़ा।

छोड़िये उसकी अनन्त शक्तियों का विचार उनका पार हम नहीं पा सकते। पर उनके सिवा कुदरत की यह भी तो एक करामात है कि वह किसी को फांसी नहीं लगाती किसी को गोली मारकर नहीं मारती पर फिर भी कोई जीवित रहा है दुनिया में? वह हमारी तरह नित्य नए कानून नहीं बनाती। खुद बनाए कानून को कभी नहीं तोड़ती। कानून उसने एक दफा बना दिया कि गुलशन में खिले फूल को एक दिन मुरझाना होगा। क्या होता है इस कानून से किसी का बचाव ? किसी का लिहाज नहीं उसके घर में।

देख लो कुदरत का कानून एक है सबके लिए।
रह गया गुलशन में कोई फूल मुरझाये बिना।

उसकी सूझ देखिए-उसने हर किसी की मौत को उसके बगल में ही रख दिया हैऋ जैसे हिरन, हाथियों के वन में सिंह, चीते। बगल तो दूर है, हर किसी की मौत को उसके अंदर भी रख छोड़ा है। जैसे हर लकड़ी के अंदर घुण का कीड़ा उसे अंदर ही अंदर खा डालता है। वैसे ही हर जिस्म के अंदर शरीर के विरोधी परमाणु भी रहते हैं। जब मौत की घंटी की आवाज उनके कानों में पड़ती है वे शरीर को खाने लगते हैं।

कई एक व्यक्ति लम्बी बीमारी के कारण अति दुबले होकर मरते हैं उन्हें रोगों के परमाणु धीरे-धीरे समाप्त करते हैं। पर कितने बिलकुल हट्टे-कट्टे ही मौत की डोली चढ़ जाते हैं। ऐसा क्यों ? दरअसल बात यह है हमारे अंदर जो जीवनी शक्ति है वह तो प्रतिफल क्षीण होती जाती है। चाहे किसी को कोई

बीमारी लगे या न लगे पर वह अपनी पूरी रफ्तार को बाकायदा जारी रखती है। पर हमें उसका पता नहीं चलता कि वह हमारे अंदर भी गतिशील है। परिणाम स्वरूप हट्टा-कट्टा आदमी क्षण में ही धराशायी हो जाता है। जैसे बैटरी के सेलों का स्वरूप मर्दन तो नहीं होता। यानि उनके वजनादि में कोई कमी नहीं आती पर उनकी रोशनी हमें जवाब दे जाती है।

हमारे कमरे के अंदर हजार वाट का बल्ब जल रहा है पर वह अचानक फ्यूज हो जाता है। वही जगमगाता हमारा कमरा कुछ देर के लिए काल कोठरी सा बन जाता है। इसके विपरीत धृत तेलादि का दीया है। उसका तेल ज्यों-ज्यों क्षीण होता है उसकी रोशनी में कमी आती जाती है। आखिर तेल खत्म होता जाता है तो बत्ती को आग लग जाती है। रोशनी भड़कती है और दूसरे क्षण ही खेल खत्म यही दशा हमारे हट्टे-कट्टे और अति दुर्बल शरीरों की होती है। हर किस्म के शरीरों की जीवनी शक्ति का ह्रास जारी रहता है। परिणाम स्वरूप कानून कुदरत की मृत्यु डोरी हर किसी के गले का हार बन जाती है।

न केवल इतना ही, प्रत्युत जब से हम जन्म लेते हैं तभी से हमारा परलोक के प्रति प्रस्थान आरंभ हो जाता है। पर वह हमें मालूम नहीं पड़ता। इसी रहस्य का उद्घाटन कबीर ने अपनी वाणी में किया है-

जननी जानत सुतु बड़ा होतु है
इतना कु न जानै जि दिन दिन अवध घटतु है।। (पन्ना **91**)

इस कानूने कुदरत की लम्बी भुजाएं महाराज महंत आत्मा सिंह जी के नजदीक भी पहुँच चुकी थीं, पर वे इन से बेखबर नहीं थे। वे दो साल पहले ही से जानते थे कि उस मार्ग पर, जिस मार्ग से लौटकर कोई नहीं आया, प्रस्थान की गति तेज हो रही है। अतः वे उस मार्ग के प्रस्थान का प्रबंध करने लग गए थे। यानि वे दुनिया के कार्यों से हाथ खींचते जाते थे। वे परमार्थ की पूँजी बटोरने की ओर अधिक ध्यान देते थे। संत नारायण सिंह जी को सौंपते जाते

थे। ईश्वर चिंतन, भजन, पाठ, पुण्यदान, प्रभु की संतान मानव के प्रति सहानुभूति, सेवा, उपकार आदि सत्कार्यों के प्रति उनकी प्रीति दिनोंदिन बढ़ रही थी। आगे चलकर तो-

दरिया की हुबाब से है यह सदा,
तू और नहीं मैं और नहीं।
मुझ को न समझ अपने से जुदा,
तू और नहीं मैं और नहीं।
दाने से भला खिरमन ने कहा,
चुप रह इसजा नहीं चूनो चिरां।
वाहदत की झलक कसरत में दिखा,
तू और नहीं मैं और नहीं।।

के अनुसार वे अनेकता में एकत्व के दर्शन करने लगे। अपने यहाँ भोजन व चाय-जलपान करने वाले, रंग-बिरंगे, हट्टे-कट्टे व मरियल साधु संतों में उन्हें एक ही आनंद निधि भगवान के दिव्य दर्शन होने लगे। सचमुच प्रातःकालीन मेघ-मंडल और सायंकालीन काली घटाओं से पानी तो एक ही किस्म का बरसता है। जगत् के अनेक विध पदार्थों को प्रकाशित करने वाली किरणों का उद्गम-स्थल, एक सूर्यदेव ही तो हैं। विभिन्न रूपों में दिखने वाले अनंत रंग एक ही सूर्यदेव ही तो हैं। यह दृश्यमान संसार एक अकाल का ही तो पसारा है। अमूल्य माला के समस्त मोती एक ही धागे में पिरोए होने के कारण ही तो मूल्यवान हैं। वरना बिखर कर मिट्टी में मिल जाएंगे। एक अद्वितीय ब्रह्म में कल्पित ही तो है सारा संसार। सागर की जलराशि में उछल कूद मचाती हुई छोटी बड़ी लहरों में सिवा जल के है अस्तित्व किसी भिन्न वस्तु का ? किसी ने अच्छा कहा है-

इक नज का है बदलना और इसजा कुछ नहीं।
दरमयाने मौजो कतरा गैरे दरिया कुछ नहीं।।

एक दिन दो साधु आए। एक निर्मल विरक्त संत और एक राजस्थानी परम हंस, जो जन्मतः ब्राह्मण था। दोनों संकीर्ण विचारों के व्यक्ति थे। एक ही स्थान में विभिन्न संप्रदायों और भिन्न-भिन्न देशों के रंग बिरंगे काले कलूटे साधुओं को चाय, जलेबियाँ लेते देख, बोल उठे-महाराज! यह आपने क्या किया है? एक ही जगह में सबको परोस रहे हो चाय जलेबी, इससे तो धर्म की हानि होती है।

महाराज बोले-धर्म की हानि नहीं, बल्कि धर्म-भावना की वृद्धि होती है इस प्यार के बर्ताव से। तुम्हारी आँखों पर भेद भाव का चश्मा लगा हुआ है वरना यहाँ ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सत्ता नहीं है। सब एक ही परम पिता प्रभु की संतान हैं। यदि गीता को मानते हो तो सुनो, भगवान कहते हैं-

अहं सर्वस्य जगतः माता धाता पितामह।

और सुनो-

मतः परतरं नान्यत् कि चिदस्ति धनन्जय।।

फिर निर्मल विरक्त से बोले-क्या आप गुरू नानक देव को मानते हो। जी हाँ ! मैं तो क्या गुरू नानक देव को तो सभी सनातन धर्मावलम्बी मानते हैं। निर्मल संत ने श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा। महाराज बोले-भाई गुरू नानक तो यहाँ, अन्य किसी वस्तु की सत्ता ही स्वीकार नहीं करते। वह तो सब रूपों रंगों में अपने प्रभु को ही व्यापक देखते हैं। उनका सिद्धांत है वह स्वयमेव सब कुछ है, उस से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। इस पर उन्होंने ब्रह्म की सर्वात्मता का प्रतिपादक गुरू नानक का एक संपूर्ण शब्द पढ़ सुनाया-

सिरीरागु महला १ घरु दूजा २
आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु।।
आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु।। १।।
रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि ।। १।। रहाउ।।
आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु।।
आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु।। २।।

आपे बहु बिधि रंगुला सखीए मेरा लालु।।
नित रवै सोहागणी देखु हमारा हालु।। ३।।
प्रणवै नानकु बेनती तू सरवरु तू हंसु।।
कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु।। ४ ।। (पन्ना **23**)

नित्य के निरंतर अभ्यास से उनका मनन बहुत बढ़ा चढ़ा था। उनका अनुभव था कि परम सत्य वही एक परब्रह्म है, उसके अतिरिक्त समस्त संसार कल्पित है। वे ब्रह्म में और अपने में उसी प्रकार का भेद मानते थे जैसा गंगा और गंग तरंग का।

अब प्रस्थान की गति में दिनोंदिन तीव्रता आ रही थी। शरीर में थकान और हाथ पैर आदि अंगों में शिथिलता बढ़ती जा रही थी। बीमारी कोई नहीं, तकलीफ कोई नहीं थी। जैसे मैं कह आया हूँ, जीवनी शक्ति का ह्रास प्रतिक्षण हो रहा था। आखिर शरीर अशक्त हो गया, ज्ञानी बलवंत सिंह जी हरिद्वार से खबर लेने आए और पूछा-महाराज! शरीर का क्या हाल है? तब आपने कहा- संतो!

साधो इहु तनु मिथिआ जानउ।।
या भीतरि जो रामु बसतु है साचो ताहि पछानो।। (पन्ना **1186**)

ज्ञानी जी ने कहा-महाराज घबराने की कोई बात नहीं है, अच्छे हो जाओगे। तो आपने कहा-ज्ञानी जी घबराहट की बात नहीं। हम अवश्य भावी बात को कह रहे हैं। ज्ञानी जी आप तो संस्कृत पढ़े नहीं हो, यह लोक संस्कृत-विद्यार्थी को याद होता है-

अवश्यं भावी भावानां प्रतिकारो भवेद्यदि।
तदा दुःखैर्न लिप्येन् रामनल युधिष्ठिराः।।

अवश्य होने वाली बात का कोई इलाज नहीं हो सकता। नदी तीरस्थ वृक्ष की कोई दे सकता है गारंटी? माटी के कच्चे बरतन में पानी कब तक रूकेगा?

कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंनै धीरु।।
फरीदा कच्चै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु।। (पन्ना **1382**)

तब पास बैठे नारायण सिंह जी की आँखें डबडबा आईं। तब आपने उन्हें देखकर कहा, घबराते क्यों हो, नारायण सिंह उठाओ मुझे। तो नारायण सिंह जी ने कठिनाई से उन्हें उठाकर पेशाब कराया और चिंता वश हो, डॉक्टर को बुला लाए। डॉक्टर ने आकर सुई लगा दी तो कुछ बल का संचार हुआ। 27 मई 1973 को बात बिगड़ती देख संत नारायण सिंह जी सवेरे देहरादून गए और सिविल सर्जन को ले आए और यहाँ के डॉक्टरों को भी ले आए। डॉक्टरों की पार्टी ने शरीर का निरीक्षण किया। किसी रोग का तो पता नहीं लगा पर ताकत की दवाएँ लिख दीं, और आश्वासन दे गए कि कोई चिंता की बात नहीं, दवाएँ इस्तेमाल करते रहें, उठने-बैठने लग जाएंगे। ठीक वैसा ही हुआ पर कब तक? आखिर लखनऊ की लेडी डॉक्टर कुट्टी, जो शिवानंद अस्पताल में आया करती हैं, को बुलाया। वे किसी के घर जाती नहीं पर जब उसे महात्मा जी का चित्र दिखाया तो वे आईं, और जांच परीक्षा करके दवाएँ तजवीज़ कीं। उसकी दवाएँ सबसे कारगर साबित हुईं। अच्छे हो गए, वह एक बार फिर आकर देख कर गई कुछ और दवाएँ बतला गई, उसकी दवाओं से कई मास अच्छे रहे। पर जब दिए से तेल ही खत्म हो जाए तो खाली बत्ती कब तक रोशनी देगी?

नोट-इस दौरान आपने भेष में पड़ी फूट को मिटाने के लिए पंडित हरिकृष्ण सिंह और महंत आत्मा सिंह जी शहंशाह को बुलाकर कहा कि मतभेद मिटाने के लिए दोनों दलों को इकट्ठा बुलाओ। कुल खर्च मैं बरदाश्त करूँगा। पंडित जी मंज़ूर तो कर गए पर उन्हें फिर आने की फुरसत नहीं मिली। यह बात बीच में ही रह गई।

गुरु अर्जुन देव जी ने कहा है-

राग बिलावल महला ५ घरु ५ चउपदे ੧ ओंकार सतिगुर प्रसादि।।
म्रित मंडल जगु साजिआ जिउ बालू घर बार।।
बिनसत बार न लागई जिउ कागद बूंदार।। १।।

सुनि मेरी मनसा मनै माहि सति देखु बीचारि।।
सिध साधिक गिरही जोगी तजि गए घर बार।। १।। रहाउ।।
जैसा सुपना रैनि का तैसा संसार।।
द्रिसटिमान सभु बिनसीऐ किआ लगहि गवार।। २।।
कहा सु भाई मीत है देखु नैन पसारि।।
इक चाले इकि चालसहि सभि अपनी वार।। ३।।
जिन पूरा सतिगुरु सेविआ से असथिरु हरि दुआरि।।
जनु नानकु हरि का दासु है राखु पैज मुरारि।। ४।। (पन्ना 808)

यह सारा संसार क्षण भंगुर है। त्रिलोकी के यावत् पदार्थों में चिरस्थाई कोई नहीं है। मृग-मरीचिका के समान देखने में आते अवश्य हैं पर उनका अस्तित्व कहीं नहीं है। जैसे मनोमय पदार्थों की रचना क्षण भंगुर होती है। तुरंत दूसरे, मनोमय पदार्थ की रचना हमारे मन में बनती है तो पहले वाली मन द्वारा कल्पित वस्तु गायब होती है। तुरंत दूसरे, मनोमय पदार्थ की रचना दरिया की लहरें बनती हैं पर दूसरे क्षण में ही अपना अस्तित्व खो देती हैं। मृत्यु लोक में तो जो वस्तुएं देखने में आती हैं, ये तो हमेशा मौत के मुँह में ही होती हैं। इनके साथ मोह करने वाला मूर्खों का सरदार ही समझना चाहिए। मृत्यु लोक की वस्तुओं की रचना तो बच्चों द्वारा बनाए बालू के घरों जैसी होती हैं। वे बनाते बनाते ही गिर जाते हैं। कागज के ऊपर चार बूँदें पानी की पड़ जाएं तो वह तुरंत गल जाता है। कितने बड़े-बड़े राजा महाराजा यहाँ से रोते हुए चले गए। महा महिमाशाली महात्मा, सिद्धियों और करामातों के स्वामी महायोगी भी यहाँ टिक नहीं पाए। मायावी पदार्थों में मैं-मेरी का शोर मचाने वाले शहंशाह, कुल कूच कर गए। ज़रा नज़र उठाकर देखो तो सही तुम्हारे साथी तुम्हारी आँखों के सामने जन्मे हुए राजकुमार, आग की ज्वालाओं में जलकर राख का ढेर बन गए। वह भी हवा के हवाले होकर कहाँ उड़ गए कहीं पता नहीं चलता।

हमारी आँखों के सामने मृत्यु की लीलाएँ होती रहती हैं। भूचाल आता है तो बने बनाए सुंदर नगर और उनमें बनी पहाड़ों की चोटियों के समान ऊँची अटारियाँ भूगर्भ में गर्क हो जाती हैं। यहाँ रहने वाली चीज़ कोई नहीं है। यहाँ प्रतिपल विकराल काल का अट्टहास जारी रहता है। काल भगवान की लंबी भुजाएं प्रभु-प्यारों को उठाकर अपनी गोद में लेने के लिए फैली रहती हैं। आज वे प्रभु के चरणों के प्रेमी दीन-हीन-हितकारी, महान् उपकारी महापुरुष महंत आत्मा सिंह जी को उठाकर, भक्त-भावन भगवान के पाद पद्मों में पहुँचाने के लिए सक्रिय हो उठा। मायामय मिथ्या जगत जंजाल से निकाल कर सत्य सनातन, परम सत्य प्रभु के सतत् सुखमय स्वरूप में समर्पित करने का समय अब आ गया है। यह विचार कर काल भगवान ने पवित्रात्मा के साथ प्रेमालिंगन करने के लिए भव्य भुजाएं फैला दीं। 9 अगस्त सन् 1973 को महात्मा जी की तबीयत खराब हुई। उन्होंने संत नारायण सिंह जी को पानी पिलाने को कहा। संत जी ने पानी का गिलास दिया। इसके बाद दवा की एक खुराक देकर उन्हें तकिया देकर लिटा दिया। शाम के चार बजे थे, वे सदैव की नींद सोने के लिए स्वयं बनवाए, सीमेंट के चबूतरे पर आकर लेट गए तो संत करतार सिंह जी ने संत नारायण सिंह जी को सन् 1967 की बात याद कराई। हम इसी तख्त पर प्रभु के चरणों में अंतिम श्वास अर्पण करेंगे। सो आज वे अपने वचन को पूरा अवश्य करेंगे। बस जीवन-नाटक का यह अंतिम दृश्य था।

नाड़ी की गति धीमी होती जा रही थी। संत नारायण सिंह जी डॉक्टर को बुलाने चले गए। आस पास साधु संत, प्रेमीजन, आकर बैठ गए। सभी के चेहरे उदास थे। अवश्यंभावी बात के विचार से सभी के मन खिन्न थे। सभी की आँखों में आँसू भरे थे।

डॉक्टर आ गया। सीरिंज भरी पर सुई लगाते समय उनके हाथ काँपने लगे, यह देखकर संत नारायण सिंह जी की आँखें भी डब डबाने लगीं। सुई लगने पर

महाराज ने आँखें खोलीं और संत नारायण सिंह जी से कहा–नारायण सिंह! अब हम अपने प्रभु से मिलने जा रहे हैं। इस मिलाप में बाधा डालने वाला अब कोई नहीं है। यह अयश्यंभावी है। संत लोग बस इसी समय की तैयारी में लगे रहते हैं। यह घड़ी उनकी परीक्षा की होती है और हम इसमें पास हो गए हैं। घबराना मत, रोना मत, गुरुवाणी का पाठ, प्रभु-स्मरण करते रहना। शुभ कार्यों से कभी मुख न मोड़ना। विरक्त जी को हमारा ही स्वरूप समझना। जन-सेवा की पुनीत धारा को सूखने नहीं देना।

अन्तिम श्वास लेते हुए ओम सतिनाम् कहा और आँखें बंद कर लीं। डॉक्टर ने कहा उफ ! अब कोई चारा नहीं।

अब किसी की आँखें रो रही थीं। किसी का दिल रो रहा था। समय पौने पाँच का हो गया था। इसके पंद्रह मिनट के बाद एक पूर्ण श्वास आया और इसके साथ ही महाराज का सिर तकिया से नीचे की ओर लटक गया। मौत के काले पर्दे ने, इस करूणा-पूर्ण दृश्य को हमेशा के लिए छिपा लिया।

10-8-73 दिन के दो बजे हैं। कनखल हरिद्वार से श्री महंत पंडित श्री सुच्चा सिंह जी के अलावा दोनों शहरों के महंत शहंशाह महंत लाल सिंह जी महंत त्रिलोक सिंह जी, संत रघुवीर सिंह जी शास्त्री आदि सभी प्रतिष्ठित महंत निर्मल आश्रम में पधार चुके थे। परम संत विरक्त निक्का सिंह जी को भी कार भेजकर बुला लिया था, वह समय पर पहुँच गए थे। स्थानीय समस्त संत समाज के अलावा तत्कालीन विद्युत मंत्री श्रीयुत शांतिप्रपन्न जी शर्मा और भरत मंदिर के महंत साहिब जी पहुँच गए। तब ठीक दो बजे संत नारायण सिंह जी, संत धर्म सिंह जी, संत दर्शन सिंह, संत मंगल सिंह, संत मनमोहन सिंह जी आदि संतों और प्रेमी भक्त सेठ लम्भाराम जी, सरदार गुरुबख्श सिंह, मास्टर गुरुदेव सिंह आदि सभी सज्जनों ने अर्थी को अदब के साथ कंधों पर उठाया। उस समय बड़ा ही करुण दृश्य था। हृदय विदारक दृश्य ने मुझे किसी मस्त फकीर

का शेअर याद करा दिया।

इक और गुस्ताखी करेंगे, अपने मर जाने के बाद।

यार सब पैदल चलेंगे हम कन्धों पर सवार।

सब से आगे देहरादून से आया हुआ बैंड था। अर्थी के बिलकुल आगे महंत रत्न सिंह जी और संत प्रताप सिंह जी राणा रण सिंघे बजा रहे थे। बाहर पीपल के पास जाकर फोटो लिया गया। यह जुलूस भरत मंदिर में जा कर रुका, वहाँ भी फोटो। संत महेन्द्र सिंह जी भगवान भवन वाले श्रद्धा पूर्वक कंधा दिए चल रहे हैं। जुलूस के बहुत से फोटो लिए गए।

गंगा की गोद में

कुल बाजारों से होता हुआ यह मातमी जुलूस सायं छः बजे पहुँचा गंगा के पवित्र तट पर, जहाँ नौका पर चढ़ाकर महाराज की देह को सविधि गंगा जी की गोद में जल-समाधि दे दी गई। जनता की अपार भीड़ में से निकल कर संत-महंत बड़ी मुश्किल से निर्मल आश्रम में पहुँच पाए।

आश्रम तक पहुँचने में इन्हें काफी अंधेरा हो गया था। इस प्रकार करुणामय इस दृश्य के पीड़ाप्रद अंतिम चित्र को निशा देवी ने अंधेरे के कृष्णपट में सदा के लिए लपेट लिया।

तारीख (दिनांक) **25-8-73** को रस्म दस्तारबंदी

संत नारायण सिंह जी ने निर्मल समाज में यत्र-तत्र प्रार्थना निमंत्रण भेज दिए थे। अतः अमृतसर, काशी, कनखल आदि से बहुत से प्रतिष्ठित महात्मा चौबीस अगस्त तक निर्मल आश्रम ऋषिकेश में पहुँच गए। ऋषिकेश के भी सब सम्मानित संत-महंत सम्मिलित हुए।

25-8-73 को अखंड पाठ की समाप्ति के बाद रस्म दस्तारबंदी का आरंभ हुआ। सबसे पहले निर्मल पंचायती अखाड़े की ओर से श्री महंत पंडित सुच्चा सिंह जी के कर-कमलों से महंत नारायण सिंह जी को पगड़ी बांधी गई।

तदनंतर सर्वभारत प्राचीन निर्मल महामंडल की ओर से ग्रंथकर्ता प्रधान की हैसियत से, महंत आत्मा सिंह जी प्रधान उत्तर प्रदेश साधु-मंडल, महंत मनजीत सिंह जी ठाकुर संप्रदाय के मुखी महंत, महंत बिशन सिंह जी किरीट आदि की ओर से दस्तारें बांधी गईं। तदनंतर सर्व निर्मल संप्रदाय के संत महंतों की ओर से आई पगड़ियाँ ली गईं। इसके अनंतर ऋषिकेश के प्रमुख भरत मंदिर की ओर से श्री शांति प्रपन्न शर्मा, पुष्कर मंदिर के महंत साहिब आदि प्रतिष्ठित महंतों, संतों की ओर से पगड़ियाँ दी गईं।

नोट-महंतों संतों के अलावा कुछ प्रतिष्ठित सद्गृहस्थों की ओर से भी पगड़ियाँ आदि दी गईं व माया अरदास करा कर महंत नारायण सिंह जी के प्रति प्रेम व श्रद्धा भक्ति व्यक्त की गईं। सेठ कृष्णलाल बम्बई ने 5000 रुपये की घड़ी 1000 रुपये नगद भेंट, 200 रुपये के नोट न्योछावर किए।

सरदार राम सिंह जी ने 101 रुपया व पगड़ी दी। आप महंत साहिब के लघु भ्राता हैं और इस गद्दी के अति प्रेमी भक्त हैं। आगे पीछे भी यथा शक्ति सेवा पूजा करते रहते हैं। अभी जो विशाल हाल बन रहा है यह इन्हीं के परिश्रम व सूझबूझ की करामात का ही शुभ परिणाम है।

रस्म दस्तार बंदी का यह सारा कार्यक्रम बड़ी शान से सम्पन्न हुआ। श्रीमान महंत नारायण सिंह जी ने बाहर से पधारे सर्व महंतों, संतों का यथायोग्य पूजा आदि से सत्कार किया। नम्रतापूर्ण प्रेम के बर्ताव से सब समागत संतों, महंतों का हृदय जीत लिया और उन्हें सत्कार सहित विदायी दी।

प्रगति के पथ पर

पहली वर्षी के बाद महंत नारायण सिंह जी के द्वारा किए गए सत् कार्यों का विवरण-

श्रीमान् महंत नारायण सिंह जी एक उन्नतिशील व्यक्ति हैं, अतः जब से आपने गुरुगद्दी का कार्य संभाला है तभी से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं।

एक वर्ष तो उनका शोकमग्नावस्था में ही गुज़र गया। गुरु चरणों के वियोग से संतप्त हृदय के कारण किसी कार्य को सोच सकना भी उनके लिए संभव नहीं था। पहली वर्षी मनाने के बाद ही वह अपने आप को संभाल पाए क्योंकि वह गुरुचरणों के अनुसरण में ही अधिक विश्वास रखते हैं, अतः आप उनके दिखाए मार्ग पर चलने का ही प्रयास कर रहे हैं। सो आपने ब्रह्मलीन गुरु की आज्ञा के अनुसार, उनके द्वारा खरीदे गए खाली पड़े प्लाट में एक विशाल हाल बनाने का दृढ़ संकल्प किया। अपने सहयोगियों से विचार विमर्श करके आपने तारीख 25-4-75 को विरक्त शिरोमणि श्रीमान 108 पूज्य पंडित निक्का सिंह जी महाराज के कर कमलों से एक विशाल हाल की आधार शिला रखवाकर भवन निर्माण का शुभारंभ कर दिया।

इस विशाल हाल की लम्बाई 14 फुट, चौड़ाई 26 फुट और ऊँचाई 18 फुट है। इस हाल को तैयार करके इसमें चौदह नग छत के बड़े पंखे भी फिट करवा दिए हैं। फिटिंग बिजली की पहले ही करवा दी गई थी। चार फुट की चौड़ाई का छज्जा भी बनवा दिया है। इस हाल में सफेद चिप्स लगवा कर फर्श को दूधिया रंग का बना दिया गया है। हाल का बरांडा 10 फुट का है।

सारे घेरे में डबल स्टोरी बिल्डिंग बनवा दी गई है, जिसमें 20 रूम (छोटे कमरे) और छः बड़े कमरे बनवा दिए गए हैं। हाल युक्त यह सब कुछ जनता जनार्दन की सेवा के लिए सुरक्षित है। बड़े हाल में सब लोगों के धार्मिक कृत्य हो सकते हैं, और होते हैं, जैसे किसी सोसाइटी का धार्मिक समागम जैसा आखिल भारतीय कायस्थ महासभा की सालाना मींटिग सन् 1975 में हुई थी। विवाहादि कार्य भी हुए और हो सकते हैं। ठीक ही कहा है किसी महान कवि ने-
परोपकाराय सतां विभूतयंः।

इसके अलावा बाहर वाले बगीचे में भी बहुत सा सुधार हो गया है। दो हार्स पावर का ट्यूबवैल और एक सुंदर कमरा तो स्वर्गीय महंत साहिब जी बनवा गए

थे। अब महंत नारायण सिंह जी ने भी बहुत कुछ किया है।

चूँकि तीन कमरों की जगह पर केवल टीन की छत थी, इसलिए वर्षा काल में संतों को कष्ट होता था, अतः उसे गिरवाकर नवीन ढंग के तीन कमरे संतों के निवास के लिए बनवा कर उन्हें सीमेंटेड करा दिया है। बगीचे में पक्की सड़कें बनवाकर उन्हें भी सीमेंटेड करा दिया है। वहाँ अब चार साधु आराम से रहते हैं।

(नोट-नीचे के चार कमरे जिनमें किरायेदार रहते थे वे भी खाली हो गए हैं। उनको मिला के कुल 30 कमरे हैं जो जनता की सेवा के लिए सुरक्षित रहेंगे।)

इस वाटिका के इंचार्ज हैं बाबा राघवानंद जी, जिनके कुशल नेतृत्व में सभी साधु सम्मान का जीवन व्यतीत करते हुए, वाटिका की सेवा संभाल ठीक प्रकार से कर रहे हैं। विविध प्रकार की सब्जियाँ और नींबू, आम आदि फल पैदा करते हैं और इसके लिए खाद तैयार करने के निमित्त उन्होंने तीन चार गड्ढे बना रखे हैं। उन में वे वृक्षों के गिरे हुए पत्ते, फल दे चुकी सब्जिओं के डंठल, निराई गुडाई आदि करने से निकला हुआ घास और कूड़ा करकट डालते रहते हैं जो वर्षा के पानी से सड़कर खाद बन जाता है। उसे वे सब्जियों की क्यारियों में डालकर सब चीजों का सदुपयोग करते हैं। विशेषता यह है कि सब्जी की क्यारिओं में आपको एक भी तिनका घास का नजर नहीं आएगा और सड़कों पर कोई पत्ता या कूड़ा करकट नहीं मिलेगा। ऐसी सफाई कहीं भी देखने को नहीं मिलती। यह सब महंत साहिब के सद्व्यवहार और सद्बर्ताव का ही सुखद परिणाम है। क्या सुंदर वचन है गुरुदेव जी का-

उसतति मन महि करि निंरकार।।
करि मन मेरे सति बिउहार।। (पन्ना **281**)

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, कि आपका गुरु-चरण चिहनों पर चलने में ही अधिक विश्वास है, सो ब्रह्मलीन महापुरषों ने समूहजन सेवा की जो पावन

धारा बहाई थी उसे आपने उसी रूप में जारी रखा हुआ है और आशा है कि वह उसी प्रकार जारी रहेगा जैसे गंगा जी की धारा निरंतर चल रही है।

सवेरे आठ बजे से चाय, मिठाई व कभी-कभी घुंगनी प्रसाद का छेत्र शुरू हो जाता है जिसमें लगभग तीन सौ संत संन्यासी, माईयां और बच्चे सभी बिना किसी भेद भाव के सम्मान पूर्वक चाय, मिठाई पा जाते हैं।

इनके अलावा आश्रम में 15-20 साधु स्थाई रूप से रहते हैं जिनकी रोटी, चाय, दूध और वस्त्र आदि की सेवा आश्रम की ओर से होती है।

महंत नारायण सिंह जी की सेवा सहानुभूति और सबके साथ संभाव अनुकरणीय है।

इसके अतिरिक्त चार छः साधु हरिद्वार व पंजाब आदि से भी आते जाते रहते हैं। यह महात्मा सभी के साथ रहते हैं और आदर पूर्ण बर्ताव ही करते हैं। किसी को अप्रसन्न नहीं जाने देते। धन्य है धैर्य।

शहीद भगत सिंह जी के लघु भ्राता
स० कुलतार सिंह तत्कालीन खाद्य मंत्री का शुभागमन

सन् 1976 में शहीदे आज़म स्वनाम धन्य स्वर्गीय सरदार भगत सिंह के छोटे भाई उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व खाद्य मंत्री सरदार कुलतार सिंह जी निर्मल आश्रम में पधारे थे। ऋषिकेश तथा आस-पास के राजनीतिज्ञों प्रतिष्ठित नागरिकों एवं निर्मल आश्रम की ओर से बड़े हाल में आपका भव्य स्वागत किया गया एवं आपके सम्मान में आश्रम की ओर से रात्रि भोज का प्रबंध किया गया। आपने प्रसन्न मन से महंत जी एवं समस्त आश्रम वासियों को असीम सौजन्य प्रदर्शन के लिए सहर्ष धन्यवाद दिया।

महान सिक्ख नेता सरदारे आज़म
संत हरचंद सिंह लौंगोवाल जी का शुभागमन

वर्ष 1977 के परम पूज्य महंत आत्मा सिंह जी के वार्षिक समारोह के

अवसर पर व पूज्य महंत बुढ्डा सिंह जी के वार्षिक समारोह में समस्त सिक्ख समाज के नेता सरदारे आज़म, वीरदल के अध्यक्ष, सर्व श्री संत हरिचन्द सिंह जी ने निर्मल आश्रम ऋषिकेश में पधारने की महती कृपा की थी। आश्रम की सुव्यवस्था देखकर बहुत प्रसन्न हुए। संतों एवं गरीबों अभ्यागतों को देखकर आपका दयालु दिल उछल पड़ा। उन दीन दुखियों को देखकर आपने आश्रम के महंत साहिब से अपने हाथों चाय मिठाई बाँटने की प्रार्थना की और महंत जी की अनुमति पाकर अपने हाथों से सेवा करने लगे। इसी पोजीशन में आपका चित्र भी लिया गया जिसमें आप प्रसन्न मुद्रा में प्रसाद वितरित करते दर्शन दे रहे हैं।

इसके अतिरिक्त आपने एक और प्रसाद वितरित किया-वह था श्रोताओं के हृदयों में आनंद का संचार जब आप गुरुवाणी का अमृतवर्षी कीर्तन का शुभारंभ करते हैं तो श्रोतागण मंत्र-मुग्ध होकर सुनते हैं। आपका आनंदवर्षी कीर्तन आश्रम के प्रति अपनी हार्दिक सद्भावना प्रकट करते हुए आपने पूर्ण सहयोग एवं सहायता का आश्वासन दिया।

उत्तर प्रदेश के वन मंत्री श्री चन्द्र जी का आगमन

1977 में ही उत्तर प्रदेश के वर्तमान वन मंत्री श्री चन्द्र जी भी निर्मल आश्रम में पधारे तो आश्रम वासियों और ऋषिकेश के गण्य मान्य सज्जन पुरुषों ने आपका यथोचित आदर सत्कार किया। माननीय मंत्री जी भी विशाल हाल को देखकर बहुत प्रसंन हुए और महंत जी की उदारता और सहृदयता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

श्री माता हरनाम कौर, पिता नाहर सिंह नाम।
धन्य धनादि से भरा रत्तोवाल ग्राम।।
भिंडर नाम ग्राम में मन्महान गुरु-धाम।
संमार्ग अवलंब कर, वहीं मिला विश्राम।।

❑

‘आत्म सरिता’ नाम की पुनीत पुस्तिका प्रसिद्ध विद्वान् पं. हकीकत सिंह जी ‘अरविन्द’ ने लिख कर आत्मज्ञान का प्रचार चलाया है। जो भी जिज्ञासु, श्रद्धालु, प्रेमी इस आत्मज्ञान, भरपूर आत्म सरिता रूपी पुनीत नदी में स्नान करेगा, इसको पढ़ेगा, विचारेगा, इसके पवित्र सिद्धांत पर चलने का प्रयत्न करेगा वही जिज्ञासु इस ‘आत्म सरिता’ रूपी आत्म विषयिणि त्रिवेणी महान् पवित्र नदी के कुंभ स्नान का महात्म्य प्राप्त करेगा क्योंकि इस पुस्तक के महान् विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक का नाम ‘आत्म सरिता’ इसी उद्देश्य को लेकर ही निश्चित किया प्रतीत होता है।

–महंत गुरदीप सिंह दर्शन केसरी

लेखक महोदय ने इस ‘आत्म सरिता’ नामक ग्रंथ में दूसरे महंतों संतों के अतिरिक्त धीर धारि धौरेय विद्वद्वर उदार चरित प्रसिद्ध दानवीर श्रीमान् **108** महंत आत्मा सिंह जी महाराज, निर्मलाश्रम ऋषिकेश के जीवन उल्लेख का आद्यंत विविध विषयों के द्वारा विशद वर्णन किया है। यह पुस्तक बुद्धिजीवी मनीषी विद्वानों के अतिरिक्त गुणग्राही श्रद्धालु जनता को सदा-सर्वदा सर्वजन हिताय, सुखाय च, बहुत ही उपकारी सिद्ध होगी।

–महंत बलवीर सिंह शास्त्री

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पं. हकीकत सिंह जी ‘अरविन्द’ ने महात्माओं का जो संक्षिप्त परिचय दिया है, उसका सिंहावलोकन करने पर सर्व साधारण के सामने इस संप्रदाय का सही रूप में चित्र उपस्थित हो जाता है। इन महात्माओं के उपदेशों, वाणियों एवं जीवनवृत से इस संप्रदाय का ‘निर्मल’ नाम चरितार्थ हो जाता है। जैसा ‘निर्मल’ संप्रदाय है वैसे ही आदर्श एवं ‘निर्मल’ चरित्र भी इस संप्रदाय में प्रादुर्भूत महात्माओं के हैं। इस संप्रदाय ने मानव जीवन को लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति का साधन बताया जो कि सभी धर्मों का मूल तत्व है।

–महंत रणवीर सिंह–कनखल

पंडित हकीकत सिंह ‘अरविन्द’

सच्चे संतों की लोक-लीलाओं का विवरण उपलब्ध कराने वाली यह पुस्तक निःसंदेह पठनीय है, संग्रहणीय तथा आचरणीय भी है।

नीरजा त्रिवेदी